[परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री नानेश के २५वे आचार्य पद के उपलक्ष मे]

व्याख्याता :
आचार्य श्री नानेश

संपादक-अनुवादक :
मुनि ज्ञान

अर्थ सौजन्य :
श्रीमती उमरावबाई भण्डारी
मातुश्री-प्यारेलाल जी भण्डारी

प्रकाशन तिथि .
वीर निर्वाण संवत् २५११
विक्रम संवत् २०४२, अक्टूबर १९८५

Published at the Holy Occasion
of
25th Acharya Pada-year of Acharya Shri Nanesh

ANTAGAD-DASĀO

(ANTAKRITDASANGA-SUTRA)

Origional Text, Hindi Version, Variant Readings, Defination of some difficult words, question & Answers etc)



Annotator
ACHARYA SHRI NANESH



Editor & Translator
MUNI GYAN



Publishers
Shri Akhil Bharatvarsiya Sadhumargi Jain Sangh, Bikaner

(Published at the Holy Occasion of 25th Acharya Pada-year of AcharyaShri Nanesh)

☐ Annotator
Acharya Shri Nanesh

☐ Editor & Translator
Muni Gyan

☐ Financial Assistance
Mrs. Umrao Bai Bhandari
M/o Shri Pyare Lal Bhandari

Date of Publication
Vir Nirvan Samvat-2511
Vikram Samvat 2042, Oct., 1985

Publishers
Shri Akhil Bharatvarsiya Sadhumargi Jain Sangh-Bikaner

[illegible]
Agrawal Printers, Udaipur

अर्थ सहयोगी सुश्राविका उदारमना श्रीमती उमरावबाई भण्डारी

प्रस्तुत अन्तकृद्दशाग सूत्र की छपाई मे अर्थ सहयोगी बम्बई के निकटस्थ, अलीबागवासी, मारवाड के सोजत नगर के निवासी, स्वर्गीय सुश्रावक, धर्मनिष्ठ श्री प्रेमराज जी भण्डारी की धर्मपत्नी, सुश्राविका, भद्रिक स्वभाविका, उदारहृदया श्रीमती उमराव बाईजी भण्डारी है। उमराव बाईजी भण्डारी का जीवन अत्यन्त सादगीयुक्त, सरल एव धर्मनिष्ठ है। आपका ही नही आपका सारा परिवार धर्मनिष्ठ है। आप वर्षो से जहा पर भी आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म सा का चातुर्मास होता है, वहा अपना स्वतन्त्र चौका लगाकर, दर्शन, व्याख्यान श्रवण आदि का लगभग चारो मास लाभ लेती है। आपके दो सुपुत्र है—श्री प्यारे लालजी भण्डारी एव श्री रतनलाल जी भण्डारी, साथ ही पोते-पोतियो से भरा-पूरा परिवार है।

श्री प्यारे लालजी भण्डारी सघ के उत्साही एव सक्रिय कार्यकर्ता है। वर्षो से आप आचार्य प्रवर एव सत-सतियाँजी के दर्शनार्थ तथा सघ के कार्यो मे सक्रिय भाग ले रहे है। बोरीवली (बम्बई) चातुर्मास मे भी वहा रहकर सघ के कार्यो मे तन-मन-धन से महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य के अन्दर आपकी विशेष रूचि रही है। आपका मानना है कि महापुरुषो के सत्-साहित्य के बल पर ही जन-जन के मानस को परिवर्तित किया जा सकता है। आज भगवान महावीर नही है लेकिन उनके आगमो की अक्षुण्णधारा ने धर्म एव समाज को टिकाए रखा है। अत समाज मे सत्साहित्य एव आगमो की प्रामाणिक एव सरल व्याख्याएँ अभिप्रेत है। इन्ही विचारो ने प्रेरित होकर अन्तकृद्दशागसूत्र के पत्राकार एव पुस्तकाकार दोनो रूप मे प्रकाशित करने के लिए आपकी मातुश्री ने इसकी छपाई के लिए अर्थ सहयोग दिया है जो कि निश्चय ही प्रशसनीय एव अन्यो के लिए अनुकरणीय है। सघ आपका आभारी है। आपसे समय २ पर यही अपेक्षा है कि सत्साहित्य जैसे पवित्र महायज्ञ मे अपने अर्थ का सदुपयोग कर आदर्श उपस्थित करते रहे।

श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

प्रकाशकीय

छद्मस्थो (अपूर्व व्यक्तियो) के उपदेश की अपेक्षा वीतराग देव की देशना सर्वथा सत्य होती है। छद्मस्थो के द्वारा अन्यथा कथन-लेखन भी हो सकता है, किन्तु सर्वज्ञो के कथन मे एकाश रूप से भी असत्य का अश नही आ पाता। छद्मस्थो का कथन एव लेखन भी यदि वीतराग देवो के सिद्धान्तो के अनुकूल है तो ही उनका कथन विश्वसनीय माना जाता है। यद्यपि वीतराग देव, वर्तमान मे इस भरतखण्ड मे विद्यमान नही है, तथापि जो वीतराग हो चुके है, उनकी देशना आज भी विद्यमान है। जितनी मात्रा मे देशना दी गई है, उतनी अवस्था मे तो विद्यमान नही है, फिर भी आत्मिक साधना एव ससिद्धि के लिये पर्याप्त रूप मे आज भी विद्यमान है।

वर्तमान मे प्रवहमान शासन के आद्य-प्रवर्तक, चरम तीर्थंकर महाप्रभु महावीर स्वामी रहे है। जिन्होने लगभग 12½ वर्ष की अनवरत साधना के बाद घनघातिक कर्मो का क्षय कर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र और अनन्तशक्ति रूप अनन्त चतुष्टय को आत्मा मे अभिव्यक्त किया था। अभिव्यक्ति के बाद ही महाप्रभु 'तिन्नाण' के साथ 'तारयाण' के पथ पर बढे। देशनाधारा प्रवाहित हुई। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि महाप्रभु का प्रथम उपदेश त्याग तप की दृष्टि से खाली चला गया। क्योकि उपस्थित सभासदो मे से एक भी सभासद ऐसा नही था, जो नवकारसी जैसा छोटा सा दिखने वाला तप भी अगीकार कर सके। इसका कारण स्पष्ट है कि उस सभा मे एक भी मानव नही था देवता कितने ही क्यो न उपस्थित हो, वे सुनकर अपने जीवन मे तपत्याग को नही अपना सकते। मानव ही एक ऐसा विशिष्ट प्राणी है, जो सुनकर समझकर एव उसे जीवन मे उतारकर, अपने जीवन को बदल सकता है। ऐसा हुआ भी और हो भी रहा है। जब महाप्रभु ने अपनी देशना दी थी, उस समय श्रोताओ मे मानव भी थे। इसीलिए एक ही दिन मे ४४०० मानवो ने एक साथ ससार को छोडकर सन्यासी जीवन अगीकार कर लिया था। आगार से हट कर अनगार बन गये थे। इस प्रमाण से मानव जीवन की श्रेष्ठता प्रमाणित हो जाती है।

मानव जीवन का वस्तुत लक्ष्य भौतिकता मे हटकर आध्यात्मिक जीवन मे अपने आपको रमाकर चरम लक्ष्य, शाश्वत शाति को पाना है। उस शाश्वत शाति का मूल उद्गमस्त्रोत, बाहरी जीवन नही अपितु भीतरी आत्मिक शक्ति ही है। आत्मिक शक्ति के बल पर ही परम लक्ष्य, शाश्वत शाति को प्राप्त किया जा सकता है। महाप्रभु महावीर ने आत्मशक्ति को जगाने के लिए विशेष जोर दिया है। जैसा कि महाप्रभु का उद्घोष रहा है—"अप्पाणमेव जुज्झाहि कि ते जुज्झेण बज्झओ" आत्मा से ही युद्ध करो, बाहरी युद्ध से क्या प्रयोजन ? महाप्रभु महावीर ही नही जितने भी श्रेष्ठ पुरुष इस जगतीतल पर हुए है उन सबका लक्ष्य

भीतरी रहा है किन्तु वर्तमान युग मे अधिकाश मानवो का लक्ष्य बाहरी होता चला जा रहा है। आज के व्यक्ति भौतिक साधनो से ही शाति पाने के लिये विशेष प्रयत्नशील है। ऐसे युग मे आध्यात्मिक पक्ष को विशेषत उभारने के लिये वीतरागवाणी का यथावस्थित रूप मे प्रस्तुत कर अधिकाधिक प्रचार-प्रसार अपेक्षित है ताकि जन-जन का जागरण हो सके। अभी तक भगवान महावीर का निर्वाण हुए 2½ हजार वर्ष से कुछ अधिक ही व्यतीत हुए है। अभी तो लगभग 18½ हजार वर्ष तक महाप्रभु का शासन निर्बाध रूप से चलने वाला है।

वर्तमान मे महाप्रभु की पाट परपरा के 81वे पाट पर समता विभूति, विद्वद् शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य मे धर्म सघ सर्वतोमुखी निरन्तर विकास कर रहा है। आचार्य प्रवर ने जब से शासन की बागडोर सभाली है, तब से शासन मे निरन्तर विकास हो रहा है। लगभग २३ वर्ष के अल्पकाल मे आपश्री के सान्निध्य मे लगभग २१८ दीक्षाएँ सपन्न हो चुकी है। एक साथ ५, ८, १२, १५ आदि दीक्षाएँ तो कई बार हुई है, किन्तु अभी सन् १९८४ चार मार्च को एक साथ २५ भव्य दीक्षाएं सपन्न हुई थी। स्थानकवासी समाज मे लगभग ५०० वर्ष पूर्व ऐसा बतलाया जाता है कि लोकाशाह के समय एक साथ ४५ दीक्षाएँ हुई थी, उसके बाद पहली बार आचार्य प्रवर के सानिध्य मे एक साथ २५ दीक्षाएँ सपन्न हुई है। केवल दीक्षा दे देना, ले लेना और बात है, किन्तु दीक्षित साधु-साध्वियो को सयमीय साधना के साथ सम्यक्ज्ञान की दिशा को प्रशस्त करते हुए उनका सफल सचालन करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु आचार्य प्रवर मुमुक्षुओ को दीक्षित कर सयमीय साधना के अक्षुण्ण अनुपालन के साथ उनका सफल सचालन भी कर रहे है। इसीलिये अल्प समय मे ही सघ के कई श्रमण-श्रमणी वर्ग उच्चकोटि के विद्वान् आगमज्ञ-गवेपक-चिन्तक हो गए है, तो कई दर्शन शास्त्र के ज्ञाता है तो कई सस्कृत, प्राकृत व्याकरण-साहित्य आदि विषयो पर विशेष अधिकार रखते है।

आचार्य प्रवर ने एक ही क्षेत्र मे नही अपितु अनेक क्षेत्रो मे आश्चर्यजनक प्रगति की है। दलित और शोषित वर्ग का उत्थान करने के लिये धर्मपाल अभियान चलाया है। इन सस्कारित लोगो की सख्या वर्तमान मे एक लाख के आसपास है। विश्व मे विषमता का निवारण करने के लिये समता-दर्शन एव मानवो के मानसिक तनाव को समाप्त कर आत्मशाति पाने के लिये समीक्षण ध्यान का अभिनव चिन्तन प्रस्तुत किया है।

कि आप श्री की प्रखर प्रतिभा का लाभ केवल सत-सतियो को ही मिले, श्रावक-श्राविका उससे वचित रहे, यह कैसे उचित होगा ?

तब गुरुदेव ने फरमाया-देखिए ! मै तो अपनी सीमा मे सयमीय मर्यादाओ को सुरक्षित रखते हुए सत सतियो को सम्मुख रख कर प्रयत्नशील हूँ। श्रावक श्राविकाओ के लिये इसे कैसे उपयोगी बनाया जाय ? यह मेरी सीमा का कार्य नही है । ज्यो ज्यो आचार्य प्रवर शास्त्रो पर विवेचना लिखवाते और सत-मुनिराजो द्वारा सयम की मर्यादाओ को सुरक्षित रखते हुए उनका सपादन, अनुवाद का कार्य चलता रहा । अब तक आचार्यप्रवर, आचाराग सूत्र, भगवती सूत्र अन्तगडसूत्र, कल्पसूत्र आदि शास्त्रो पर विवेचना लिखवा चुके है । जिनका सत-मुनिराजो ने सकलन-सपादन एव अनुवाद किया है । हम आचार्य प्रवर की इस अनन्त उपकृति एव सत मुनिराजो के अथक परिश्रम को कभी विस्मृत नही कर सकते । सघ उनका अत्यन्त आभारी है ।

शास्त्रो की इसी शृ खला मे समता विभूति आचार्य प्रवर श्री नानेश ने प्रस्तुत अन्तकृद्दशाग सूत्र पर प्रश्नोत्तर शैली मे व्याख्याएँ प्रदान की है जिससे सभी भाई-बहिनो को आगमिक सिद्धान्तो का सहज-सुगम बोध हो सके । प्रश्नोत्तर की इस शैली मे आचार्य प्रवर ने कई ऐसे जटिल प्रश्नो का भी सहज, सरल प्रामाणिक एव सयुक्तिक तरीके से आगमिक धरातल पर समाधान प्रस्तुत किया है, जिससे कि विषय को हृदयगम किया जा सके ।

प्रस्तुत सूत्र के मूलपाठ का अनुवाद एव सपूर्ण शास्त्र का सभी प्रकार से सपादन आचार्य प्रवर के अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्वर्य श्री ज्ञान मुनि जी म सा ने किया है । आप ही ने भगवतीसूत्र जैसे विशाल काय आगम का सपादन एव अनुवाद भी इसी ढग से किया है ताकि शब्दो के स्पष्ट अर्थ के साथ भावो का अवबोध हो सके ।विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनि जी को आचार्य प्रवर ने सतो मे सबसे अल्पवय मे अर्थात् चौदह वर्ष की उम्र मे दीक्षित किया था । यह आचार्य प्रवर की दीर्घ दृष्टि एव सतत सफल सचालन का ही परिणाम है कि किस प्रकार साधु-साध्वी आगे बढ रहे है । विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनी जी ने १४ वर्ष की अवस्था मे दीक्षित होकर छ वर्ष मे ही बीकानेर बोर्ड की परिचय से लेकर अन्तिम रत्नाकर तक की सभी परिक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की थी । छ वर्ष मे सभी परीक्षाओ के १९ वर्ष की उम्र मे पूर्ण कर देने वाले विद्यार्थी, धार्मिक परीक्षा बोर्ड मे नहीवत् है । यह सब आचार्य प्रवर के सफल अनुशासन एव शिष्यो के प्रति सम्यक्ज्ञान दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि की सजगता का ही परिणाम है ।

शात क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा की स्मृति मे श्री अ. भा सा जैन सघ के श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार मे अनेकानेक प्रकाशित एव हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह हुआ है । हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थो का सचयन कर उन्हे सघ की साहित्य समिति सर्वजनहितार्थ प्रकाशन करती रही है । इसी सकल्प की क्रियान्विति मे इस शासन कृति को भी भण्डार से प्राप्त कर इसकी पाण्डुलिपि के साथ मूल पाठ निकालने, परिभाषाओ तथा जावपूर्ति के पाठो के सकलन मे आगम अहिसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर के प्रभारी

श्री मानमल जी कुदाल एव उनके सहायक श्री सुभाष कोठारी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही प्रकाशन भी उदयपुर मे ही होने से शास्त्र के प्रूफ सशोधन एव प्रकाशन सबधी कार्यों को सुन्दर ढग मे सपन्न कराने मे सस्थान के मत्री श्री फतहलाल जी हिंगर तथा सस्थान के प्रभारी श्री मानमल जी कुदाल विशेष रुप से कार्यकारी रहे है अत सघ उनका आभारी है।

प्रस्तुत सूत्र का पर्युषण मे आठ दिनो तक वाचन होने से, सुविधा की दृष्टि से पुस्तकाकार एव पत्राकार दोनो प्रकार से प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि स्वाध्यायी आदि सभी के लिये उपयोगी बन सके।

प्रस्तुत शास्त्र को प्रकाशित करते हुए सघ अपने आप मे गौरव का अनुभव कर रहा है। क्योकि साधुमार्गी सघ की ओर से वैसे साहित्य तो अनेक प्रकार का प्रकाशित हुआ है पर शास्त्र प्रकाशित करने का यह प्रथम ही प्रयास रहा है। शास्त्र प्रकाशन की इस श्रृंखला मे भगवती सूत्र आदि का प्रकाशन कार्य भी चल रहा है। आचार्य देव के आचार्य पद के दो वर्ष बाद आने वाले २५ वे वर्ष के उपलक्ष्य मे अभी से आगम प्रकाशन का कार्य गतिशील है।

प्रस्तुत शास्त्र प्रकाशन मे होने वाले व्यय को सुश्राविका श्रीमती उमराव बाई भण्डारी, मातुश्री प्यारे लाल जी भण्डारी, अलीबाग निवासी, मारवाड मे सोजत नगर ने वहन किया है। जिनका परिचय अलग से प्रस्तुत किया जा रहा है।

सघ साहित्य समिति आपकी इस उदारता का आभारी है। अन्त मे जिज्ञासु लोग प्रस्तुत सूत्र से जितना अधिक लाभ उठाएँगे, उतनी ही हमारे प्रकाशन की सफलता होगी।

गुमान मल चोरडिया
सयोजक
साहित्य समिति
श्री अ भा सा जैन सघ, बीकानेर

परम श्रद्धेय चारित्र चूड़ामणी

बाल ब्रह्मचारी

जिन शासन प्रद्योतक

धर्मपाल प्रतिबोधक

समता विभूति

विद्वद् शिरोमणी

समीक्षण ध्यानयोगी

आचार्य प्रवर

श्री नानालाल जी म. सा.

के 25वे आचार्य पद वर्ष

के उपलक्ष्य मे

प्रकाशित

अन्तकृद्दशांग सूत्र : एक परिचय

दुविहे धम्मे पण्णत्ते–तजहा–आगार धम्मे चेव अनगार धम्मे चेव ।

धर्म दो प्रकार का प्रज्ञापित किया गया है । यथा-आगार धर्म और अनगार धर्म ।

आगार धर्म मे सावद्य क्रियाओ का देशत त्याग होता है । परन्तु अनगार धर्म मे सभी प्रकार की सावद्य क्रियाओ का सर्वथा त्याग होता है । सागार धर्म श्रावको के लिये होता है, अनगार धर्म साधुओ के लिये होता है ।

ग्यारह अगो मे से सातवे अग उपासकदशाग सूत्र मे आगार धर्म की आनन्दादि दस प्रमुख श्रावको के जीवन वृतान्त के साथ व्याख्या की गयी है और प्रस्तुत अष्टमाङ्ग-अन्तकृतदशाङ्ग सूत्र मे ९० पवित्र आत्माओ के जीवन वृतान्त से अनगार धर्म की व्याख्या की गई है ।

उदाहरण के माध्यम से किसी भी गभीर से गभीर विषय को सरलता से बोध गम्य बनाया जा सकता है । प्रभु ने भी अपनी देशनाओ मे धर्म कथाओ का पर्याप्त उपयोग किया है । जिन धर्म कथाओ द्वारा हमे जीवन की उलझी हुई ग्रन्थियो का विमोचन करने के साथ मुक्तानदवरण करने का दिग्वोध प्राप्त होता है ।

जिस प्रकार मुख पर लगी कालिमा को दूर करने के लिये दर्पण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आत्मा पर लगे कर्म-कालिमा को दूर करने के लिये परम पवित्र आत्मा के जीवन रुप, स्वच्छ दर्पण की आवश्यकता होती है, जिसे समक्ष रखकर अपनी आत्मा का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके ।

नाम का रहस्य

प्रस्तुत सूत्र का नाम अन्त + कृत + दशा + अग + सूत्र है ।

क्योकि प्रस्तुत सूत्र मे उन ९० महापुरुषो का जीवन वृत व्याख्यापित किया गया है, जिन्होने अपनी उत्कृष्ट सयम-साधना द्वारा सभी कर्मो का अन्त कर जीवन के अन्तिम क्षणो मे मोक्ष पद प्राप्त किया था । इसी अर्थ के परिचायक के रुप मे अग के नाम का प्रथम शब्द 'अन्तकृत' है ।

अन्तकृत के बाद दूसरा शब्द आता है-दशा । जैन सस्कृति मे दशा शब्द के दो अर्थ विशेपत प्रचलित है-

'दशा' शब्द का अर्थ— अवस्था लिया जाता है। नदी चूरिण मे दशा का अर्थ— अवस्था किया है।[1] जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन अर्थात् शुद्ध दशा–अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति करना दशा है।

प्रस्तुत सूत्र मे ऐसी दशा की ही प्रधानता होने से इस अग मे वर्णित सभी अन्तकृत साधक निरन्तर भोग से योग की ओर प्रगति करते है। इस शुद्ध अवस्था का परिचायक 'दशा' शब्द है।

(२) 'दशा' शब्द से दूसरा अर्थ 'दस की सख्या' भी लिया जाता है जिस सूत्र मे दस अध्ययन हो उसे भी दशा कहा जाता है। यद्यपि प्रस्तुत सूत्र मे आठ वर्ग है, किन्तु प्रथम, चतुर्थ, पचम, अष्टम वर्ग मे दस-दस अध्ययन है। प्रथम वर्ग से शास्त्र का आदि (प्रारभ) है, चतुर्थ वर्ग शास्त्र का मध्य हे, और अष्ठम वर्ग शास्त्र का अन्तिम भाग है। इन सभी के दस-दस अध्ययन होने से भी प्रस्तुत शास्त्र के नाम के साथ दशा शब्द सयोजित किया गया। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने नदी चूरिण मे और आचार्य हरिभद्र सूरि ने प्रथम वर्ग के दस अध्ययन होने से ही प्रस्तुत सूत्र का नाम 'अतगडदसाओ' बतलाया है।[2]

'दशा' शब्द के अनन्तर तृतीय 'अग' शब्द सयोजित किया गया है।

शरीर के एक अवयव विशेष को अग कहा जाता है, या किसी वस्तु विशेष के एकाश को भी उस वस्तु का अग कहा जाता है। तदनुसार तीर्थकरो के देशना रुपी विशिष्ट देह का एक अग प्रस्तुत सूत्र भी होने से इसके साथ 'अग' शब्द सयोजित किया गया है।

तीर्थकरो की देशना-धारा अर्थत प्रवाहित हुई थी। जिस धारा को सूत्र रुप मे नियोजित करने वाले मुख्यत प्राज्ञ पुरुष गणधर थे।

अग के बाद चतुर्थ 'सूत्र' शब्द सयोजित किया गया है।

अल्पाक्षर युक्त हो, असदिग्ध हो, सार पूर्ण हो, अनवद्य (दोष रहित) हो, उसे सूत्र कहा जाता है।[3] प्रभु की वाणी भी अल्प शब्दो मे असदिग्ध, गभीर और सार पूर्ण अर्थ को प्रकट करने वाली होने से, उस वाणी का सकलन सूत्र रुप मे किया गया है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत सूत्र के नामान्त मे सूत्र शब्द दिया गया है।

इस प्रकार इन सार्थक चार शब्दो का एकीकरण कर प्रस्तुत सूत्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' किया गया है ।

प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित प्राय सभी महापुरुष, केवलालोकित अर्थ को आयुष्य की अल्पता के कारण अभिव्यक्त नही कर पाने से भी उन्हे 'अन्तकृत केवली' कहा गया है ।

सूत्र परिचय–

प्रस्तुत सूत्र के परिचय के सन्दर्भ मे अनेक दृष्टिकोण पढने को मिलते है ।

'समवायागसूत्र' मे इस सूत्र के दस अध्ययन और सात वर्ग कहे गये है ।[1]

आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे आठ वर्ग का प्रतिपादन किया है किन्तु दस अध्ययनो का नही ।[2] आचार्य अभयदेव ने समवायाग वृत्ति मे दोनो ही सूत्रो का सामजस्य करते हुए लिखा है कि—प्रस्तुत सूत्र के प्रथम वर्ग मे दस अध्ययन होने से समवायाग सूत्र मे दस अध्ययन तथा अवशेष सात वर्गो को पृथक रूप से सात वर्ग के रूप मे परिगणित किये है । नदी सूत्र मे प्रथम वर्ग के अध्ययन न बतलाकर प्रथम वर्ग और सात वर्गो को मिलाकर आठ वर्ग परिगणित कर लिये है ।[3]

किन्तु इस सामजस्य का अन्त तक निर्वहन सभावित नही लगता । क्योकि समवायाग मे ही प्रस्तुत सूत्र के शिक्षा काल (उद्देशन काल) दस बतलाए गये है । जबकि नन्दी सूत्र मे आठ ही प्रतिपादित है । इसीलिये आचार्य अभयदेव ने यह स्वीकार किया है कि उद्देशनकालो के अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नही है ।[4]

अध्ययनो के नामो के भी पाठ भेद मिलते है ।

प्रस्तुत आगम मे एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, आठ उद्देशन काल, समुद्देशन काल और परिमित वाचनाएँ है । इसमे अनुयोगद्वार, वेदा, श्लोक, निर्युक्तियाँ, सग्रहणियाँ एव प्रतिपत्तियाँ सख्यात–सख्यात है । पद सख्यात और अक्षर सख्यात हजार बताये गए है । वर्तमान मे प्रस्तुत सूत्र ९०० श्लोक परिमाण बतलाया गया है ।

अष्ट वर्गो मे से प्रथम–द्वितीय वर्ग मे दस–दस अध्ययन, तृतीय वर्ग मे तेरह अध्ययन,

---

[1] दस अज्झयणासत्त वग्गा । —समवायाग प्रकीर्णक समवाय सूत्र–96

[2] अट्ठ वग्गा । —नदी सूत्र –88

[3] दस अज्झयणत्ति प्रथमवर्गापेक्षयैवघटन्ते, नन्द्या तथैव व्याख्यातत्वात् यच्चेह पठ्यते 'सत्त वग्ग' त्ति तद् प्रथम वर्गादन्य वर्गापेक्षयायतोऽष्टवर्गा नन्द्यामपि तथा पठितत्वात् ।—समवायाग वृति पत्र—112

[4] ततो भणित अट्ठ उद्देशन काला इत्यादि, इह च दस उद्देशन काला अधीयन्ते इति नास्यमभिप्रायमवगच्छाम ।—समवायाग वृति पत्र—112

चतुर्थ और पचम वर्ग मे दस-दस अध्ययन, षष्टम वर्ग मे सोलह, सप्तम वर्ग मे तेरह और अष्टम वर्ग मे दस अध्ययन प्रतिपादित है।

प्रस्तुत आगम मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान एव सर्वज्ञ सर्वदर्शी महावीर भगवान के तीर्थंकर कालीन युग की घटनाएँ प्रतिपादित की गयी है। जबकि प्रस्तुत सूत्र अनादि-शाश्वत है। अर्थात् प्रभु अरिष्टनेमि से भी पूर्व का है। तात्पर्य यह है कि सूत्रगत शाश्वत सदेश प्रारभ से चला आ रहा है, पश्चात् प्रासगिक रूप से घटनाओ का सयोजन किया गया है।

एतद् विषयक विस्तृत चर्चा आगे प्रश्नोत्तर के रूप मे की गई है।

वर्ग-परिचय—

प्रथम वर्ग के दस अध्ययन तथा द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन कुल मिलाकर अठारह अध्ययनो मे वृष्णि कुल के अट्ठारह राजकुमारो का वर्णन आया है। जो राजकुमार प्रभु की देशना श्रवण कर विरति के पथ पर अग्रसर हुए थे। प्रथम के दस राजकुमारो ने बारह-बारह वर्ष तथा अवशिष्ट आठ राजकुमारो ने सोलह-सोलह वर्ष पर्यन्त सयम-पर्याय का पालन किया था। सभी राजकुमारो ने श्रमण धर्म का पालन करते हुए उत्कृष्ट तपाराधना के साथ अन्त मे एक मास के सलेखना-सथारा पूर्वक सभी कर्मो का अन्त करके मुक्तावस्था प्राप्त की थी।

तृतीय वर्ग मे तेरह अध्ययन है। ये तेरह अध्ययन भी तेरह राजकुमारो के नाम से बतलाए गये है। इन्होने भी ससार की क्षणिकता का बोध प्राप्त कर सयम-पर्याय मे आकर सभी कर्मो का क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया था।

चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययन भी दस राजकुमारो के नाम से है। इन्होने भी दीक्षा अगीकार कर, सर्व कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया था।

पचम वर्ग मे पद्मावती आदि दस रानियो का वर्णन है। राजमहलो मे रहने वाली इन रानियो ने ससार की असारता का बोध प्राप्त कर, सयम पर्याय अगीकार कर सभी कर्मो का क्षय किया और मुक्तावस्था प्राप्त की।

षष्टम अध्ययन मे सोलह अध्ययन है, ये सोलह ही अध्ययन विभिन्न अवस्था वाले महापुरुषो के जीवन-वृत्त से सबधित है।

जहा मकाई, किंकम जैसे बडे श्रेष्ठियो का वर्णन आता है, वहाँ (उसी मे) मुद्गरपाणि [illegible] अर्जुनमाली का वर्णन भी आता है। इसी प्रकार अतिमुक्त जैसे कुमार की प्रवज्या का वर्णन भी आता है।

सातवे वर्ग के तेरह ही अध्ययन तथा आठवे वर्ग के दसो अध्ययन रानियो के नाम से है। इन सभी रानियो ने राजप्रासाद वैभव-विलास का त्याग कर कटकाकीर्ण सयमपथ स्वीकार किया

ा और साधनापथ पर आरूढ होकर उग्र तपाराधना से अपनी-अपनी आत्मा को निर्मल नाते हुए मोक्षावस्था को प्राप्त किया ।

प्रथम वर्ग से लेकर पांचवे वर्ग पर्यन्त सर्वज्ञ–सर्वदर्शी अर्हन्त अरिष्टनेमि के साथ विशेषकर ृष्ण वासुदेव का वर्णन आता है ।

जैन ग्रथो मे जिस प्रकार कृष्ण वासुदेव की चर्चा की गई है, वैसे ही श्री कृष्ण की चर्चा ैदिक एव बौद्ध ग्रथो मे भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है ।

वैदिक परपराओ मे कृष्ण–वासुदेव के विष्णु, नारायण, गोविन्दप्रभृति अनेक नाम मिलते ै । श्री कृष्ण वासुदेव के पुत्र थे इसलिये वे वासुदेव कहलाए ।

गीता मे श्री कृष्ण विष्णु के पूर्व अवतार के रूप मे माने जाते है ।[1] महाभारत मे उनकी ारायण के रूप मे स्तुति की गई है ।[2] तैत्तियारण्यक मे श्री कृष्ण को सर्वगुण सपन्न तलाया है ।[3]

पद्मपुराण वायुपुराण वामनपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवशपुराण एव श्रीमद्-भागवत् मे सविस्तृत श्री कृष्ण का वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार बौद्ध साहित्य के घट जातक मे श्री कृष्ण का वर्णन मिलता है ।[4]

जैन परम्परा मे श्री कृष्ण अत्यन्त दयालु, नीति प्रधान मातृभक्त कर्त्तव्य परायण एव तेजस्वी व्यक्ति के रूप मे प्रतिपादित किये गये हैं ।

श्री कृष्ण वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि के परम भक्त थे । तीन खण्ड का सचालन करने का गुरुतर दायित्व होते हुए भी कृष्ण-वासुदेव जब अरिष्टनेमि भगवान का द्वारिका के बाहर पदार्पण होता तब-तब अपने अन्य सभी कामो को स्थगित कर प्रभु को वंदामि-नमंसामि करने एव उनकी दिव्य वाणी का श्रवण करने प्रभु शरण मे पहुच जाते । अरिष्टनेमि प्रभु से श्री कृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे । तो आध्यात्मिक दृष्टि से श्री कृष्ण से अरिष्टनेमि प्रभु ज्येष्ठ थे ।

प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त कर श्री कृष्ण इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी राज-पाट छोडकर दीक्षा लेने का विचार करने लगे किन्तु श्रामण्य पर्याय अंगीकार नही कर सके, क्यो कि उनका वासुदेव पद निदान कृत था । इसी कारण वे चतुर्थ गुणस्थान से आगे नही बढ सके ।

श्री कृष्ण वासुदेव की तरह ही अरिष्टनेमि प्रभु का उल्लेख भी जैन परपरा के अतिरिक्त वैदिक परपरा मे भी अनेक स्थलो पर किया गया है । जैसे ऋग्वेद मे 'स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि' 'तार्क्ष्य अरिष्टनेमि' आदि[1] इस प्रकार अनेक स्थलो पर प्रभु अरिष्टनेमि का नाम मिलता है । यजुर्वेद, सामवेद आदि मे भी स्थाथ-स्थान पर प्रभु अरिष्टनेमि का नाम उपलब्ध होता है ।

यजुर्वेद के स्थल पर तो जैन परम्परा मे प्रतिपादित अरिष्टनेमि के गुण वर्णन के सदृश्य ही वर्णन प्राप्त होता है । जो कि इस प्रकार है—

"आध्यात्म यज्ञ को प्रकट करने वाले, ससार के सभी भव्य जीवो को उपदेश देने वाले, जिनके उपदेश से सभी जीवो की आत्मा बलवान होती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिये आहुति समर्पित करता हू ।[2]

प्रथम के पाँच वर्ग मे विवेचित ५१ महान् साधको ने भगवान अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे साधना सिद्धि की थी । तदनन्तर छट्ठे से आठवे वर्ग गत ३९ भव्यात्माओ ने चरमतीर्थंकर प्रभु महावीर के सान्निध्य मे साधना–सिद्धि की थी ।

प्रस्तुत सूत्र की कुछ विशेषताएँ—

अध्ययन —प्रथम-द्वितीय वर्गगत १८ राजकुमारो ने सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करके केवल्य प्राप्त किया था । तृतीय वर्गगत तेरह अध्ययनो मे से गजसुकुमाल अनगार को छोडकर शेष बारह अध्ययन गत महान साधको ने चतुर्दश पूर्वधारी होकर केवल्य को प्राप्त किया था । गजसुकुमाल अनगार ने किसी भी शास्त्र का अध्ययन किये बिना केवल्य प्राप्त किया था ।

चतुर्थ वर्ग गत सभी अध्यात्म साधक ने द्वादशाङ्गी का अध्ययन कर केवल्य प्राप्त किया था । शेष सभी महापुरुष एकादश शास्त्रो का अध्ययन करके केवली, अतकृत हुए ।

दीक्षा पर्याय —सबसे अधिक दीक्षा पर्याय अतिमुक्तक कुमार की रही । जिन्होने यौवन के विस्फोट से पूर्व ही प्रव्रज्या अगीकार करली और दीर्घकाल तक सयम पर्याय का पालन कर अतकृत केवली हुए थे ।

गजसुकुमाल अनगार ऐसे महापुरुष हुए थे कि जिन्होने कुछ घटो की सयम साधना के अनन्तर सभी कर्मो का क्षय कर अन्तकृत केवली हुए थे । अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु मे अन्तकृत केवली नही हुए ।

---

[1] ऋग्वेद—1/14/89/9

[2] वाजसनेयि–माध्यदिन शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय—9, मत्र–15 सातवलेकर सस्करण (विक्रम–1984)।

छः माह की दीक्षा पर्याय और पन्द्रह दिनो का सथारा अर्जुन अनगार को आया था। अन्य सभी महान् आत्माओ की वर्षो की दीक्षा पर्याय रही एव एक-एक मास का सथारा आया था।

जीवन —दो महान् साधक बाल ब्रह्मचारी हुए है—गजसुकुमाल अनगार और अतिमुक्तक अनगार। शेष सभी महान् आत्माएँ भोग से निवृत्त हो योग मे प्रवृत्ति कर अन्तकृत हुई।

दो राजकुमार एक दिन के लिए राजा बने। एक द्वारिका नगरी के गजसुकुमाल और पोलासपुर नगर के अतिमुक्त कुमार। एक वाराणसी नगरी के सम्राट अलक्ष थे। इस प्रकार तीन राजा हुए। शेष सभी राजा, राजकुमार, युवराज, महारानिया और श्रेष्ठी वर्ग आदि अन्तकृत हुए।

गजसुकुमाल अनगार एव अर्जुन अनगार को प्रभूत परिषह सहने पडे, अन्य साधक-साधिकाओ को इतने नही। अर्जुन अनगार के अतिरिक्त सभी महान् आत्माएँ राजकुल और श्रेष्ठी कुल मे उत्पन्न होकर अन्तकृत हुई।

निर्वाण-स्थल —गजसुकुमार का निर्वाण महाकाल नामक श्मशान भूमि पर हुआ था। शेष सभी अनगार विपुलगिरि या शत्रुञ्जय पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे। साध्वियाँ सभी उपाश्रय मे ही निर्वाण को प्राप्त हुई।

कितने पुरुष-कितनी स्त्रियाँ

पाँचवे वर्गगत दस, सातवे वर्गगत तेरह एव आठवे वर्गगत दस, इस प्रकार ३३ अध्ययन राजा रानियो के हैं। जिन्होने सयम अगीकार कर कर्मान्त किया था। अवशेष सभी पुरुष अन्तकृत हुए थे।

शासन—किसका —भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल मे इकतालीस अनगार और दस आर्यिकाएँ अन्तकृत केवली हुई। भगवान महावीर के शासन-काल मे सोलह अनगार और तेवीस आर्यिकाएँ अन्तकृत केवली हुई।

भगवान अरिष्टनेमि के शासनकाल मे यक्षिणी आर्या प्रवर्तनी थी और भगवान महावीर के शासन काल मे चन्दन बाला आर्या प्रवर्तनी थी।

आदर्श—शिक्षाएं —प्रस्तुत सूत्र का अध्ययन करने से भव्य आत्माओ को जीवन की विविध समस्याओ का समाधान करने वाली हित शिक्षाएँ प्राप्त होती है। उन आदर्श महापुरुषो के जीवन से शिक्षा लेकर भव्य आत्माएँ आदर्शमय बन जाती हैं।

(१) कामभोगो की क्षणिकता का ज्ञान गौतमादि कुमारो की तरह होना चाहिये। जिन्होने यौवन के विस्फोट मे ही सयम जीवन अगीकार कर लिया था।

(२) सयमीय साधना के महापथ पर आने वाले घोरतम परिषह उपसर्गो को समभाव के साथ-सहन करने वाले गजसुकुमाल अनगार की तरह धैर्य एव दृढ विश्वास होना चाहिये।

(३) भव्य आत्माओ को सयम महापथ पर अग्रसर करने के लिये धर्मदलाली और धर्म के प्रति अटूट विश्वास कृष्ण वासुदेव की तरह होना चाहिये ।

(४) विशिष्ट शक्ति एव लब्धि से सम्पन्न प्रद्युम्नकुमार की तरह सब कुछ होते हुए भी शाश्वत शाति पाने के लिये सब कुछ त्याग कर सयम के महापथ पर बढ जाना चाहिये ।

(५) पुष्पो की शय्या पर शयन करने वाली, कोमलाङ्गी पद्मावती आदि महारानियो की तरह महिलाओ को भी देह-मोह से हटकर विदेह पथ पर दृढता के साथ बढना चाहिये ।

(६) कर्मों का क्षय करने के लिए अर्जुन अनगार की तरह सहनशक्ति होनी चाहिये ।

(७) श्रमणोपासक मे सुदर्शन श्रमणोपासक की तरह सशक्त आत्मबल, प्रभु एव धर्म के प्रति दृढ विश्वास होना चाहिए ।

(८) सत्सघ का अमिट रग एव प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्तक अनगार की तरह होनी चाहिये ।

(९) काली-सुकाली आदि आर्यिकाओ को तरह विविध प्रकार के तप-कर्म मे अपने शरीर को शुष्क कर, आत्म तेज को जागृत करना चाहिये । इस प्रकार अनेक शिक्षाएँ इस शास्त्र से जिज्ञासु आत्माओ को प्राप्त होती है ।

पर्यूषण मे ही अतगड का वाचन क्यो ?

शास्त्रो का गहन-गभीर ज्ञान प्राप्त करने के लिये मन और मस्तिष्क का शात रहना उतना ही आवश्यक है जितना की तलगत वस्तु को देखने के लिये सरोवर के पानी का निस्तरग रहना ।

मन और मस्तिष्क की ऐसी शाति, समस्याओ के समाधान के विना नही हो सकती । गृहस्थ जीवन के त्यागी-साधक के लिये तो ऐसी कोई समस्या नही होती, किन्तु ससार के रग-मच पर जीने वाले मानव के मस्तिष्क मे अनेक प्रकार की समस्याएँ उभरती रहती है । अनेकविध समस्याओ मे प्रमुख समस्या होती है– अर्थोपार्जन की । जिसकी प्राप्ति के लिये वह सदा व्यापार आदि करता रहता है । किन्तु चातुर्मासिक दिनो मे वैसे भी व्यापार कम ही चलता है और फिर पर्यूपणो मे और भी कम । वे दिन तो आत्म-जागरण के होते है ।

पर्यूपण के इन अष्ट दिवसो मे भव्य आत्माएँ वर्ष भर के कर्म कलिमल को प्रक्षालित करने का प्रयास करती है । इस कलिमल का प्रक्षालन करने के लिए शुद्ध, निरजन स्वरूप किसी आदर्श की आवश्यकता होती है । जिनके जीवन-वृत्तान्त को पढकर या श्रवणकर चिन्तन-मनन के साथ अपनी आत्मा के साथ आत्मसात् किया जा सके ।

ऐसे ही पथ-प्रदर्शक आदर्श महापुरुपो का वर्णन प्रस्तुत सूत्र मे प्रचुरता के साथ किया गया है । सभव है इसी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर पूर्वाचार्यो ने 'अन्तगडसूत्र' का वाचन

पर्यूषण मे रखा हो या फिर ऐसा भी हो सकता है कि प्रस्तुत सूत्र के अष्टाह्निक पाठो के आधार पर पर्यूषण पर्व को भी अष्टाह्निक पर्व के रूप मे प्रचलित कर दिया गया हो। क्योकि शास्त्र के अन्त मे प्रस्तुत सूत्र की स्वाध्याय वाचना अष्टदिवसो मे ही पूर्ण करने का निर्देश दिया गया है।

मूल-आगम मे कही पर भी पर्यूषण के दिनो मे ही 'अन्तगडसूत्र' की वाचना का निर्देश नही दिया गया है। पश्चात्वर्ती आचार्यों ने ही इस प्रकार का सयोजन किया है। वैसे अन्तगडसूत्र को वाचना (स्वाध्याय) किसी भी दिन की जा सकती है।

कुशल व्याख्याकार आचार्य श्री नानेश—

प्रखर प्रतिभा सम्पन्न, आगम रत्नसदोह, श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य श्री नानेश प्रस्तुत सूत्र के कुशल व्याख्याकार है। जिनकी प्रखर मेधा, आगमानुकूल गभीर अर्थ को सुबोधगम्य रूप मे प्रतिपादित करने की सहज अभ्यासी रही है, जिनके कुशल नेतृत्व को पाकर जहां चतुर्विध सघ अहर्निश विकास कर रहा है, वहा उन्ही के द्वारा व्याख्यायित मूलानुसारी अभिनव विवेचन भी जिज्ञासुओ के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

आचार्य प्रवर से आगम वाचना ग्रहण करते समय आपश्री के मुख से सूत्रो की आगमनुकूल अभिनव विवेचना सुनने को मिली तब साधक-साधिकाओ का मानस अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठा। विचार चलने लगा कि ऐसी विवेचना हमने किसी शास्त्र की व्याख्या मे नही पढी।

समवेतस्वर प्रस्फुटित हुए—साधक-साधिकाओ के गुरुदेव! हमारी मति इतनी पैनी नही है कि हम आपश्री द्वारा व्याख्यायित विषय को हुवहू ग्रहण कर ले। अत भगवन्! शास्त्र की व्याख्याओ को लिपिवद्ध करवादे तो हम सब पर अत्यन्त उपकार होगा।

शिष्य-शिष्याओ की भावना को लक्ष्य मे रखते हुए परम कृपालु गुरुदेव ने शासन संवधी कार्यो मे अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी समय निकाल कर शास्त्र का विवेचन लिखवाना प्रारम्भ कर दिया। अब तक आचाराग सूत्र की आगम-सम्मत्त विलक्षण विवेचना, इसी तरह भगवती सूत्र के कितनेक शतको की मूलानुसारी अभिनव विवेचना सम्पन्न हो चुकी है। उसी शृंखला मे गुरुदेव ने 'अन्तकृतदशाङ्गसूत्र' की प्रश्नोत्तर के रूप मे तलस्पर्शी विवेचना प्रस्तुत की है। निश्चय ही जिज्ञासु आत्माओ के लिए यह सूत्र निश्रेयस् की प्राप्ति मे सहायक सिद्ध होगा।

गुरुदेव के निर्देश को पाकर, उन्ही की अहेतु की असीम कृपा के परिणाम स्वरूप मैं प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुवाद एव सपादन आदि का कार्य सपन्न कर सका हू।

मूल पाठ, जावपूर्ति, अनुवाद और सपादन आदि का कार्य निम्न ग्रन्थो को समक्ष रखकर किया गया है --

१ अन्तकृद्दशाग सूत्र-सटीक अभयदेवसूरि
२ " " आचार्य श्री आत्मारामजी म सा
३ " " युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म सा
४ " " प्यारे लालजी म सा
५ " " (प्रश्नोत्तर) घीसू लालजी पीतलिया
६ " " पूज्य घासी लालजी म सा
७ अग सुत्ताणि-मु नथमलजी म सा
८ जैन लक्षणावली भा १, २, ३, बाल चन्द्रजी
९ निरुक्त कोश-युवाचार्य महाप्रज्ञ
१० पाइअसद्दमहण्णवो
११ जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भा १ से ८ आदि, आदि

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करने, जाव पूर्ति, मूल पाठ तैयार करने एव परिभाषाओ के सकलन मे आगम-अहिसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर के प्रभारी श्री मानमलजी कुदाल एव उनके सहायक श्री सुभाषजी कोठारी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सपादन एव अनुवाद आदि करने मे कही कुछ भी स्खलना हो गई हो तो सुज्ञ-जनो से स्पष्टीकरण की अपेक्षा के साथ—

दिनाक १-४-८४
बुधवार

मुनिज्ञान

राजेन्द्रनगर
कुलुपवाडी रोड
नेशनल पार्क के सामने
बोरिवली (ईस्ट)
बम्बई-४

विषयानुक्रम

चतुर्थ वर्ग

पचम वर्ग

षष्ठ वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिपणीयं अट्ठमं अगं

अन्तगडदसाओ

पञ्चमगणधर-श्रीमत्सुधर्मस्वामिप्रणीतम्-अष्टमम् अङ्गम्

अन्तकृद्दशा

उत्थानिका

भगवान महावीर के निर्वाण होने के पश्चात् उनके पाट पर पचम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी विराजे। उनके प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी थे। जब वे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चपानगरी मे पधारे तब जम्बू स्वामी ने आठवे अन्तकृद्दशाग सूत्र का बोध प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रस्तुत की।

जिसका समाधान दिया—आर्य सुधर्मा स्वामी ने। ज्ञान प्राप्त करने की परपरा चिरतन काल से गुरु के द्वारा चली आ रही है। सुगुरू के द्वारा प्राप्त किया ज्ञान ही शिष्य के लिये नि श्रेयस् प्राप्त कराने वाला होता है।

'अन्तकृद्दशाग सूत्र' के आठ वर्गो मे से प्रथम वर्ग के दस अध्ययनो का वर्णन करते हुए सुधर्मा स्वामी ने बतलाया—

उस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे मे द्वारिका नामक सुरम्य नगरी थी। जिसके प्रमुख अधिपति अर्द्ध भरत के राजा कृष्ण-वासुदेव थे। जो विशाल ऋद्धि-समृद्धि के स्वामी थे। द्वारिका नगरी के बाहर ईशाण-कोण मे रेवतक नामक पर्वत पर नदनवन नामक उद्यान था।

द्वारिका नगरी मे अन्य अनेक राजा-महाराजाओ मे श्रेष्ठ एक अधक वृष्णि नामक राजा भी थे, जिनकी महारानी का नाम धारिणी था। जिनके दस राजकुमार थे।

दसो राजकुमारो को धारणी नामक रानी ने शुभ स्वप्न देखकर क्रमश जन्म दिया था। इनका अच्छी तरह मे लालन-पालन किया गया। ७२ कलाओ मे प्रवीण होकर जब वे युवानी की दहली पर पदचरण करने लगे तब इनका ममान रूप-गुण-वय वाली आठ-आठ श्रेष्ठ कन्याओ के साथ विवाह कर दिया गया। वधु-पक्ष की ओर मे इन सभी राजकुमारो को प्रत्येक के यहा मे एक-एक करोड, सब मिलाकर आठ-आठ करोड सोनैया प्राप्त हुआ। सभी राजकुमार सासारिक काम भोग भोगते हुए रहने लगते है।

इधर उसी समय मे बाईसवे तीर्थंकर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए द्वारिका मे पधार जाते हे। जिनका उपदेश सुनने के लिये भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिप, वैमानिक के रूप मे चारो प्रकार के देव तथा कृष्ण वासुदेव, द्वारिका की विशाल जनमेदिनि एव गौतम कुमार आदि द्वादश विध परिषद् उपस्थित होती हे।

अध्यात्म प्रधान एक ही उपदेश से गौतम कुमार को ससार मे विरक्ति हो गई और वे अपने माता-पिता को समझाकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र मे वर्णित मेघ कुमार की भाँति साज-सज्जा के साथ भगवान के चरणो मे पहुँच कर भागवती दीक्षा अगिकार कर लेते हे। प्रभु के निर्देशानुसार शुद्ध सयस का पालन करते हे। सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करते हे। उपवास, वेला आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्या करते हैं। वारह भिक्षु प्रतिमा की अराधना करते हैं। गुणरत्न सवत्सर नामक तप करते हैं। इस प्रकार अपनी आत्मा को तप-सयम से विशुद्ध करते हुए एकदा रात्रि मे उन्हे स्कदक अनगार की तरह एक शुभ विचार आता है–अव मुझ मे उत्थान-कर्म-वल-वीर्य-पुरुपाकार पराक्रम वैसा नही रहा है, जिससे कि मैं तप-सयम की दीर्घकाल तक अराधना कर सकूँ। अत मुझे अवशिप्ट उत्थानादि रहते हुए प्रभु से आज्ञा प्राप्त कर, चतुर्विध सघ से क्षमा-याचना कर, स्थविर भगवतो के साथ शत्रुजय पर्वत पर सलेखना-सथारा कर लेना चाहिये। प्रात काल वे प्रभु के चरणो मे अपने विचार निवेदन कर प्रभु की आज्ञा प्राप्त करते है और रात्रि के विचारो का क्रियान्वयन करते हुए शत्रुजय पर्वत पर सलेखना सथारा ग्रहण कर लेते है। उनका सथारा एक मास पर्यन्त चलता है। इस प्रकार गौतम अनगार वारह वर्ष तक शुद्ध सयम का पालन कर एक मास पर्यन्त सलेखना-सथारा मे सभी कर्मो का क्षय करके सिद्ध, वुद्ध, मुक्त, अवस्था को प्राप्त करते हे।

गौतम कुमार की तरह ही अवशेप कुमार भी प्रभु का एक ही उपदेश सुनकर विरक्ति के पथ पर बढ जाते हे और गौतम कुमार की तरह ही सयम जीवन का पालन कर मासिक सलेखना सथारा पूर्वक देह मुक्त, विदेह-सिद्धत्व अवस्था मे विचरण करने लगते हे।

अंतगडदसाओ : अन्तकृद्दशा

पढमो वग्गो : प्रथम वर्ग

1–तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए[3]–वण्णओ[A]। तीसे णं चंपाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था। महया हिमवंत0 वण्णओ। तेणं कालेणं[1] तेणं समएण[2] अज्ज सुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव[B] पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स[4] अंतेवासी अज्ज जंबू जाव[C] पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

उस काल उस समय मे चपा नामक नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य–यक्ष मदिर था। जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए। उस चपा नामक नगरी मे शक्ति सम्पन्न कोणिक नामक राजा था।

उस काल उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ चपा नगरी मे आये। परिषद्—धर्म देशना सुनने वाली जनता, धर्म देशना सुनने के लिए नगरी से निकली। उपदेश सुना और पुन अपने-अपने स्थान पर लौट आयी। उस काल उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी के अन्तेवासी शिष्य आर्य जबू विनम्रता के साथ पर्युपासना करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी से इस प्रकार बोले—

2–"जइ णं भंते! समणेणं[6] भगवया महावीरेणं आदिकरेणं जाव[D] संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं[7] अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते! अंगस्स अंतगडदसाणं[8] समणेणं भगवया महावीरेणं[9] जाव[E] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?"

"हे भगवन्! श्रुतधर्म की आदि करने वाले, यावत् निर्वाण पद को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने यदि सप्तम अग उपासकदशाङ्ग सूत्र का यह अर्थ फरमाया है, जिसको कि मैने अभी आप श्री के मुख से सुना तो हे भगवन्! अब यह बताने की कृपा करे कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र का क्या अर्थ फरमाया है?"

"एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[F] संपत्तेणं अट्ठमस्स

आर्य जम्बू के प्रश्न का आर्य सुधर्मा ने इस प्रकार समाधान दिया —

अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता ।"

"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादित किये है ।"

3—"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[A] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[B] संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—"हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने, यावत् आठवे अग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग प्रतिपादित किये है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादित किये है ?"

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[C] संपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा—

हे जम्बू ! यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे है। जैसे कि—

गाहा :—

**"गोयम, समुद्द, सागर—गभीर चेव होइ थिमिए य ।
अयले कंपिल्ले खलु अक्खोभ—पसेणइ—विण्हू ।।"**

"(१) गौतम, (२) समुद्र, (३) सागर, (४) गभीर, (५) स्तिमित, (६) अचल, (७) काम्पिल्य, (८) अक्षोभ, (९) प्रसेनजित और (१०) विष्णुकुमार ।"

प्रथम अध्ययन गौतम

4—उत्थानिका :—

"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[D] सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता,

आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जम्बू स्वामी ने इस प्रकार निवेदन किया—"हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने, यावत् आठवे अग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादित किये है तो हे

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[8] संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?''

भगवन् ! श्रमण, यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?'

द्वारिका वर्णन—

5—''एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नाम नयरी होत्था दुवालसजोयणायामा नव-जोयण[10]-वित्थिण्णा, धणवइ-मइ-णिम्माया, चामीकर-पागारा नाणा-मणि-पंचवण्ण कविसीसगपरिमंडिया, सुरम्मा, अलकापुरि-संकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया[11] पासादीया दरिशणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

जम्बू अनगार के प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—''हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नामकी एक नगरी थी । वह बारह योजन आयाम---लम्बाई तथा नौ योजन विष्कंभ—चौडाई वाली थी । धनपति--वैश्रमण देव कुबेर की विलक्षण मति (बुद्धि) से निर्मित थी । चामीकर--सोने के प्राकार—परकोटे वाली थी । नाना प्रकार की मणियो एव पांच वर्ण वाले कपिशिर्पक—कगूरो से सुसज्जित थी । अति रमणीय थी । अल-कापुरी—देवो की नगरी के समान थी । जो प्रमोद एव क्रिडा का स्थान थी । साक्षात् देवलोक के समान प्रतीत होती थी । देखने योग्य थी । चित्त को प्रसन्न करने वाली थी । अभिरूप थी प्रतिरूप थी ।

तीसे ण बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था । वण्णओ[A]। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे[12]नामं उज्जाणे होत्था । वण्णओ[B] । सुरप्पिए नामं जक्खायतणे[13] होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे0''[C]।

इस प्रकार की द्वारिका नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा भाग मे—ईशान कोण मे, रैवतक नामक एक पर्वत था । उन रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था । जिसका वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार जानना चाहिये । उस उद्यान मे सुरप्रिय नामक यक्ष का प्राचीन यक्षायतन था । वह अनेक प्रकार के वृक्षो से परिवृत—घिरा हुआ था । जिसके मध्य मे अशोक नामक एक प्रधान वृक्ष था ।

6—तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे नामं वासुदेवे[14] राया परिवसइ। महया वण्णग्रो।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव[15] पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराण, पज्जुण्णपामोक्खाण अध्दुट्ठाणं कुमारकोडीणं संवपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए वलवग्गसाहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रूप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं ग्रणंगसेणापामोक्खाणं ग्रणेगाणं गणियासाहस्सीणं ग्रण्णेसिं च वहूणं, ईसर जाव[A] सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए ग्रद्धभरहस्स य समंतस्स ग्राहेवच्चं जाव[B] विहरइ।

उस द्वारिका नगरी मे कृष्ण वासुदेव नामक राजा राज्य करते थे। जो कि महान् थे। राजा के योग्य सारा वर्णन ग्रोपपातिक सूत्र के ग्रनुसार जानना चाहिये।

उस द्वारिका नगरी मे कृष्ण महाराज के ग्रतिरिक्त समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह (पूज्यजन), वलदेव प्रमुख पाँच महावीर, प्रद्युम्न प्रमुख साढे तीन करोड राजकुमार, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन प्रमुख छप्पन हजार सैनिक, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजा, रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देविया, ग्रनगसेना प्रमुख हजारो गणिकाए थी। इसके ग्रतिरिक्त भी एश्वर्यशाली ग्रनेक सेठ साहूकार, सार्थवाह निवास करते थे। इन सव पर तथा द्वारिका नगरी एव ग्रर्द्ध-भरत की समस्त प्रजा पर, कृष्ण वासुदेव ग्राधिपत्य-शासन कर रहे थे।

7—तत्थ णं बारवईए नयरीए ग्रंधगवण्ही नामं राया परिवसइ। महया हिमवंत0 वण्णग्रो।

तस्स ण ग्रंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था वण्णग्रो।

तए णं सा धारिणी देवी

उस द्वारिका नगरी मे ग्रधगवृष्णि नामक राजा निवास करता था। पर्वतो मे श्रेष्ठ हिमवान पर्वत की तरह वह ग्रन्य सभी राजाग्रो मे महान् था, जिसका विशेष वर्णन ग्रौपपातिक सूत्र से जानना चाहिये।

उस ग्रधिकवृष्णि राजा के धारिणी नामक रानी थी। किसी समय महारानी धारिणी, उत्तम शय्या पर ग्रर्धनिद्रित ग्रवस्था मे एक शुभस्वप्न को देखती है। जिसे देखकर

अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले।

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य ॥
जोव्वण-पाणिग्गहणं कण्णा वासा य भोगा य।

नवरं गोयमो नामेणं अट्ठण्हं रायवरकण्णणां एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति अट्ठट्ठओ दाओ।

जागृत हो जाती है, और उस स्वप्न का यथावत् वर्णन अपने पति को सुना देती है। उस स्वप्न का फल, बालक का जन्म और उसका बालत्व, कलाओ का अध्ययन, यौवनत्व की अवस्था, कान्ता-कान्त कुमारिकाओ के साथ पाणिग्रहण (विवाह), प्रासादो-महलो का निर्माण और कामभोग आदि सारा वर्णन भगवतीसूत्रगत महाबल के वर्णन के अनुसार जान लेना चाहिये।

नवर-विशेषता इतनी है कि महाबल-कुमार के नाम के स्थान पर प्रस्तुत मे वर्णित कुमार का नाम गौतम कुमार रखा गया। यौवनवय मे आठ श्रेष्ट कन्याओ के साथ एक ही दिवस मे उनका विवाह कर दिया गया। आठ-आठ दाते (आठ-आठ करोड सौनैया) दी गई।

8—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। तते णं तस्स गोयमस्स कुमारस्स जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्मं[17] सोच्चा जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि एवं जहा मेहे जाव इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरे काउं विहरइ।

उस काल उस समय मे श्रुतधर्म का प्रारभ-प्रवर्तन करने वाले अरहा-अरिहन्त बाइसवे तीर्थंकर अरिष्टनेमि भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपने तप सयम की आराधना करते हुए द्वारिका नगरी मे पधारे। उनके समवसरण मे चार प्रकार के देव, भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिष और वैमानिक उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव के साथ विशाल जनमेदिनि भी उपस्थित थी। तदनन्तर मेघकुमार की तरह गौतमकुमार भी प्रभु के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। धर्म श्रवण कर अर्थात् एक ही उपदेश मे उनका जीवन रूपान्तरित हो गया और वे बोले-भगवन्! मै अपने माता-पिता को पूछकर आपके पास दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो किन्तु शुभ कार्य मे किचित् भी विलम्ब

6—तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे नामं वासुदेवे[14] राया परिवसइ। महया वण्णओ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव[15] पामोक्खाणं पंचण्ह महावीराणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अध्दुट्ठाणं कुमारकोडीणं संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रूप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं, ईसर जाव[A] सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समंतस्स आहेवच्चं जाव[B] विहरइ।

उस द्वारिका नगरी मे कृष्ण वासुदेव नामक राजा राज्य करते थे। जो कि महान् थे। राजा के योग्य सारा वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिये।

उस द्वारिका नगरी मे कृष्ण महाराज के अतिरिक्त समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह (पूज्यजन), बलदेव प्रमुख पाँच महावीर, प्रद्युम्न प्रमुख साढे तीन करोड राजकुमार, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन प्रमुख छप्पन हजार सैनिक, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजा, रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देविया, अनगसेना प्रमुख हजारो गणिकाए थी। इसके अतिरिक्त भी एश्वर्यशाली अनेक सेठ साहूकार, सार्थवाह निवास करते थे। इन सब पर तथा द्वारिका नगरी एव अर्द्ध-भरत की समस्त प्रजा पर, कृष्ण वासुदेव अधिपत्य-शासन कर रहे थे।

7—तत्थ णं बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ। महया हिमवंत0 वण्णओ।

तस्स ण अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था वण्णओ।

तए णं सा धारिणी देवी

उस द्वारिका नगरी मे अधगवृष्णि नामक राजा निवास करता था। पर्वतो मे श्रेष्ठ हिमवान पर्वत की तरह वह अन्य सभी राजाओ मे महान् था, जिसका विशेप वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिये।

उस अधिकवृष्णि राजा के धारिणी नामक रानी थी। किसी समय महारानी धारिणी, उत्तम शय्या पर अर्धनिद्रित अवस्था मे एक शुभस्वप्न को देखती है। जिसे देखकर

अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले।

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य॥
जोव्वण-पाणिग्गहणं कण्णा वासा य भोगा य।

नवरं गोयमो नामेणं अट्ठण्हं रायवरकण्णणां एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति अट्ठओ दाओ।

जागृत हो जाती है, और उस स्वप्न का यथावत् वर्णन अपने पति को सुना देती है। उस स्वप्न का फल, बालक का जन्म और उसका बालत्व, कलाओ का अध्ययन, यौवनत्व की अवस्था, कान्ता-कान्त कुमारिकाओ के साथ पाणिग्रहण (विवाह), प्रासादो-महलो का निर्माण और कामभोग आदि सारा वर्णन भगवतीसूत्रगत महाबल के वर्णन के अनुसार जान लेना चाहिये।

नवर-विशेषता इतनी है कि महाबल-कुमार के नाम के स्थान पर प्रस्तुत मे वर्णित कुमार का नाम गौतम कुमार रखा गया। यौवनवय मे आठ श्रेष्ट कन्याओ के साथ एक ही दिवस मे उनका विवाह कर दिया गया। आठ-आठ दाते (आठ-आठ करोड सौनैया) दी गई।

8—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। तते णं तस्स गोयमस्स कुमारस्स जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्मं[17] सोच्चा जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि एवं जहा मेहे जाव इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरे काउं विहरइ।

उस काल उस समय मे श्रुतधर्म का प्रारभ-प्रवर्तन करने वाले अरहा-अरिहन्त बाइसवे तीर्थकर अरिष्टनेमि भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपने तप सयम की आराधना करते हुए द्वारिका नगरी मे पधारे। उनके समवसरण मे चार प्रकार के देव, भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिष और वैमानिक उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव के साथ विशाल जनमेदिनि भी उपस्थित थी। तदनन्तर मेघकुमार की तरह गौतमकुमार भी प्रभु के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। धर्म श्रवण कर अर्थात् एक ही उपदेश मे उनका जीवन रूपान्तरित हो गया और वे बोले-भगवन्! मै अपने माता-पिता को पूछकर आपके पास दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो, किन्तु शुभ कार्य मे किंचित् भी विलम्ब

मत करो। आदि-सारा वर्णन मेघकुमार की तरह जानना चाहिए। गौतम कुमार ने भी माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की तथा निर्ग्रन्थ प्रवचन को सामने रखते हुए अर्थात् प्रभु के निर्देशानुसार श्रुत एवं चारित्र धर्म का पालन करते हुए विचरण करने लगे।

9— तए णं से गोयमा अणगारा कयाइं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं[18] एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव[A] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। 'तए णं' अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइ बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ पडिणिक्खमइ बहिया जणवयविहारं विहरइ।

वे गौतम अनगार किसी समय अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करते हे। अध्ययन करके चउत्थ—उपवास आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को तप संयम में भावित करते हुए विचरण करने लगते हैं।

किसी अन्य समय में अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान द्वारिका नगर के नन्दनवन से विहार कर जनपद में विचरण करने लगते हैं। तप—संयम से भावित गौतम अनगार एकदा अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरणों में उपस्थित होते है। उपस्थित होकर प्रभु को तीन बार विधिपूर्वक आदक्षिणा—प्रदक्षिणा वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहते हे—

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

10—"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं

"हे भगवन्! आपश्री द्वारा अभ्यनुज्ञात आज्ञा प्राप्त होने पर मैं यह चाहता हूँ कि मासिकी भिक्षु प्रतिमा को ग्रहण करके विचरूँ।" भगवान की आज्ञा प्राप्त हुई।

विहरित्तए" एवं जहा खंदओ तहा बारसभिक्खुपडिमाओ फासेइ फासित्ता गुणरयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं। जहा खंदओ तहा चिंतेइ। तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धि सेत्तुंजं दुरूहइ बारस वरिसाइं परियाए मासियाए संलेहणाए जाव[8] सिद्धे–बुद्धे–मुत्ते–परिणिव्वाए–सव्वदुक्खपहीणे ।

आज्ञा प्राप्त होने पर गौतम अनगार ने शास्त्र विधि अनुसार मासिकी भिक्षु-प्रतिमा का आराधन किया। इसी प्रकार अवशेप सभी प्रतिमाएँ अर्थात् वारह ही भिक्षु प्रतिमाओ का भगवतीसूत्र मे वर्णित स्कन्दक अनगार की तरह आराधन किया। आराधना करके गुणरत्न सवत्सर नामक तप का आराधन किया। निर्विशेप अर्थात् अवशेष सारा वर्णन स्कदक अनगार की तरह है। वे भी रात्रि मे चिन्तन करते है। प्रात प्रभु के समक्ष निवेदन करते है। प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर स्थविर अनगारो के साथ शत्रु जय पर्वत पर आरोहण करते है—चढते है, चढकर सलेखना सथारा किया। बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय एव एक मास के सलेखना सथारा मे सपूर्ण कर्मो का अन्त कर सिद्ध, बुद्ध-मुक्त परिनिर्वाण एव सब दुखो को हरण करने वाली अवस्था को प्राप्त करते है ।

2-10 अध्ययन

निक्षेप पद–

11–"एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[A] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

एवं जहा गोयमे तहा सेसा । वण्ही पिया, धारिणी माता, समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले अक्खोभे पसेणति, विण्हुए, एए, एगगमा ।।

इस प्रकार "हे जम्बू ! यावत् मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अंतगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।"

जिस प्रकार गौतम का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार, शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कापिल्य अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु, इन नव अध्ययनो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए । सबके पिता अन्धकवृष्णि थे । माता धारिणी थी । सब का वर्णन एक जैसा है । इस प्रकार दस अध्ययनो के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है ।"

।। पढमो वग्गो दस अज्झयणा सम्मत्ता ।।

।। प्रथम वर्ग १० अध्ययन समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —"तेण कालेण तेण समएण","उस काल उस समय मे"—काल और समय एकार्थक होते हुए भी अलग-अलग क्यो कहे गये ?

समाधान —सामान्य रूप मे काल और समय एक ही अर्थ के बोधक लगते है, किन्तु इनमे अन्तर अवश्य है। काल से उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल लिया जाता है और समय शब्द से, उस काल के होने वाले व्यक्ति की ओर सकेत किया जाता है। उदाहरण के रूप मे वर्ग के प्रारभ मे आए 'तेण कालेण'–उस काल से तात्पर्य अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे से है। लेकिन वह आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है। तो इतने बडे काल मे यह कथन किस काल से सबन्धित है, इस बात का सकेत 'तेण समएण'–उस समय अर्थात् उस चतुर्थ आरे मे जिस समय भगवान महावीर स्वामी निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, सुधर्मा स्वामी पाट पर विराजमान थे, वे अपने शिष्य-परिवार सहित ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चपापुर नगर पधारे, उस समय से सबन्धित कथन है।

सभी स्थानो पर प्रसगानुसार इसी प्रकार अर्थ लेना चाहिये।

जिज्ञासा —मूल पाठ मे पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर का वर्णन आता है। तो क्या पूर्व मे प्रतिमा वन्दन किया जाता था ?

समाधान —'प्रतिमा' यह किसी की भी प्रतिकृति होती है। जब से मनुष्य ने सोचना प्रारभ किया, तब से वह अनुकरणशील रहा है। जैसी भी उसने आकृति देखी, वैसी प्रतिकृति बनाली

यह क्यो बनाई जा रही है ? किसलिये बनाई जा रही है ? यह वन्दनीय है या नही– इस विषयक कोई भी विशेष सम्यक् अवबोध नही रहता । कलाकृति की दृष्टि मे कभी मनुष्य की, तो कभी पशु की, या फिर अन्यान्य प्रतिकृतिया बनाली जाती है । शास्त्र मे जो वर्णन आया है, उस वर्णन मे मुख्य प्रतिपाद्य विषय–उन मोक्षगामी आत्माओ ने रत्नत्रय की आराधना की और कर्म विनष्ट कर मोक्ष पधारे, यह रहा है ।

इस विषय का प्रतिपादन करते हुए आनुषगिक विषय भी वर्णित किया गया है । आनुषगिक विषय प्रतिपाद्य या उपादेय के रूप मे नही है, वह सिर्फ मुख्य विषय का प्रासगिक वर्णन है । ऐसे वर्णनो मे अमुक-अमुक स्थान का क्या वातावरण था ? जनता की कितनी समझ थी ? जनता अज्ञानता वश क्या कर लेती थी ? यह विषय भी आ जाया करता है । तदनुसार शास्त्रो मे जहा भी बगीचे का वर्णन एव उसके अन्दर यक्षादि प्रतिमा का उल्लेख भी आया है । यह उल्लेख उस समय की जनता की रूढ परपरा का सूचक है । यह विषय ज्ञेय उपादेय और हेय का भी उल्लेख आता है ।

शास्त्र मे उल्लिखित है, इसलिये यह सभी आचरणीय है, ऐसा समझना भ्रातिमूलक होगा । शास्त्र मे सद्गुणो का भी वर्णन है तो दुर्गु णो का भी । पाप का भी वर्णन है तो पुण्य एव धर्म का भी उल्लेख है । एतावता दुर्गु णो एव पाप आचरणीय नही हो जाता ।

इस सन्दर्भ मे यक्ष की प्रतिमा का वर्णन भी समझना चाहिये । न कि वह प्रतिमा सम्यक् दृष्टि आत्मा के लिये आगम मे वर्णन होने मात्र से वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय बन गयी ।

उस आगम वर्णित प्रतिमा को लेकर सम्यक् दृष्टि-जीव मोक्ष प्राप्ति हेतु अन्य कृत्रिम प्रतिमा बनाकर वन्दनीय-पूजनीय भी नही मानता । सम्यक्दृष्टि पुरुष के लिये तो वीतराग देव ने जिन आराधनीय सूत्रो का विधेय रूप से प्रतिपादन किया है, वही मोक्ष प्राप्ति हेतु उपादेय-आराधनीय है । यथा—

'कई विहेणा भते आराहणा पण्णत्ता गोयमा । तीविहा आराहणा पण्णता णाण आराहणाए, दसण आराहणाए चरित्त आराहणाए" ।

भगवान् महावीर ने आराधना विषयक गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे फरमाया कि

आराधना तीन प्रकार की होती है—ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चरित्र आराधना। यह तीन ही आराधना प्रतिपादित की है। इन्ही आराधनाओ को सक्षिप्त रूप मे 'स्थानाङ्ग सूत्र' मे "दुविहे धम्मे पण्णत्ते-सुय धम्मे चेव, चरित्ते धम्मे चेव" मे भी वर्णित किया गया है। श्रुत मे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा चारित्र मे सम्यक् चरित्र एव सम्यक् तप का समावेश है। वाचक उमास्वाति ने तत्वार्थ सूत्र मे भी स्पष्ट कहा है– "सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्ग।" सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र से युक्त ही मोक्षमार्ग है, इससे भिन्न कोई मोक्ष का मार्ग नही है। इसी मोक्षमार्ग की आराधना भगवदाज्ञा आराधना है। यह जैन समाज का सर्वमान्य स्वरूप है।

जिज्ञासा —मूल-पाठ गत "जाव" एव "वण्णओ" शब्द से क्या तात्पर्य है ?

समाधान —'जाव' शब्द मूल पाठ के सकोच का परिचायक है। जिस विषय का वर्णन अन्य स्थानो पर आ चुका है, उसे सकुचित करने के लिये अन्य स्थल पर 'जाव' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे वर्ग के प्रारभ मे "परिसा निग्गया जाव पडिगया" मूल पाठ आया है। जाव शब्द से "धम्म सोच्चा, निसम्म जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस" इतने मूल पाठ का सकोच किया गया है। 'वण्णओ' शब्द से तत्सबन्धी अवशेष विषय यहा वर्णनीय है, इस बात का परिचायक है। वर्ग के प्रारभ मे आया हुआ "पूण्णभद्दे चेइए वण्णओ" से अवशेष पाठ निम्नाकित प्रकार से औपपातिक सूत्र से लिया जाता है—"पुण्ण भद्दे चेइए, चिराइए, पुव्व पुरिस पण्णत्त, पोराणे, सद्दिए, वित्तिए, कित्तए णाए.. . .. .. बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्ण भद्द चेइय" इसी प्रकार अन्य स्थलो पर भी जानना चाहिये।

जिज्ञासा —मूल अग 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' के अन्दर उपाग औपपातिक सूत्र के उद्धरण देने का क्या करण है, क्योकि अग पहले है, उपाग वाद मे है ?

समाधान — यह सत्य है कि अग सूत्रो का स्थान सर्व-प्रथम है। अग सूत्रो से ही उपाग सूत्र निकले है। लेकिन अग सूत्रो मे उपाग सूत्रो का निर्देश होने का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि आगमो को जव लिपिवद्ध किया गया था तव अग-उपागो मे सबसे पहले चार मूलसूत्र, चार छेद सूत्र, औपपातिक, प्रज्ञापना, आचाराङ्ग एव स्थानाङ्ग सूत्र को लिपिवद्ध किया गया क्योकि इनमे किसी अन्य सूत्र के उद्धरण का सकेत नही किया गया है। तदनन्तर लिपिवद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन पूर्व लिपिवद्ध सूत्रो मे आ चुका था, उन सूत्रो का पश्चाद्वर्ती लिपिवद्ध किये जाने वाले सूत्रो के मूल-पाठ को सक्षिप्त करने के लिये सकेत कर दिया गया।

जिज्ञासा—भगवान् महावीर के पट्टधर शिष्य प्रथम गणधर के रहते हुए पचम गणधर

सुधर्मा स्वामी पाट पर कैसे विराजे ?

समाधान—तीर्थकरो के पाट पर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नही आते। क्योकि तीर्थकरो के पाट पर विराजने वाले महासाधक को सघ की सभी व्यवस्थाएँ आगमानुसार करनी होती है। उन सारी व्यवस्थाओ को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नही सभालते। क्योकि वे वीतराग होते है। तीर्थकरो की अवस्था का प्रतिनिधित्व लेकर चलने वाले महापुरुष छद्मस्थ होते है, वे हो अन्य को वाचना देते हुए समझाते है कि जैसा मैने प्रभु महावीर से सुना है, वैसा बतला रहा हू अर्थात् तीर्थकरो की बात ही बतला रहा हूँ। ऐसे प्रतिपादन से तीर्थकर देवो के प्रति चतुर्विध सघ की एक निष्ठा बनती है, जब श्रोतागण एकनिष्ठ की स्थिति मे चलते है तो उनमे साधनामार्ग की दृष्टि से निश्शकता भी रहती है, किन्तु ऐसा केवल ज्ञानी नही फरमा सकते क्योकि वे तीर्थकर देवो की तरह ही स्वय भी साक्षात् ज्ञाता-दृष्टा होते है। अत वे यह नही फरमा सकते कि जैसा मैंने भगवान से सुना है वैसा कह रहा हूँ और ऐसा नही कहने पर तीर्थकर देव के प्रति सघ की अनन्य श्रद्धा एव एकत्व भावना नही बनती। तथा किसकी पाट परपरा चल रही है इसका निश्चय भी तीर्थकर देवो का नाम लेने पर ही होता है। तीर्थकर देव-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एव चार तीर्थ की स्थापना करने वाले है। वे ही मोक्ष मार्ग के प्रदाता है उन्ही के द्वारा उपदिष्ट मोक्ष-मार्ग ही हमारे लिये कल्याण प्रद है, यह श्रद्धा उनके नाम से फलित होती है तथा उन्ही का शासन चल रहा है, हम उनके शासन के अनुयायी है, इस भावना-मे दृढता आने से आत्म-कल्याण सुगमता पूर्वक हो सकता है। केवली इस प्रकार की प्ररूपणा नही कर सकते, वे अपने ज्ञान मे देखकर ही कुछ कहेगे तो ऐसा कहेगे कि ऐसा मै देख रहा हूँ। इसलिये केवली भगवत तीर्थकरो के उत्तरदायित्व को लेकर नही चलते। केवली अनेक होते है और अनेक केवली यदि प्रतिपादन करने लगे तो साधारण जनता मे उनके प्रतिपाद्य विषय को एव आशय को नही समझने के कारण मत भिन्नता आ सकती है। यद्यपि सभी केवलज्ञानी मौलिक वस्तु स्वरूप का विज्ञान एक सा रखते है परन्तु पात्र के अनुरूप प्रतिपादन करने से एकनिष्ठत्व नही बन पाता। केवलियो की पाट परपरा नही चलती क्योकि केवली पद अस्थायी है। अस्थायी पद की परपरा चलना शक्य नही है। जो स्थायी पद है—अर्थात् सदासर्वदा भूमण्डल मे विद्यमान रहता है, उसी पद की परपरा चलती है। वह पद भी तीर्थकर देव है और उनकी अनुपस्थिति मे चतुर्विध सघ के भीतर प्रतिभा सम्पन्न महान् साधक, छद्मस्थ मुनि, पुगव को ही तीर्थकर देव का उत्तराधिकार प्राप्त होता है, जोकि नमस्कार महामत्र के मध्य तृतीय पद पर सुशोभित होते है। उनके माध्यम से जो परपरा चलती है, वह तीर्थकरो की परपरा कहलाती है। और यह परपरा तीर्थकर की शासन समाप्ति तक अबाधगति से चलती है।

गौतम स्वामी यद्यपि प्रभु महावीर की उपस्थिति मे छद्मस्थ थे, प्रथम गणधर भी थे तथापि प्रभु महावीर अपने केवलालोक मे यह देख रहे थे कि मेरे मोक्ष गमन के अनतर उसी रात्रि मे गौतम अनगार को केवल ज्ञान हो जायगा। अतएव उनके प्रति उत्तराधिकार का सकेत नही करते हुए सुधर्मा स्वामी के लिये सकेत किया। जैसा कि भगवान महावीर ने निर्वाण के कुछ समय पश्चात् गणधर गौतम को केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट हो चुका था तब प्रभु के पाट पर विराजने का कोई प्रसग ही नहीं रहा। अत सुधर्मा स्वामी ही पाट पर विराजे। उनको केवल ज्ञान-केवल दर्शन प्राप्त होने पर उन्होने भी सघ की सारी व्यवस्था-अधिकार जम्बू अनगार को दे दिया। जम्बू स्वामी को केवल ज्ञान-केवल दर्शन हुआ तो उन्होने भी सारा अधिकार प्रभव अनगार को दे दिया।

जिज्ञासा —शास्त्रो मे द्वारिका नगरी, उसके सम्राट कृष्ण-वासुदेव, उनकी ऋद्धि-समृद्धि, नदनवन आदि का वर्णन देने से क्या तात्पर्य है? मूल-पाठ मे वही वर्णन होना चाहिये जो आत्मा-परमात्मा से सबन्धित हो।

समाधान —शास्त्रो मे मुख्य रूप से वर्णन आत्मा-परमात्मा का ही दिया जाता है। लेकिन उसी बात को स्पष्ट करने के लिये गौण रूप से तत्सबन्धित वर्णन भी दिया जाता है। जैसे—आपको किसी अमुक व्यक्ति को पत्र प्रेषित करना है तो आप उसके पते पर केवल उस व्यक्ति का नाम देकर ही नही रह जाते, अपितु उसके नगर का नाम, उसमे उसके मोहल्ले या गली का नाम और उसमे उसके घर के नम्बर भी देने होते है। इन सबको लिखने का तात्पर्य यही होता है कि पत्र सही स्थान पर पहुच जाय। उसी प्रकार जब बद्ध आत्मा मुक्त होने के लिये प्रयत्न-शील होती है, तब उससे सबन्धित कर्म, उसके परिणाम, उसका निवास, उसके आस-पास के परिकर आदि का वर्णन देना अप्रासगिक ही नही अपितु आवश्यक हो जाता है। जिनमे भव्य आत्मा उन सभी का विज्ञान कर, हेय-त्यागने योग्य को छोडकर, उपादेय-ग्रहण कर सके। अत मूल-पाठ मे द्वारिका आदि का वर्णन अनुपयुक्त नही है।

जिज्ञासा —जब तीर्थंकर कालीन युग मे दहेज लेने-देने की परपरा थी तो उसे आज अभिशाप क्यो बतलाया जाता है?

समाधानः—कुछ परपराएँ श्रेष्ठ उद्देश्य को लेकर प्रारभ की जाती है, किन्तु कभी-कभी भविष्य मे मानवो की विचित्र मनोदशाओ के कारण वे विकृत रूप ले लेती है। जिस प्रकार दीपावली-होली जैसे पर्वो की श्रेष्ठ परपराएँ भी विकृत रूप मे सामने आ रही है। उसी प्रकार तीर्थंकर कालीन युग मे लडकी के लिये विवाह के समय दिया जाने वाला प्रीतिदान भी आज दहेज के नाम से भयकर विकृति के रूप मे सामने आ रहा है।

परिवार मे पुत्रो के समान ही पुत्री भी एक महत्वपूर्ण अग होती है। माता-पिता पर पुत्रो का ही उत्तरदायित्व नही, अपितु पुत्री का भी उत्तरदायित्व होता है। बल्कि पुत्र से भी पुत्री का उत्तरदायित्व माता-पिता पर अधिक होता है। अत पिता की चल-अचल सपत्ति के अधिकारी केवल पुत्र ही नही होते अपितु पुत्री भी होती है। जब लडकी का विवाह होता है, लडकी पराये घर जाने लगती है, तब पिता का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह नैतिकता के साथ अपनी सपति का कुछ भाग अपनी पुत्री को भी दे। और इस कर्त्तव्य एव नैतिकता को पूरा किया जाता था तीर्थकर कालीन युग मे। शास्त्रो मे चर्चित अनेक विवाह-प्रसगो पर इस परम कर्त्तव्य को आज की आधुनिक परिभाषा मे दहेज की कोटि मे कदापि नही लिया जा सकता। आज तो लडके के विवाह के लिए, जैसे बाजारू बोलियाँ लगायी जाती है, वैसी बोलियाँ लगा-लगा कर विवाह किया जा रहा है। लडकी के पिता के पास सामर्थ्य नही होते हुए भी जबरन उससे दहेज लिया जाता है। आज गुणो का महत्व कम, रूपयो का महत्व अधिक बढ गया है। जिसके परिणाम आए दिन पढने एव सुनने को मिलते है। किन्तु उस समय दहेज की यह स्थिति नही थी, वहाँ सम्पत्ति का अकन नही अपितु गुणो का अकन किया जाता था। शरीर को महत्व नही अपितु चरित्र को महत्व दिया जाता था। वर-पक्ष की ओर मे दहेज माँगने का कोई प्रश्न ही नही है। वधु-पक्ष वाले भी अपना कर्त्तव्य समझ के देते थे। वह भी अपनी पुत्री को। ऐसी स्थिति मे वर-पक्ष वाले निषेध भी नही कर सकते क्योकि सम्पत्ति उन्हे नही, बल्कि लडकी को मिल रही है। वर-पक्ष की ओर से निषेध करना लडकी को अपने अधिकारो से वचित रखना है।

इन सारी स्थितियो पर विचार करने पर कोई भी सुज्ञ व्यक्ति शास्त्रो मे चर्चित लडकी के प्रीतिदान की तुलना आज के दहेज के साथ कभी नही कर सकता।

यह भी नही कह सकते कि बडे-बडे श्रेष्ठी वर्य अपनी लडकी का विवाह बडे-बडे श्रेष्ठी-वर्यो के यहाँ ही करते थे, गरीबो के यहा नही। क्योकि श्री कृष्ण के छोटे भाई गजसुकमाल कुमार का विवाह प्रसग एक सोमिल्य ब्राह्मण की लडकी सोमा से होना निश्चित हुआ था। शादी नही हुई यह और बात है। अत स्पष्ट है कि श्रीमतो का विवाह भी विपन्नो के यहाँ गुण-सम्पन्नता को देख कर किया जाता था।

जिज्ञासा—कृष्ण महाराज के वैभव के वर्णन मे कृष्ण महाराज के १६ हजार रानियाँ तथा ३ ५ करोड कुमार भी बतलाएँ है। एक व्यक्ति के १६ हजार रानियाँ और ३ ५ करोड कुमार की बात आज के युग मे बडी विचित्र सी लगती है, जिस पर जल्दी से विश्वास भी नही हो पाता। इस कथन मे वास्तविकता कितनी क्या है?

समाधान —पाठको को शास्त्र मे वर्णित ज्ञेय विषय को ज्ञेय रूप मे समझना चाहिये। एक व्यक्ति के बहुसख्यक स्त्रियो की उस समय एक प्रथा विशेष थी। युगो का समय-समय पर एक विशेष रूप उभरता है। प्राचीन काल मे कई ऐसी परिस्थितियाँ थी की जिन परिस्थितियो से वाध्य होकर अनेक स्त्रियो के साथ विवाह का प्रसग भी उपस्थित होता था। जिस वक्त शक्ति सम्पन्न सम्राट भूमण्डल पर अपना राज्य स्थापित करने की दृष्टि से चलते थे, उस वक्त वे जितने अन्य राजाओ के राज्य को अपनी अधीनता मे लेते वे अधीनस्थ राजा पुन प्रतिपक्षी नही बन जाय, इस दृष्टि से उनकी राजकन्याओ के साथ विवाह का प्रसग भी आता था।

अपनी कन्या विवाहित कर देने पर प्रतिपक्षी के रूप मे वह, उन शक्ति सम्पन्न सम्राट के साथ सघर्ष मे नही उत्तर सकते। कुछ व्यक्ति शक्ति से निर्बल होने के साथ ही साथ किन्ही अन्य सवलो से तथा स्वच्छदाचारियो से आतकित रहते थे। इसलिये वे निर्वल राजा भी अपनी कन्याओ का शक्ति सम्पन्न सम्राट के साथ अतीव अनुनय-विनय-पूर्वक विवाह कर देते थे। ऐसा करने से उनको निर्भयता का अनुभव होने लगता था जो आक्रान्ता एव स्वेच्छाचारी राजा होते, वे उन निर्वलो पर आक्रमण करना छोड देते थे। इसी प्रकार की अन्य भी कई परिस्थितियाँ होती थी कि जिससे विशिष्ट सम्राट अनेक कन्याओ के साथ विवाह करते थे।

इसी सन्दर्भ मे त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव के विवाहो को भी समझना चाहिये। श्री कृष्ण भी विराट त्रिखण्ड के स्वामी थे। उन तीनो खण्डो को अपने शासन के अन्तर्गत लेने के लिये तथा शासन को चलाने की दृष्टि से इतनी रानियो के साथ विवाहो का प्रसग असभव सा प्रतीत नही होता। किन्तु जिज्ञासुओ को सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट शास्त्रो मे जिस विषय का उपादेय रूप से प्रतिपादन हुआ है, वही मुख्य विषय है, उसी की पुष्टि जिस चरितानुवाद से होती है उस चरितानुवाद को प्रेरणा के रूप मे लेना चाहिये। इससे भिन्न जो विषय है, वह उस-उस समय को परिस्थितियो, रीतिरिवाजो एव लौकिक प्रथाओ का परिचायक है। इन सवका वर्णन भी प्रसगोपात दिया गया है। इतने मात्र मे वे सव वर्णन ग्राह्य नही हो जाते। आज की परिस्थिति से सर्वथा भिन्न जो सामाजिक वर्णन आगमो मे आता है, उस वर्णन की जानकारी प्राप्त कर वर्तमान जीवन को उस वर्णन के अनुरुप नही वनाते हुए जन-जीवन का सुगमता पूर्वक कल्याण कैसे हो सके, उस विषयक सामाजिक एव लौकिक व्यवस्थाओ का चिन्तन अपेक्षित है। वर्तमान जनता के लिये भारभूत, विकार वढाने वाले लौकिक एव सामाजिक कोई भी रीति-रिवाज प्रचलित नही करना चाहिये। इस प्रकार के रीति-रिवाज को पोषण भी नही देना चाहिये। जन-कल्याणकारी रीति-रिवाजो का ही विशेष ध्यान रखना अपेक्षित रहता है।

अब रहा प्रश्न यादवीय परिवार के ३ ५ करोड कुमारो का ? यह करोड शब्द आज की करोड की सख्या से ही सम्बन्धित है, ऐसा निश्चयात्मक नही कहा जा सकता । यह तो उस समय की गणित सम्बन्धी सख्याओ से ही जाना जा सकता है । तत्सम्बन्धी गणित उपलब्ध हो तभी स्पष्ट रूप से कोटि की सख्या निर्धारित की जा सकती है ।

कदाचित आज की गणित के अनुरूप कोटि सख्या को लिया जाय तो भी वे साढे तीन करोड कुमार द्वारिका मे ही थे ऐसा नही समझकर द्वारिका से सम्बन्धित अर्थात् यादवीय वश मे अनुप्राणित थे । उनका तीन खण्ड मे कही भी निवास हो सकता है, किन्तु उन सबका कथन श्रीकृष्ण वासुदेव से सम्बन्धित होता था । क्योकि श्रीकृष्ण तीन खण्ड के अधिपति थे, एक मात्र शासक थे । उनसे सम्बन्धित जितनी भी अवस्थाएँ थी वे उन्ही की कहलाती थी । किन्तु उसका तात्पर्य यह नही कि वे सब उनके पास ही रहते थे । जैसे वर्तमान मे प्रयोग किया जाता है कि प्रधान मन्त्री जी के पास कितनी फौज है ? तो भारत के सैनिको की सख्या तुरन्त बतला दी जाती है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि वे सभी सैनिक प्रधानमन्त्री जी के साथ देहली मे ही रहते है । वे सब भारत मे यथास्थान फैले हुए है । एक रूपक और भी लिया जा सकता है, जैसे कि किसी श्रेष्ठी के लिये यह कहा जाय कि यह अरबपति है अर्थात् इनके पास अरबो की सम्पति है । तो वे सभी पैसे अपने पास लेकर नही बैठा है । इसका तात्पर्य यह है कि इसके अधिकार मे इतनी सम्पति है । जो देश-विदेश के किसी भी स्थल पर हो सकती है । इसी प्रकार यादवीय वश के राजकुमारो का स्वामित्व भी श्रीकृष्ण मे था । अत श्रीकृष्ण के वर्णन के साथ कुमारो का वर्णन भी कर दिया गया ।

एक दृष्टि कोण यह भी हो सकता है । कई शब्दो का प्रयोग व्युत्पत्यर्थक भी होता है एव मूढ तथा सज्ञा की दृष्टि से भी होता है । यथा-वर्तमान मे बीस की सख्या को 'कोडी' शब्द से पुकारा जाता है । क्यो नही सोलह या पच्चीस को कोडी कहा जाता ? इसका उत्तर यही है कि ये शब्द बीस की सख्या मे रूढ है । दर्जन भी बारह की सख्या मे रूढ है । इसी प्रकार समय-समय पर सख्या वाचक शब्दो के अर्थ मे भी विभिन्नता आती रहती है । उस समय की सख्या के सूचक शब्द विभिन्न रूप मे प्रयुक्त होते हो एव इस प्रकार के कोडी शब्द किसी सख्या विशेष के सूचक हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नही है ।

इस विषय मे अधिक प्रतिभा का उपयोग करना, विशिष्ट लाभ प्रद नही रहता ।

जिज्ञासा — उपवास को शास्त्रो मे 'चउत्थ भत्त' क्यो कहा जाता है ?

समाधान — चतुर्थ भक्त की व्याख्या के विषय मे कुछ विचार धाराएँ विभिन्न रूप से प्रचलित है । उनमे से एक यह है कि उपवास करने वाला व्यक्ति उपवास के पहले दिन एक वक्त भोजन

करे और दूसरे दिन चौबीस घन्टो का उपवास रखे और पारणा के रोज एक वक्त भोजन करे।

यह व्याख्या सर्वमान्य स्थिति को प्राप्त नही होती है, क्योकि जिस युग मे मनुष्य को दो वक्त का भोजन करने का अभ्यास है, उस समय तो यह व्याख्या लागू हो सकती है। ऐसे व्यक्ति चार समय तक आहार को छोड सकते है, किन्तु जिस समय के मानव एक दिन मे एक ही वक्त भोजन करते थे, उस समय चार वक्त का त्याग कैसे सम्भावित था ? क्योकि मानव उस समय चौबीस घटो मे एक वार ही भोजन करता था। यदि वह चार वक्त के भोजन का त्याग करेगा तो उसके एक उपवास के स्थान पर चार उपवास हो जायेगे।

भगवान ऋषभदेव के समय से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक प्राय आम जनता मे चौबीस घटो मे एक वक्त ही भोजन करने का प्रचलन था तो उस समय भी उपवास के लिये "चउत्थ भक्त" सज्ञा उपर्युक्त दृष्टिकोण से घटायी जायगी। क्योकि "चउत्थ भक्त" की अलग से परिभाषा आगम मे कही पढने को नही मिलती है। इस परिभाषा को अर्थात् चार समय तक आहार छोडने की परिभाषा से "चउत्थ भक्त" का तात्पर्य लिया जायगा तो अव्याप्ति दोप आना सभावित है।

वीतराग देवो के द्वारा प्ररूपित परिभाषा, सिद्धान्त त्रिदोप— १. अव्याप्ति २ अतिव्याप्ति ३ असम्भव-विकल रहित होते है। त्रिदोष रहित व्याख्या करते समय आगमगत शब्दो का सभी दृष्टि से चिन्तन अपेक्षित है। आगमगत शब्दो की व्याख्या व्युत्पत्तिपरक भी होती है तथा लक्षणादि से भी व्याख्या की जाती है।

जहाँ व्युत्पत्तिपरक व्याख्या दोष युक्त ज्ञात हो, वहाँ लक्षणा व सज्ञा से व्याख्या की जाती है। यथा-'गगाया घोष' का अर्थ निकाला जाता है। तदनुसार 'चउत्थ भक्त' उपवास का अर्थ चार वक्त के भोजन त्याग का न लेकर 'चउत्थ भक्त' यह उपवास की सज्ञा का सूचक है। सज्ञा स्थिति से ही इसकी विवेचना करने पर ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक इस परिभाषा मे कोई दोष आने की सभावना नही रहती।

'चार भक्त' यह उपवास की सज्ञा है। 'पष्ठ भक्त' वेले का सज्ञा वाचक है। इसी प्रकार अष्टमादिक भक्त प्रत्याख्यान के विषय मे भी समझना चाहिये।

जिज्ञासा —'अन्तगड सूत्र' मे वर्णित भगवान अरिष्टनेमि एव भगवान महावीर, ऋषभदेव के समय मे नही थे। तव भगवान ऋषभदेव के समय अन्तगड सूत्र मे क्या वर्णन होगा ?

समाधान —अनादि अनन्तकाल से द्वादशाङ्गी चली आ रही है। इसकी सत्ता कभी भी नष्ट नही होने वाली है। यह ध्रुव, नियत्, शाश्वत, अक्षय, अव्यावाध, अवस्थित और नित्य है। पचास्तिकाय का अस्तित्व जिस प्रकार शाश्वत है उसी प्रकार द्वादशाङ्गी भी शाश्वत

ग्रनादिकालीन है ।[1] किन्तु उसमे ग्राए सिद्धान्तो का जिज्ञासुग्रो को सरलता से बोध कराने के लिये समय-समय पर तीर्थकरो ने उस समय मे घटित घटनाग्रो का वर्णन किया है । ग्रर्थात् चरितानुवाद का सहारा लिया है । इसका तात्पर्य यह नही होता कि, जो घटनाएं शास्त्रो मे विवेचित है, वे नामान्तर से उसी रूप मे घटित हुई हो । हाँ ! यह हो सकता है कि चरित्तानुवाद मे जिस शाश्वत सत्य को समझाने के लिये तीर्थकर-भगवत उस समय की घटित घटनाग्रो ग्रौर चरित्रो के द्वारा श्रोताग्रो को उद्बोधित करते है, वे व्यक्तिगत-चरित्र परिवर्तित हो सकते है, किन्तु शाश्वत सत्य परिवर्तित नही होते ।

जिस प्रकार स्कदक परिव्राजक की घटना भगवान महावीर के सान्निध्य मे घटी, उसी प्रकार नामान्तर से पूर्व मे भी घटित हुई हो, यह ग्रावश्यक नही है । यह तो स्पष्ट है कि स्कदक परिव्राजक ने जिन प्रश्नो को भगवान से पूछा, उनका जो भगवान ने समाधान दिया, वह ग्रनादिकालीन ग्रौर शाश्वत है ।

जिस प्रकार कर्मबद्ध ग्रात्माग्रो का भव-भवान्तरो मे भी मौलिक चैतन्यत्व शाश्वत रहता है, उसी प्रकार चरित्र तो परिवर्तित होते रहते है किन्तु उसमे रहने वाला उपदेश शाश्वत होता है । ग्रत स्कदक परिव्राजक के चरित्र मे रहने वाला उपदेश, शाश्वत सत्य, ग्रनादि-कालीन है ।

इसी परिप्रेक्ष्य मे ग्रन्तगड सूत्र मे वर्णित प्रभु ग्ररिष्टनेमि एव प्रभु महावीर ग्रादि के वर्णन को भी जानना चाहिये । घटनाक्रम, देश, काल एव ग्रनेक तीर्थकरो के समयानुसार परिवर्तित होते रहते है ।

जिज्ञासा — बहत्तर कलाएँ क्या है ?

समाधान — कलाग्रो के नाम इस प्रकार है—[१] लेखन [२] गणित [३] रूप बदलना [४] नाटक [५] गायन [६] वाद्य बजाना [७] स्वर जानना [८] वाद्य सुधारना [९] समान ताल जानना [१०] जुग्रा खेलना [११] लोगो के साथ वाद-विवाद करना [१२] पासो से खेलना [१३] चोपड खेलना [१४] नगर की रक्षा करना [१५] जल ग्रौर मिट्टी के सयोग से वस्तु का निर्माण करना [१६] धान्य निपजाना [१७] नया पानी उत्पन्न

[1] इच्चेइय दुवालसग गणिपिडग न कयाइ नासी, न कयाइ, न भवइ न कयाइ न भविस्सइ, भूविं च, भवई च, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, ग्रक्खए ग्रवट्ठिए, निच्चे । से जहानामए पच ग्रत्थिकाए न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ, न भविस्सइ, भुविं च भवइय, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, ग्रक्खए, ग्रव्वए, ग्रवट्ठिए, निच्चे, एवामेव दुवालसग गणिपिडग न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ भूविं च भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, ग्रक्खए, ग्रव्वए, ग्रवट्ठिए निच्चे ।

—नन्दी सूत्रम्

करना, पानी को सस्कार करके शुद्ध करना एव उष्ण करना [१८] नवीन वस्त्र बनाना, रगना, सीना और पहनना [१९] विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि [२०] शय्या बनाना, शयन करने की विधि जानना आदि [२१] आर्याछन्द को पहचानना और बनाना [२२] पहेलियाँ बनाना और बूझाना [२३] मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा मे गाथा आदि बनाना [२४] प्राकृत भाषा मे गाथा आदि बनाना [२५] गीति छद बनाना [२६] श्लोक (अनुष्टुप छद) बनाना [२७] नई चाँदी बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि [२८]सुवर्ण बनाना, उसके आभूषण बनाना, पहनना आदि [२९]चूर्ण—गुलाब, अबीर आदि बनाना और उसका उपयोग करना [३०] गहने घडना, पहनना आदि [३१] तरूणी की सेवा करना, प्रसाधन करना [३२] स्त्री के लक्षण जानना [३३] पुरुष के लक्षण जानना [३४] अश्व के लक्षण जानना [३५] हाथी के लक्षण जानना [३६] गाय-बैल के लक्षण जानना [३७] मुर्ग के लक्षण जानना [३८] छत्र लक्षण जानना [३९] दण्ड लक्षण जानना [४०] खड्ग लक्षण जानना [४१] मणि के लक्षण जानना [४२] काकणी रत्न के लक्षण जानना [४३] वास्तु विद्या—मकान, दूकान आदि इमारतो की विद्या जानना [४४] सेना के पडाव का प्रमाण आदि जानना [४५] नया नगर बसाने आदि की कला जानना [४६] व्यूह—मोर्चा बनाना [४७] विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रखना [४८] सेना सचालन करना [४९] प्रतिचार—शत्रु की सेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना [५०] चक्र व्यूह—चाक के आकार मे मोर्चा बनाना [५१] गरूड के आकार का व्यूह बनाना [५२] शकट व्यूह रचना [५३] सामान्य युद्ध करना [५४] विशेष युद्ध करना [५५] अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टि युद्ध करना (५८) बाहु युद्ध करना (५९) लता युद्ध करना (६०) बहुत को थोडा और थोडे को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-बाण चलाने मे कुशल होना (६३) चाँदी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कडा—कु डल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्च्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृत तुल्य) करना और (७२) काक, घूक आदि पक्षियो की बोली पहचानना।

यह प्राचीन काल की कलाओ का वर्णन है। जिज्ञासुओ को हँस-चोच की बुद्धि बनाकर जीवनोत्थान एव जन—कल्याण सवन्धी कलाओ पर ध्यान देना उपयुक्त रहता है न कि सभी कलाओ पर।

—प्रथम वर्ग समाप्त—

बीओ वग्गो : द्वितीय-वर्ग

उत्थानिका

प्रथम वर्ग के दस अध्ययन, दस कुमारो के नाम से बतलाए गये थे। उन दस कुमारो के पिता का नाम वृष्णि एव माता का नाम धारिणी था। प्रस्तुत द्वितीय वर्ग मे भी आठ अध्ययन प्रतिपादित किये गये है। ये आठ अध्ययन भी आठ राजकुमारो के नाम से ही कहे गये है। इनके माता-पिता का नाम भी महाराज वृष्णि एव धारिणी ही था। एक ही माता-पिता के इन आठ राजकुमारो ने भी सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे प्रवज्या अगीकार की थी।

आठो ही राजकुमार प्रथम-वर्ग मे वर्णित राजकुमारो की तरह ससार से विरक्त हो, दीक्षित होते है। १६ वर्ष पर्यन्त सयम पर्याय का पालन करते है, अन्त मे एक मास के सलेखना-सथारा के साथ सभी कर्मो का अन्त करके, सिद्धत्व को प्राप्त करते है।

आज के युग मे एक पुत्र या पुत्री को दीक्षा देने मे भी उनके माता-पिता, सगे-सम्बन्धी कितनी बाधाएँ उपस्थित करते है? जबकि एक ही माता-पिता के आठ-आठ, दस-दस राजकुमार जवानी की देहली पर आते-आते दीक्षा ग्रहण कर लेते थे, और माता-पिता भी उनकी योग्यता को देख कर सहर्ष अनुमति दे देते।

आज के लोगो को ऐसे नर-श्रेष्ठ माता-पिताओ से शिक्षा लेनी चाहिये।

बीओ वग्गो : द्वितीय-वर्ग

1-8 अध्ययन

उत्थानिका

12–"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाण समणेणं भगवया महावीरेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता ।"

गाहा :–

1. अक्खोभ 2. सागर खलु 3. समुद्द 4. हिमवंत 5. अचल नामे य 6. धरणे य 7. पूरणे वि य 8. अभिचंदे चेव अट्ठमए ।।

"जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं । सोलसवासाइं परिआओ सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए सिद्धी ।"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

।। बीओ वग्गो सम्मत्तो ।।

"भगवन् ! यदि प्रथम वर्ग मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के दस अध्ययन फरमाये, जिन्हे मैने श्रीमुख से सुना तो भगवन् ! द्वितीय वर्ग मे भगवान ने कितने अध्ययन फरमाये है ?"

"जम्बू ! मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये है । यथा—

(१) अक्षोभकुमार (२) सागरकुमार
(३) समुद्रकुमार (४) हैमवन्तकुमार
(५) अचलकुमार (६) धरणकुमार
(७) पूर्णकुमार (८) अभिचन्द्रकुमार ।

(उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी । जहाँ महाराज वृष्णि एव धारिणी नामकी रानी भी निवास करते थे)

जैसा कि प्रथम वर्ग मे वर्णन किया गया, उसी प्रकार यहाँ भी आठ अध्ययनो का सार जानना चाहिये । ये आठो राजकुमार भी गुणरत्न सवत्सर नामक तप कर्म आदि करते हुए सोलह वर्ष सयम पर्याय का पालन कर शत्रुजय पर्वत पर मासिकी सलेखना सथारा पूर्वक सिद्धो को प्राप्त करते है ।

इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी जो मोक्ष को प्राप्त हो चुके है, उन्होने आठवे अग अतकृद्दशागसूत्र के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ फरमाया है ।

।। द्वितीय वर्ग समाप्त ।।

द्वितीय वर्ग—जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — क्या प्रथम वर्गगत राजकुमारो के माता–पिता तथा द्वितीय वर्गगत वर्णित राजकुमारो के माता–पिता एक ही थे ?

समाधान .— इस विषय मे निश्चित पूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता । तथापि यह बात तो स्पष्ट है कि प्रथम वर्गगत एव द्वितीय वर्गगत राजकुमारो के माता–पिता के नामो की ही समानता को देखते हुए उन्हे एक ही माता–पिता का नही कहा जा सकता । माता–पिता के नामो की समानता तो बहुत से स्थलो पर मिल जाती है, किन्तु इस समानता मे एक ही माता–पिता के पुत्र है, यह प्ररूपण नही किया जा सकता ।

दूसरी बात यह है कि यदि प्रथम वर्ग एव द्वितीय वर्गगत राजकुमारो के माता–पिता एक ही होते तो प्रथम वर्गगत दस राजकुमारो मे से कुछेक के नामो की तुल्यता द्वितीय वर्गगत आठ राजकुमारो से नही होती । जबकि अक्षोभ, सागर, समुद्र, अचल आदि नाम प्रथम–द्वितीय वर्ग मे एक ही समान है ।

यह सहज बात है कि एक ही माता–पिता अपने पुत्रो के एक समान नाम नही रखते, अर्थात् एक नाम वाले दो पुत्र नही होते । एक बात और यह है कि अगर इनके माता–पिता एक ही होते तो फिर शास्त्रकार इन सबका वर्णन प्रथम वर्ग मे ही कर देते । अवशेष राजकुमारो की भूलावण की तरह इनकी भूलावण भी दे देते । लेकिन ऐसा न कर अलग से पूरा वर्ग दिया है । इन सभी तथ्यो से यह बात सत्यता के अधिक सन्निकट है कि प्रथम–वर्गगत राजकुमारो के माता–पिता दूसरे थे । द्वितीय वर्गगत वर्णित राजकुमारो के माता–पिता दूसरे थे । माता–पिता के नामो की समानता हो सकती है ।

जिज्ञासा .— शास्त्र मे 'सिद्धे' शब्द आया है । इस सिद्ध, मुक्त अवस्था से क्या तात्पर्य है ? क्या वहाँ आत्मा को सुख मिलता है ?

समाधान :— अनादि अनन्त काल मे यह आत्मा चतुर्गति चौरासी लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण करती हुई आ रही है । इसका मूल कारण आत्मा के साथ कर्मो का अनुबध है । लेकिन जब आत्मा अपने सत्पुरुषार्थ के बल से आत्मा से सबद्ध सभी कर्मो का अपुनर्भाव से क्षय कर डालती है, तब आत्मा का मौलिक स्वरूप उजागर होता है, जिसे परमात्म रूप, सिद्धत्व रूप, ईश्वरीय रूप कुछ भी कहा जा सकता है । उस अवस्था मे आत्मा, उर्ध्वलोक के अन्त मे, जिसके बाद अलोक प्रारभ हो जाता है, कभी भी वह असिद्ध, अबुद्ध, अमुक्त नही हो सकती ।

मुक्तावस्था का सुख अपरिमेय होता है, जिसकी अनुभूति की जा सकती है, अभिव्यक्ति नही। जैसे किसी व्यक्ति को पूछा जाय, तुमने असली घी खाया है ? बताओ उसका स्वाद कैसा है ? क्या वह बता सकता है ? नही। वह यही कहेगा कि तुम्हे भी स्वाद मालूम करना हो तो तुम भी खाकर देख लो। जब बाह्य वस्तुओ की अनुभूति से भी अभिव्यक्ति नही हो पाती तो मुक्त अवस्था के अनन्त सुखो की अनुभूति की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है ? कभी नही हो सकती।

शास्त्रकार ने इस बात को समझाने के लिये एक रूपक दिया है। जिसका सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

एक जगली भील था। किसी बडे देश का राजा उस पर महरबान हो गया। उस भील ने अपनी जिन्दगी मे जगली झोपडियो के अलावा कभी शहर नही देखे थे। वह एक बार राजा से मिलने शहर मे जा पहुँचा। उसने वहाँ के बडे-बडे महलो को देखा। जब वह राजा के पास पहुँचा तो राजा ने उसका बहुत स्वागत किया। अच्छी से अच्छी मिठाइयाँ एव सुस्वादु भोजन खाने को मिला। रहने के लिये आलीशान महल और सोने के मखमली कालीन। आदेश को पालन करने वाले नौकरो की भरमार। इस माहौल मे दो-चार दिन रह कर जब वह भील पुन अपने स्थान पर लौटा तो उसके अन्य भाइयो ने उसे पूछा कि तुम कहाँ गये थे ? जिन्होने कभी महल को नही देखा एव उन मिष्ठानो का स्वाद भी नही चखा, ऐसे लोगो को वह भील कभी नही समझा सकता कि मै कहाँ गया था और वहाँ क्या अनुभव किया ?

कूप मडूक को समुद्र मडूक कभी समझा नही सकता कि समुद्र कितना बडा है। इसी प्रकार ससारी व्यक्ति को मोक्ष सुख समझाया नही जा सकता, वह तो अनुभूति का विषय है।

मोक्ष का सुख इन्द्रियातीत है। ससार का सुख इन्द्रियो से सम्बन्धित है। अत ऐन्द्रिक सुख की उपमा मोक्ष सुख के लिये नही दी जा सकती। फिर भी इस तथ्य को समझने के लिए एक रूपक और दिया जा सकता है—

दस कोस तक चलकर अत्यन्त थक जाने वाला व्यक्ति घर पर आकर स्नान आदि से निवृत हो भोजन करके जब सो जाता है, तब उसे गहरी नीद आने लगती है। पर्याप्त नीद लेकर जब उठता है तो वह यह कहते पाया जाता है कि मुझे आज नीद मे बहुत आनन्द आया। उसे पूछा जाय-भाई ! क्या नीद मे कोई स्वप्न देखा ? गीत-गाने सुने? मिठाइयाँ खायी ? तो वह कहेगा कि नही मैंने नीद मे न तो स्वप्न देखा, न मिठाइयाँ खायी और न ही गीत-गाने सुने, फिर भी जिस आनन्द की अनुभूति उसने की वह बता नही सकता। जब नीद मे भी इन्द्रियातीत जिन सुख की अनुभूति होती है उसकी अभिव्यक्ति भी मानव नही कर सकता तो उससे

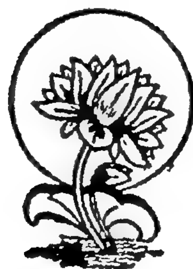
अनन्त-अनन्त गुणा अधिक सुख की अभिव्यक्ति जो मुक्तावस्था मे होती है उसकी अभिव्यक्ति तो की ही नही जा सकती। और न ही उसे एन्द्रिक सुखो की उपमाओ से उपमित ही किया जा सकता है।

शास्त्रकारो ने स्पष्ट कहा है—

तक्का तत्थ न विज्जइ,
मइ तत्थ न गाहिया।

तर्क द्वारा जिसे जाना नही जा सकता, मति उसे ग्रहण नही कर सकती।

ऐसी सिद्धावस्था ही आत्मा का चरम एव परम लक्ष्य है। प्रत्येक भव्य आत्मा इसके लिये प्रयत्नशील रहती है। इस सुख को पा लेने के बाद किसी सुख की कामना ही अवशेष नही रह जाती। इच्छाओ के स्रोत को ही सशोधित कर दिया जाता है। आत्मा अजर, अमर, अविकार, अशरीरी, अविनाशी परम स्वरूप को उजागर कर लेती है। ससार की कोई भी भयानक से भयानक आँधी या तूफान आत्मा के उस स्वरूप मे तनिक भी प्रकपन नही ला सकता।



तइओ वग्गो: तृतीय-वर्ग

उत्थानिका

तृतीय-वर्ग की चर्चा, तेरह अध्ययनो मे विभक्त करके की गयी है। उन तेरह अध्ययनो के नाम इस प्रकार है —

(१) अनीयस कुमार (२) अनन्तसेन कुमार (३) अनहित कुमार (४) विद्वत् कुमार (५) देवयश कुमार (६) शत्रुसेन कुमार (७) सारण कुमार (८) गजसुकुमाल कुमार (९) सुमुख कुमार (१०) दुर्मुख कुमार (११) कूपक कुमार (१२) दारुक कुमार (१३) अनादृष्टि कुमार।

प्रथम के छ कुमारो के पिता का नाम महाराज वसुदेव एव माता का नाम देवकी महारानी था। और उनके पालक पिता का नाम नाग गाथापति एव सुलसा नामक गाथा-पत्नी था।

इन छ कुमारो की कथावस्तु के साथ ही कृष्ण-वासुदेव के जीवन की झलक दर्शाना भी अप्रासगिक नही होगा —

कस[1] का एक छोटा भाई था अतिमुक्तक। उसे एवता कुमार भी कहते है। पिता को वदी के रूप मे देखकर उसे बडा आघात लगा। उसने कस को ऐसा न करने के लिये बहुत समझाया, पर जब कस ने कान न दिया तो वह गृह त्याग कर साधु हो गया। उसने तपस्या करके अतिशय ज्ञान प्राप्त कर लिया।

कस ने एक वार विचार किया-वसुदेव जी मेरे परमोपकारी है। उन्होने मेरा पालन-पोषण किया है, शस्त्र विद्या मे पारगत किया है, राजा बनाया है। यह सारा वैभव उनकी ही कृपा का फल है। मुझे उनका प्रत्युपकार करना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उसने अपने काका देवक की कन्या देवकी का वसुदेवजी के साथ विवाह कर देने का निश्चय किया। वसुदेवजी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विवाह का मुहूर्त निश्चित किया गया। नियत समय पर वसुदेवजी वर बनकर उपस्थित हुए। मगल वाद्य वजने लगे। नगर सुन्दर ढग से सजाया गया। जीवयशा मस्त और उन्मत्त हो रही थी।

सयोगवशात् अतिमुक्त मुनि घूमते-घूमते वही आ पहुँचे। देवरजी को आते देख जीवयशा प्रसन्न हुई। उसने मुनि से कहा-देवरजी! देवकी का विवाह हो रहा है। आपके ज्येष्ठ भ्राता वडे शूरवीर, बुद्धिमान और कुशल है। विशाल राज्य के स्वामी और प्रतापशाली है। इधर

---

[1] आत्मदर्शन—पृष्ठ–146

आप भीख माँग-माँग कर जिन्दगी बिता रहे है। देवरजी ! आपको यह शोभा नही देता। यह भिक्षुक वृत्ति त्याग कर महल मे पधार जाओ।"

मद मे चूर जीवयशा कहती है—"एक बाप के दो बेटे हो, एक राज्य करे और दूसरा भीख माँगता फिरे ? लालाजी ! आप कुल को कलक लगा रहे हो। कमाने की शक्ति नही तो क्या चिन्ता है। आपके भाई समर्थ है और वे आपका पेट भर देगे। अतएव छोडो इस वेप को। महल मे रहो। देखो, आपकी बहिन देवकी का विवाह हो रहा है।"

ससार मे बहुत से अज्ञानी है, जिनकी धारणा है कि अकर्मण्य लोग ही साधु बनते है। जो कमा खा नही सकते, वे भीख माँगकर पेट पालने के उद्देश्य से साधु बन जाते है। ऐसे लोग साधुओ की अवहेलना करते है, हँसी करते है। उन्हे जीवन के उच्च कर्त्तव्य का भान नही है। वे पशुओ की तरह खाने-पीने और विषयभोग मे ही व्यस्त रहते है। जीवयशा भी इसी श्रेणी मे थी।

अतिमुक्त मुनि तपस्वी थे, ज्ञानी थे, लब्धिधारी थे। किन्तु जीवयशा की अहकार पूर्ण बाते सुनकर छद्मस्थ होने के कारण क्षुब्ध हो उठे। बोले—"रानी ! आज तू अपने भाग्य पर इतरा रही है, मदोन्मत्त हो रही है, अपने पति को बडा शक्तिशाली समझकर सराह रही है, पर यह क्यो भूलती है कि तेरे श्वसुर कारागार मे बन्दी है। वे भयानक यातनाएँ भोग रहे है और तुम दोनो गुल्छर्रे उडा रहे हो ! तू अपने पिता के साथ निर्दय व्यवहार करने वाले पति से कुछ भी नही कहती। उसके अन्याय अत्याचार का प्रतिकार नही करती और महात्मा की अवहेलना करती है ! मै यही देखने को आया था कि तुम लोगो के हृदय का जहर निकला है या नही ? पर मालूम होता है, वह अन्त तक निकलने वाला नही। लेकिन रानी, याद रखना, तुम्हारे यह राग-रग थोडे समय के ही है। तू आज जिस देवकी के विवाह का उत्सव मना रही है, उसी का साँतवा पुत्र तेरे पति और पिता को परलोक का पाहुना बनाएगा।"

मुनि के अन्तिम शब्द सुनकर जीवयशा का कलेजा काँप उठा। उसके हृदय को गहरा आघात पहुँचा। उसने सोचा-मुनि ने शाप दे दिया है। प्रभो ! अब क्या होगा ?

सयोग की बात समझिये कि उसी दिन एक अद्भुत घटना और घट गई। कस दरबार मे बैठे थे। सभासद उपस्थित थे, उसी समय एक विद्वान् नैमित्तिक सभा मे आया। कस ने उससे प्रश्न किया—बतलाइये, मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ?

आगत ज्योतिषी चापलूस नही था। वह नि स्वार्थ, सत्यप्रिय और सरल हृदय विद्वान था। उसे अपने ज्ञान मे जैसा प्रतीत हुआ, बिना लाग-लपेट के उसने साफ-साफ कह दिया।

उसने कहा—महाराज, क्षमा करे। आपके पूछने से कहता हूँ, महाराज वसुदेव की रानी देवकी के पुत्र के हाथ से आपकी मृत्यु होगी।

कस भीतर ही भीतर भयभीत हो गया। उसका मुँह उतर गया। फिर भी ऊपर से अकड दिखलाता हुआ बोला—पण्डित! तुम भी खूब ज्योतिष सीख कर आये हो! मुझे मारने वाला इस ससार मे जन्म नही ले सकता।

आवेश मे आकर कस ने अपने अमात्य से कहा—मन्त्रीजी, इन महापण्डित को कारागार मे बन्द कर दो और इनके पोथी-पत्रा छीन लो। जो मुझे मारने वाला आयेगा वही इन्हे मुक्त करेगा।

इसके बाद कस ने ज्योतिषी से कहा—मैने तो यो ही प्रश्न कर दिया था, बाकी तो तुम्हारा ज्योतिष शास्त्र मेरी तलवार के सामने पानी भरता है। हम ग्रहो और नक्षत्रो से नही डरते। मेरी तलवार की चमक के सामने ग्रह-नक्षत्र उसी प्रकार मन्द पड जाते है, जैसे सूर्य के सामने ....।

थोडी देर के बाद कस दरबार से उठ कर महल मे आया। वह मन ही मन चिन्तित और व्याकुल हो रहा था। इधर महारानी भी महात्मा की भविष्यवाणी सुनकर चिन्ताकुल हो रही थी। वह आज कोप-भवन मे जाकर बैठी थी।

कस महारानी के पास वही जा पहुँचा। उसने रानी की उदासी का कारण पूछा तो उसने कहा—प्रियत्तम! बडे दुःख की बात है। कहने का साहस नही होता। फिर भी बिना कहे रह नही सकती। बात यो हुई—आज आपके भाई आये थे। मैने सहज भाव से कहा—महल मे ही आनन्दपूर्वक रहो। भीख माँगकर क्यो अपने भाई की प्रतिष्ठा को कलकित करते हो? यह सुनकर वे नाराज हो गये और शाप देकर चले गये कि देवकी की सातवी सन्तान तेरे पिता और पति का घात करेगी।

तब कस ने भी सभा मे घटित घटना कह सुनाई। इसके पश्चात् दोनो थोडी देर के लिये मौन हो गये। दोनो का चित्त व्याकुल और क्षुब्ध हो रहा था।

कस ने सोचा—देवकी स्त्री है और फिर मेरी बहिन है। उसके प्राण ले लूगा तो लोग क्या कहेगे? इसके अतिरिक्त वसुदेवजी का प्रभाव बहुत है। उनका मेरे ऊपर उपकार भी है। मै उन्हे नाराज नही करना चाहता। फिर भी कुछ तो करना ही चाहिये। जीवन-मरण का प्रश्न है। इसे किसी प्रकार हल तो करना ही होगा।

आखिर कपटी कस ने एक उपाय खोज निकाला। वह वसुदेवजी के पास पहुँचा और उनके

चरणो मे गिर पडा । बोला—महाराज ! आपकी मुझ पर असीम कृपा रही है । आपका ऋण मैं जीवनपर्यन्त नही चुका सकता । मेरे पास जो कुछ भी है, आपकी ही कृपा का फल है ।

वसुदेव ने सोचा—आज कस इतनी नम्रता प्रदर्शित कर रहा है तो इसमे कोई रहस्य अवश्य होना चाहिये । यह सोचकर उन्होने कहा—कहो, क्या बात है ? क्या काम है ?

कस—"देवकी के उदर से जो सन्तान हो, मेरे घर पर ही हो, उसका पालन-पोषण करने का अधिकार मेरा ही रहे ।"

वसुदेव ने सोचा, इसमे क्या धरा है ? मामा के घर पर सन्तान का प्रसव और पालन-पोषण हो तो क्या हानि है ?

यह सोचकर वसुदेव ने कस की माँग स्वीकार कर ली । कस चला गया । बाद मे जब वसुदेव और देवकी को मुनि और ज्योतिषी की भविष्यवाणी का पता चला तो उनके दु ख का पार न रहा । उन्होने सोचा-कस के पल्ले पडी सन्तान की खैर नही है । वह दुष्ट, अवश्य ही सन्तान की घात किये बिना नही रहेगा । मगर वसुदेवजी वचन-बद्ध हो चुके थे । उनका वचन वज्र की लकीर था । किसी भी अवस्था मे वे वचन भग नही कर सकते थे ।

उस समय सुलसा नामक एक सेठानी थी । उसकी कू ख से मरी हुई सन्तान ही उत्पन्न होती थी । सुलसा ने देवताओ से प्रार्थना की तो उन्होने कहा-मृतक को जीवित करने की शक्ति हम मे नही है, एक काम कर सकते है और वह यह कि दूसरे के पुत्र तुम्हारे पास लाकर रखदे और तुम्हारे मृतक पुत्र दूसरे के घर पहुँचादे । यह परिवर्तन इस प्रकार गूढ रूप से होगा कि किसी को कानो-कान भी पता नही चलेगा ।

सुलसा ने यह स्वीकर कर लिया । इस व्यवस्था के अनुसार देवकी के उदर से उत्पन्न होने वाले पुत्र सुलसा के पास पहुँच जाते और सुलसा के मृत पुत्र देवकी के पास पहुँच जाते थे । देवताओ के प्रभाव मे सुलसा की भी इच्छा पूरी होती और देवकी के बालको की भी रक्षा हो जाती थी । प्रसव के समय कस देवकी को अपने यहा ले आता था और जब देखता कि मृत पुत्र उत्पन्न हुआ है तो फूला न समाता । वह सोचता—मेरा तेज इतना उग्र है कि देवकी के लडके जन्मते ही मर जाते हैं । फिर भी कस बडा भयभीत था । सोचता—कही यह फिर जिन्दा होकर मुझे खा न जाए । यह सोचकर वह तत्कालोत्पन्न मृत बालक को भी पत्थर पर पछाड देता और अपने मन की तसल्ली कर लेता था ।

अज्ञानी कस ने यह नही सोचा कि जिसका उदय होता है, वह अस्त भी होता है । जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है । इस भूतल पर जन्म लेने वाला कोई प्रतापी पुरुष अमर नही हो सका तो मै ही अमर कैसे रह सकूँगा ? वह अपने पाप का घडा भरने लगा ।

एक-एक करके देवकी ने छ बालको को जन्म दिया और वह सब सुलसा के समीप पहुँच कर आनन्द से बडे होने लगे। सातवी बार हरि की आत्मा स्वर्ग से च्यव कर देवकी की कुँख मे आई। उस समय देवकी ने सात प्रशस्त स्वप्न देखे।

देवकी ने अपने स्वप्नो का वृतान्त महाराज वसुदेव से कहा। वसुदेवजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा-देवी! "इस बार तुम अत्यन्त पराक्रमी पुत्र को जन्म दोगी। वह पुत्र अर्द्ध चक्रवर्ती होगा, भाग्यशाली होगा, तेजस्वी और यशस्वी होगा।"

धीरे-धीरे गर्भ बढने लगा। देवकी ने वसुदेव से कहा—"दुष्ट कस ने छ पुत्रो को मार डाला है, मगर इस बार किसी भी उपाय से इसकी रक्षा करनी चाहिये।"

कस को सातवी सन्तान से ही भय था। अतएव इस बार वह बहुत चौकन्ना हो गया। उसने वसुदेव और देवकी को नजरबन्द कर लिया। देवकी अत्यन्त चिन्तित थी। वह कहने लगी—महाराज! "बडे दु ख की बात है कि हम लोग एक भी पुत्र की रक्षा न कर सके। पशु-पक्षी अपनी सन्तान की रक्षा करते है। मगर जो हुआ सो हुआ। इस बार प्रतीत होता है कि पराक्रमी, तेजस्वी और भाग्यवान पुत्र का जन्म होगा। अतएव उसकी रक्षा के लिये कोई उपाय पहले से ही सोच लेना चाहिये।"

वसुदेव ने गम्भीर भाव से कहा—"मैने अभो तक सत्य का परित्याग नही किया है। क्या तुम मुझे सत्य छोड देने को कहती हो? मेरा विश्वास है कि अगर बालक प्रचुर-पुण्य लेकर आया है और उसके द्वारा जगत का कल्याण होना है तो प्रकृति स्वय उसकी रक्षा करेगी।"

अनमने भाव से देवकी ने कहा—"आपका कथन यथार्थ है, परन्तु हमे प्रकृति पर निर्भर न रह कर स्वय भो उद्यम करना चाहिये। प्रकृति भी तो किसी न किसी माध्यम से ही काम करती है। हमे उसका माध्यम बनना होगा।"

वसुदेव—"बालक की रक्षा के लिये, उसके बदले दूसरी सन्तान लाना आवश्यक है। वह कहाँ से लाई जायेगी?"

देवकी—"इसकी चिन्ता आप न करे। गोकुल मे रहने वाली नन्द राजा की पत्नी यशोदा, मेरी प्रिय सखी है। उससे मेरी बातचीत हो चुकी है। वह मेरे सातवे पुत्र के बदले अपनी सन्तान देने को तैयार है। आप तो इतना करे कि अपनी सन्तान उसको दे आये और उसकी सन्तान यहाँ ले आये। इस उपाय से सन्तान की रक्षा हो जायगी। इससे जगत् का कल्याण होगा और इन अत्याचारो का भी अन्त हो जायेगा।"

वसुदेव ने देवकी की बात स्वीकार कर ली, परन्तु उनके चारो ओर दिन-रात जो कडा पहरा कस ने बैठा दिया था, उसके रहते यह काम होना कठिन जान पडता था। उधर

ज्यो-ज्यो प्रसव का समय सन्निकट आने लगा, कस ने पहरा अधिक कडा कर दिया। कितने ही सरदार पहरेदार बन कर चौकसी करने लगे। फिर भी जन्मने वाले बालक के पुण्य पर भरोसा करके वसुदेवजी और देवकी धैर्य धारण किये समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी आई। अर्द्ध रात्रि का समय हुआ। उसी समय महारानी देवकी के उदर से कृष्णजी का जन्म हुआ। जन्म के समय भी वह अतीव तेजस्वी थे और प्रबल पुण्य लेकर जन्मे थे। उनका असाधारण तेज देखकर देवकी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

आप जानते है कि तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव जैसे महापुरुषो की देवता भी सेवा करते है। कृष्णजी का जन्म होते ही देवकी और वसुदेवजी के समस्त बन्धन टूट गये। देवकी ने वसुदेव को जगाने के उद्देश्य से पुकारा—'महाराज! किन्तु महाराज तो जाग ही रहे थे। दोनो ने देखा-बन्धन टूट गये है।

देवकी ने उतावली होकर कहा—नाथ! "यही सर्वोत्तम अवसर है। आप गोकुल जाइये और इस बालक को यशोदा को सौप आइये। उसके कोई सन्तान हुई हो तो लेते आइये।"

महाराज वसुदेव ने देखा—कारागार के द्वार खुले हुए है। बडे-बडे ताले टूट पडे है और पहरेदार, सरदार खुर्राटे ले रहे है। वसुदेवजी कृष्ण को लेकर रवाना हो गये। एक अज्ञात छाया दीपक लेकर उनके आगे-आगे चलने लगी। वर्षा हो रही थी। बिजली चमक रही थी। मानो प्रकृति विद्युत-प्रदीप जगाकर पुण्य पुरुष कृष्ण का दर्शन कर रही थी और एक बार के दर्शन से तृप्त न होकर पुन पुन देख रही थी।

वसुदेव जी ने भाग्य पर ही भरोसा न करके पुरुषार्थ का आश्रय लिया। वे पुरुषार्थ न करते तो कार्य की सिद्धि होती या न होती, कौन कह सकता है? भाग्य के साथ पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के साथ भाग्य हो तो कार्य की सिद्धि अवश्य होती है।

वसुदेवजी चलकर जब नगर के फाटक पर आये तो वह बन्द था। बडे-बडे ताले जडे हुए थे, जजीरे पडी हुई थी। वह सोचने लगे—फाटक को कैसे पार किया जाय? उसी समय कृष्ण ने अपने पैर का अगूठा फाटक को छुआ दिया और तत्काल ही ताले एव जजीरे टूट कर, फाटक खुल गया।

इसी फाटक के उपर महाराज उग्रसेन अपना बन्दी जीवन यापन कर रहे थे। असमय मे द्वार खुलने की आवाज सुनी तो—उग्रसेन बोले—"केई कोई" अर्थात्—कौन है? तब वसुदेवजी ने साकेतिक भाषा मे उत्तर दिया—"तुम बन्धन खोले सोई।" उग्रसेन ने मन-ही-मन अज्ञात शिशु को आशीष दी। वसुदेवजी जरा भी विलम्ब किये बिना आगे चल दिये।

जब यमुना के किनारे पहुँचे तो देखा—यमुना मे पूर आया हुआ है। मगर वसुदेवजी हिम्मत न हारे। उन्हे विश्वास हो गया था कि जिस देवी शक्ति ने अब तक असभव को सभव बनाया है, वह इस बाधा को भी दूर कर देगी। मुझे तो पुरुषार्थ करते चलना चाहिए। यह सोचकर वसुदेवजी निश्शक भाव से यमुना मे प्रविष्ट हुए। घुटनो तक पानी आया। फिर कमर तक, गले तक, और नाक तक आया। तब कृष्ण ने अपने पैर का अगूठा लगाया कि इधर का पानी इधर और उधर का पानी उधर रह गया। बीच मे रास्ता बन गया। उस रास्ते से वे यमुना पार कर गोकुल मे जा पहुँचे।

नन्द के घर पहुँच कर उन्होने कृष्ण को यशोदा के सुपुर्द किया और यशोदा के उदर से उत्पन्न बालिका को लेकर वापस देवकी महारानी के पास लौट आये। उनके लौटते ही यमुना अपने स्वभाविक वेग से बहने लगी। द्वारो के किवाड और ताले आदि यथापूर्व हो गये। जैसे कोई नवीन घटना घटित ही नही हुई हो।

इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात् बालिका के रूदन की ध्वनि सुनकर पहरेदार जागे। उन्होने भीतर प्रवेश करके पूछा—क्या हुआ ? देवकी ने बालिका को पहरेदारो के हाथ सौप दी। पहरेदार उसे लेकर कस के पास पहुचे।

कस ने देखा कि देवकी की सातवी सन्तान छोकरी हुई है, तो उसे अनिवार्य अनिर्वचनीय सन्तोष हुआ। सोचने लगा—यह छोकरी मुझे क्या मारेगी ? इसका घात करना उचित नही है, तथापि इसे नकटी कर देना चाहिए। जब चाहूँगा तभी इसका गला घोट दू गा।

अब कस के घमण्ड का पार न था। वह अपने को मृत्युन्जय समझने लगा। उसने वसुदेव और देवकी को बन्धनमुक्त कर दिया।

गोकुल मे बात फैल गई कि यशोदा रानी के उदर से बालक का जन्म हुआ है और वह बडा ही सुन्दर तथा तेजस्वी है। पर धीरे-धीरे कस को भी असलियत का पता चल गया और वह कहने लगा—वसुदेव ने मेरे साथ बडा धोखा किया। मगर मुझे परवाह नही। मैं इतना शक्तिशाली हूँ कि वह छोकरा मेरा कुछ भी नही बिगाड सकता।

कृष्ण सोलह वर्ष तक गोकुल मे रहे। बडे होने पर उन्होने अपनी शक्ति से अत्याचारियो का अन्त किया। जरासध मारा गया, कस का विध्वस हुआ, दुर्योधन का निधन हो गया, और शिशुपाल भी काल के गाल मे चला गया।

इन कुमारो का अवशेष वर्णन तथा अन्य अध्ययनो का वर्णन तृतीय वर्गगत मूलपाठ मे स्पष्ट है। अत पुनरुक्ति न हो इसलिए उत्थानिका मे नही दिया जा रहा है।

गजसुकुमाल अनगार के उपर खैर के अगार रखने के विषय मे एक किवदन्ति यह भी सुनने एव पढने को मिलती है कि निन्यानवे लाख भवपूर्व एक पति के दो पत्नियाँ थी, उसमे एक के लडका था, एक के नही था। जिसके लडका नही था, वह लडके वाली से ईर्ष्या करती थी। एक दिन लडके के मस्तिष्क पर फोडे हो गये, तो इसके इलाज के लिये बिना लडके वाली ने कुटिलता के साथ बताया कि इसके मस्तिष्क पर गर्म रोटी करके रख दो, जिसमे सब फोडे ठीक हो जायेगे। उसने सोचा, ऐसा करने पर बच्चा खत्म हो जायगा और हम दोनो फिर एक समान हो जायेगे। बच्चे की माता इस कुटिलता को समझ न पाई और उसने वैसा ही कर दिया, जिससे बच्चा खत्म हो गया। यही पर उस आत्मा ने निकाचित् कर्मो का बन्धन किया। जो निन्यानवे लाख भव के बाद उदय मे आया। बच्चे की आत्मा तो सोमिल नामक ब्राह्मण बनी और उस महिला की आत्मा, जिसने कुटिलता के साथ हिसक उपाय बताया था, वह गजसुकुमाल अनगार की आत्मा के रूप मे आई। यहाँ पर सोमिल ब्राह्मण ने अपने पूर्वभव के सभी सस्कारो के कारण गजसुकुमाल अनगार पर खैर के अगारे रखे थे। जैसा भी हो गजसुकुमाल की आत्मा ने सम्पूर्ण कर्मो का क्षय किया तथा मुक्तावस्था प्राप्त की।



तइओ वग्गो   तृतीय वर्ग

उत्थानिका

13— जइ ण तच्चस्स । उक्खेवओ[1] ।

एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता तजहा—

1. अणीयसे, 2. अणतसेणे, 3. अणिहय, 4. विऊ, 5. देवजसे, 6. सत्तुसेणे, 7. सारणे, 8. गए, 9. सुमुहे, 10. दुम्मुहे, 11. कूवए, 12. दारूए, 13. अणादिट्ठी ।

"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ।"

जम्वू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया-भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा तो भगवन् ! प्रभु ने तीसरे वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? तव सुधर्मा स्वामी ने कहा—

हे जम्वू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन वतलाएँ है । जैसे—
(१) अनीयस कुमार, (२) अनन्तसेन कुमार, (३) अनिहत कुमार, (४) विद्वत कुमार, (५) देवयस कुमार, (६) शत्रुसेन कुमार, (७) सारण कुमार, (८) गज कुमार, (९) सुमुख कुमार, (१०) दुर्मुख कुमार, (११) कूपक कुमार, (१२) दारूक कुमार, (१३) अनादृष्टि कुमार ।

ये तेरह अध्ययन इन तेरह राजकुमारो के नाम से व्याख्यायित किये गये है ।

"हे भगवन् ! यदि मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम-अग अतकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन वतलाए है, तो भगवन् अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन मे प्रभु ने क्या फरमाया है ?"

प्रथम अध्ययन · अनीयस

14— एव खलु जबू ! तेण कालेणं तेणं समएण भद्दिलपुरे णाम नयरे होत्था—वण्णओ[1] । तस्स णं

हे जम्वू ! उस काल उस समय मे भद्दिलपुर नामक एक नगर था । उसके (ईशान कोण) उत्तर पूर्व दिशा के मध्य भाग मे श्रीवन नामक श्रेष्ठ उद्यान था ।

भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसोभाए सिरिवणे णामं उज्जाणे होत्था—वण्णओ[B]। जियसत्तू राया।

तत्थ णं भद्दिलपुरे नयरे नागे णाम गाहावई होत्था! अड्ढे जाव[C] अपरिभूए। तस्स णं नागस्स—गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था—सुकुमाल जाव[D] सुरूवा।

उस नगर के महाराज जितशत्रु थे। उसी भद्दिलपुर नगर मे नाग नामक ऋद्धि आदि से सम्पन्न गाथापति के सुलसा नामक भार्या-धर्मपत्नी थी। वह अत्यन्त सुकोमल, यावत् रूपवती थी।

15—तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नामं कुमारे होत्था—सुकुमाले जाव[E] सुरूवे पंचधाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे जाव[F] गिरिकंदरमल्लीणे व चंपगपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

उस नाग नामक गाथापति का पुत्र सुलसा नामक भार्या का आत्मज अनीयस कुमार था, जो अति कोमल एव रूपवान था। पाँच धाय माताओ द्वारा परिपालित था। यथा-क्षीरधात्री-दूध पिलाने वाली, मज्जयनधात्री-स्नान कराने वाली, मडन धात्री-अलकार पहनाने वाली, क्रीडाधात्री-खेल खिलाने वाली, अकधात्री-गोद मे खिलाने वाली आदि जीवन वर्णन दृढप्रतिज्ञ की तरह समझ लेना चाहिये। अनीयसकुमार गिरिगुफा मे सर्वधित चपकलता (वृक्ष) के समान बढने लगा।

16—तए णं तं अणीयसं कुमारं सातिरेगअट्ठवासजायं अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंत्ति जाव[A] भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

तए णं त अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाण जाव[B] बत्तीसाए इब्भवर कण्णगाण एग दिवसेण पाणि गेण्हावेंति।

जब वह अनीयस कुमार कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता पिता ने उसे विद्या ग्रहण करने के लिये कलाचार्य के पास भेजा। कलाओ का पूर्ण अध्ययन कर बाल भाव को छोड कर, जब अनीयस कुमार भोग भोगने मे समर्थ हो गया, तब उसके माता-पिता अनीयस कुमार के उन्मुक्त बालकभाव को जानकर अर्थात् उसे यौवन की देहली पर पद चरण रखते देखकर उसके अनुरूप अवस्था, लावण्य, चतुर, रूप और गुण मे निपुण बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ एक ही दिन मे उसका विवाह कर दिया।

तए ण से नागे गाहावई अणीयसस्स कुमारस्स इम एयारूव पीइदाण दलयइ, तजहा-बत्तीस हिरण्णकोडीग्रो जहा महावलस्स जाव[C] फुट्टमार्णोहि मुइगमत्थर्एाह भोगभोगाइ भु जमाणे विहरइ।

विवाह के पश्चात् नागकुमार गाथापति ने अनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय बत्तीस करोड दिव्य कोटि आदि दिये। जिस प्रकार महाबलकुमार का वर्णन आता है, उसी प्रकार इसका वर्णन भी जानना चाहिये। अनीयस कुमार अपने विशाल राजप्रासाद मे, अनेक भाँति अठखेलियाँ करते हुए, मृदग की ध्वनि मे मस्त हो अपने जीवन को व्यतीत करने लगा।

17— तेणं कालेण तेण समएणं अरहा अरिट्ठनेमी, जाव[D] समोसढे सिरिवणे उज्जाणे। अहा जाव पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स अणीयसस्स तं महा0[E] जहा गोयमे तहा अणगारे जाए नवरं—सामाइयमाइयाइं चउद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। बीस वासाइं परियाओ। सेसं तहेव जाव[1] सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव[G] सिद्धे।

एवं खलु जंवू! समणेणं भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान श्रीवन नामक उद्यान मे पधारे। समवसरण की रचना हुई। जनता उपदेश सुनने को उपस्थित हुई। सुनकर प्रमुदित होती हुई पुन लौट गई। उसी सभा मे उपस्थित अनीयस कुमार को, देशना सुन, वैराग्य जागृत हो गया। अन्त मे गौतमकुमार की तरह भगवान के चरणो मे सयम जीवन अगीकार किया। सामायिक आदि चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे एक मास की सलेखना सथारा द्वारा शत्रु जय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।"

2-6 अध्ययन

18— एव जहा अणीयसे एव सेसा वि अणतसेणो जाव[A] सत्तुसेणे छ अज्झयणा एक्कगमा। बत्तीसओ

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम, षष्ठम अध्ययनो का वर्णन भी अनन्तसेन से लेकर शत्रुसेन पर्यन्त, अनीयस कुमार की तरह जानना चाहिये। सभी का बत्तीस-

दाश्रो। वीसं वासाइं परियाश्रो, चउद्दस पुव्वाइं श्रहिज्जइ। सेत्तुंजे सिद्धा।

बत्तीस श्रेष्ठ कन्याश्रो के साथ पारिणग्रहरण हुश्रा था। बत्तीस हिरण्यकोटि श्रादि दिये गये थे। सभी ने बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया था। सामायिक श्रादि चौदह पूर्वो का श्रध्ययन किया था। श्रन्त मे एक मास की सलेखना सथारा द्वारा शत्रुजय पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया था।

सप्तम अध्ययन : सारणकुमार

19– तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए नयरीए जहा पढमे, नवरं-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासश्रो दाश्रो। चउद्दस पुव्वा। वीसं वासा परियाश्रो। सेसं जहा गोयमस्स जाव[B] सेत्तुंजे सिद्धे।

उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी। वर्णन प्रथम वर्ग की तरह जानना चाहिये। विशेपता यह है कि वसुदेव राजा तथा धारिणी रानी निवास करते थे। धारिणी ने गर्भकाल मे सिह का स्वप्न देखा। काल की परिपक्वता पर एक सुन्दर वालक को जन्म दिया। उसका नाम सारणकुमार रखा गया। उसका पचास कन्याश्रो के साथ विवाह किया गया। पचास प्रकार का दहेज दिया गया। भगवान श्ररिष्टनेमि की देशना सुनकर विरक्त हुए श्रौर सयम-जीवन श्रगीकार कर चौदह पूर्वो का श्रध्ययन किया। बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। श्रन्त समय मे एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुजय पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया। सारणकुमार का (मध्यस्थ) श्रवशेप वर्णन गौतम कुमार की तरह जानना चाहिये।

अष्टम अध्ययन : गजसुकुमाल

20– जइ[C] उक्खेवश्रो श्रट्ठमस्स।

एव खलु जबू! तेणं कालेणं तेण समएण वारवईए नयरीए, जहा पढमे जाव[D] श्ररहा श्ररिट्ठनेमी समोसढे।

श्राठवे श्रध्ययन का उत्क्षेप समझ लेना चाहिये। हे जम्बू! उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी। जैसे प्रथम श्रध्ययन मे वर्णन किया, वैसा जानना चाहिये। यावत् श्रर्हन्त श्ररिष्टनेमि भगवान पधारे, समवसरण की रचना हुई। जनता उपदेश सुनने को श्राई श्रौर चली गई।

तेणं कालेण तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो महोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुम-कुंडल भद्दलया। नलकूबर समाणा।

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि अनगार के अन्तेवासी छ अनगार थे। जो सहोदरा-एक ही माता के उदर से उत्पन्न छ भाई थे। जो सदृशा-एक समान थे, सदृश-एक समान त्वचा वाले थे। सदृश वयस-एक समान उमर वाले थे। नीलकमल भैंस के सीग के अन्दर का भाग गुलिका-रग विशेष, अलसी के फूल की तरह थे। कुसुमो के समान कोमल और कुण्डल के समान वर्तुल-गोल अर्थात् घु घराले बाल वाले थे। नलकूबर-वैश्रमण के पुत्र के समान थे।

छह अणगारो का तपश्चरण

21— तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवस मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमि वंदंति णमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामो ण भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेह।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव[A] विहरति।

ऐसे ये छहो अनगार जिस दिन मुण्डित हुए थे, उसी दिन अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करते है। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार बोले— आप श्री द्वारा अभ्यानुज्ञात-आज्ञा प्राप्त होने पर जीवन पर्यन्त निरन्तर छट्ठ-छट्ठ-बेले-बेले के तपकर्म और सयम द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना चाहते है। तब भगवान ने फरमाया—

हे देवानुप्रिय! तुम्हे जिसमे सुख हो वह करो। परन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब नही करना चाहिये। भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर छहो अनगार बेले-बेले का तप करते हुए आत्मसाधना मे लग गये।

पारणे के लिए द्वारिका मे प्रवेश

22— तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति जहा गोयमो जाव[B]।

इच्छामो णं भंते! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव[C] अडित्तए।

अहा सुहं देवाणुप्पिया!

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमि वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमंत्ति पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव[D] अडंति।

इसके अनन्तर वे छहो अनगार किसी समय मे बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते है, यावत् गौतम अनगार की भाँति दिनचर्या करते हुए भगवान के चरणो मे निवेदन करते है— हे भगवन्! आज हमारे बेले का पारणा है, अत आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर हम छहो अनगार तीन सिघाडो मे विभक्त होकर द्वारिका नगरी मे भिक्षाचर्या के लिये यावत् घूमना चाहते है।

तब भगवान अरिष्टनेमि ने कहा— हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हे सुख हो— वैसा करो

तब वे छ अनगार अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से आज्ञा प्राप्त कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना-नमस्कार करते है। वन्दन-नमस्कार करके अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास से सहस्राम्र वन से निकलते है। निकलकर तीन सिघाडो मे विभक्त होकर चपलता रहित यावत् भिक्षाचर्या के लिये घरो मे विचरण करने लगते है।

तीनों सिघाड़े क्रमशः देवकी के महलों मे

23— तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

तए ण सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव[A] हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता

उन तीनो सिघाडो मे से एक सिघाडे के दोनो मुनि द्वारिका नगरी के उच्च-नीच, मध्यम कुल मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए महाराज वसुदेव की रानी देवकी के घर मे प्रविष्ट हो जाते है। तब देवकी देवी घर मे प्रवेश करते हुए उन मुनियो को देखकर हृदय मे अत्यन्त प्रसन्न होती है, यावत् आसन से उठती है, उठकर के सात-आठ कदम सामने जाकर दक्षिण की ओर से उनको तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा

सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, त्तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया, सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ 2, ते अणगारे पडिलाभेइ वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

तयाणंतरं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव[B] विसज्जेइ।

करती है। करके वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके, जिधर भोजन गृह था, वहाँ आती है। सिहकेसरी नामक मोदको से एक थाल भरती है और उन मुनियो को बहराती है फिर उन्हे वन्दन नमस्कार करके विदा करती है।

तदनन्तर द्वितीय सिघाडक भी घूमता हुआ, सयोगवश वही आ पहुँचा। देवकी देवी ने उन्हे भी पूर्व की तरह सिहकेसरी मोदक बहरा कर विदा करती है।

देवकी की जिज्ञासा . अनगारो का समाधान

24— तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्चनीय जाव[A] पडिलाभेइ पडिलाभेत्ता एवं वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया ! "कण्हस्स वासुदेवस्स इमोसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव[B] पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव[C] अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति जण्णं ताइं चेव कुलाइ भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसंति।

तए ण ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव[D] देवलोगभूयाए समणा

उसके कुछ समय बाद ही तीसरा सिगाडा भी द्वारिका नगर के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे घूमता हुआ यावत् देवकी देवी के यहाँ पहुँच जाता है। देवकी महारानी उन्हे पूर्व की तरह अत्यन्त भावना के साथ सिह केसरी नामक मोदक बहराती है। आहार बहराने के पश्चात् देवकी देवी ने मुनियो से सविनय निवेदन किया—

देवानुप्रियो ! "क्या कृष्ण-वासुदेव की द्वारिका नगरी मे नौ-नौ योजन चौडी और बारह योजन लम्बी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान नगरी मे श्रमण-निग्रन्थो को सामान्य असामान्य घरो मे घूमते हुए आहार-पानी प्राप्त नही होता है ? क्या कारण है कि श्रमण-निग्रन्थो को एक ही घर मे भक्त पान के लिये बार-बार आना पडता है ?"

तदन्तर देवकी देवी को अनगार इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! "निश्चय ही

निग्गंथा उच्चनीय जाव[L] अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति णो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति ।"

25— एवं खलु देवाणुप्पिए ! "अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव[A] नलकूबर समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म संसारभउविग्गा भीया जम्ममरणाणं मुंडा जाव[B] पव्वइया । तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइआ तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो, इमं एयारूवं अभिग्गह अभिगिण्हामो । इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणा जाव[C] अहासुहं देवाणुप्पिया ।

तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव[D] विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए जाव[L] अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा । तं णो खलु देवाणुप्पिए! त चेव ण अम्हे, अम्हे णं अण्णे ।" देवइ देवि एवं वदंति वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

कृष्ण-वासुदेव की यह द्वारिका नगरी यावत् देवलोक के समान है । श्रमण निर्ग्रन्थों को उच्च-नीच मध्यम कुलो मे घूमते हुए भिक्षा प्राप्त नही होती है, ऐसी बात नही है ।

हे देवानुप्रिय ! "एक ही घर मे दो बार-तीन बार प्रवेश करने का कारण यह है कि हम भद्दिलपुर नामक नगर मे नाग नामक गाथापति के पुत्र सुलसा नामक भार्या के आत्मज छ सहोदर अनगार भाई है । हम छहो एक जैसे यावत् नलकूबर के समान श्रेष्ठ है । हमने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के सानिध्य मे धर्म श्रवण कर ससार भय से उद्विग्न, जन्म-मरण मे भयभीत, मुण्डित यावत् प्रव्रजित हो गये । जिस दिन हम प्रव्रजित हुए थे, उसी दिन अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान को वन्दना-नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके कहा— हम इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करना चाहते है । हे भगवन् ! आपकी आज्ञा होने पर बेले का तप करना चाहते है । भगवान ने कहा— जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो । इस प्रकार अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान की आज्ञा प्राप्त कर, हमने बेले-बेले का पारणा प्रारम्भ कर दिया । आज हमारे बेले का पारणा था । प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया, तीसरे प्रहर मे हम छहो भाई दो-दो के तीन सिघाडे बनाकर पारणे के लिये द्वारिका नगरी मे—घूमते हुए क्रमश आपके घर मे प्रविष्ट हो चुके है । हम अन्य है ।" देवकी देवी को इस प्रकार कहते है इस प्रकार कह कर, जिस दिशा मे आए थे, उसी दिशा मे चले गये ।

देवकी का प्रभू से स्पष्टीकरण

26– तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंत्तिए पत्थिए मणोगए सकप्पे–एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेण कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ–तुमण्णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव[A] नलकुब्बरसमाणे नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति । तं ण मिच्छा । इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ–भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव[B] पुत्ते पयायाओ । तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामि नमंसामि वंदित्ता नमंसित्ता इमं च णं एयारूव वागरणं पुच्छिस्सामित्ति कट्टु एव संपेहेइ संपेहेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–लहुकरणप्पवर जाव[C] उट्ठवेति । जहा देवाणंदा जाव[D] पज्जुवासइ ।

उन श्रमणो के चले जाने के पश्चात् देवकी देवी के मन मे आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और सकल्पित विचार उत्पन्न हुआ— मुझे पोलासपुर नामक नगर मे अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने बाल्यावस्था मे इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये ! तुम आठ पुत्रो को जन्म दोगी जो कि एक समान आकृति वाले यावत् वैश्रमण कुमार के तुल्य होगे। भारतवर्ष मे अन्य माताए इस प्रकार के पुत्रो को जन्म नही दे सकेगी। लेकिन यह कथन मिथ्या प्रमाणित हुआ क्योकि प्रत्यक्ष प्रमाणित हो रहा है कि भारतवर्ष मे अन्य माताओ द्वारा भी वैश्रमण कुमार की तरह पुत्र उत्पन्न हुए है। अत मै जाऊँ, और अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान की वन्दन नमस्कार करूँ, वन्दन नमस्कार करके उनसे पूछु गो। इस प्रकार मन मे विचार करके देवी ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा कि तुम शीघ्र चलने वाले धार्मिक श्रेष्ठ लघुकरण रथ को तैयार करो। आज्ञा पाकर सेवको ने वैसा ही रथ तैयार कर दिया और जिस प्रकार देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान के चरणो मे पहुँची थी, उसी तरह देवकी देवी भी पहुँच गई, और पर्युपासना करने लगी।

27– तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी–"से नूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे–एवं खलु अहं

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने देवकी देवी को देखते ही कहा "हे देवकी देवी ! तुम्हे उन छ अनगारो को देखकर यह सकल्प उत्पन्न हुआ कि मुझे पोलासपुर नगर मे अतिमुक्तक कुमार ने कहा था, यावत् उस विषयक वस्तुस्थिति जानने के लिये तुम घर से

पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं जाव[A] तं णिगच्छसि णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागया। से नूणं देवई! अट्ठे समट्ठे?"

"हंता अत्थि।"

निकलकर शीघ्रता के साथ मेरे पास आई हो, क्या यह कथन सत्य है?" भगवान के इस कथन को देवकी देवी स्पष्ट करने लगी।

"भगवन्! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य हे, मैं उसी उद्देश्य को लेकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुई हूँ।"

28– एवं खलु देवाणुप्पिए! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ–अड्ढे।

तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था। तए णं सा सुलसा बालत्तणे चेव हरिणेगमेसीभत्तया यावि होत्था। नेमित्तिएणं वागरिया–एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ।

तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ करेत्ता कल्लाकल्लि ण्हाया जाव[B] पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा वरइ वा।

भगवान अरिष्टनेमि–हे देवानुप्रिय! "उस काल उस समय मे भद्दिलपुर नामक नगर मे ऋद्धि आदि से सम्पन्न नाग नामक गाथापति निवास करता था। उस नाग नामक गाथापति के सुलसा नामक भार्या-धर्मपत्नी थी। उस सुलसा नामक गाथापत्नी को बाल्यकाल मे ही एक नैमेतिक ज्योतिषी ने कहा था–यह लडकी निंदू होगी अर्थात् मृत बच्चो को जन्म देगी। इस वात को सुन कर सुलसा ने तभी से हरिणैगमेषि देव की आराधना प्रारम्भ करदी। उसने हरिणैगमेपि देव की एक प्रतिमा वनवाई, वनवाकर नित्य प्रति स्नान एव अनिष्ट परिहारार्थ प्रायश्चित करके आर्द्रपट्ट–गीली साडी के साथ पूजार्ह-चयनित फूलो से नित्य प्रति पूजा करती थी। तदनन्तर दोनो (जानुओ) घुटनो को भूमि पर टेककर प्रणाम करती। यह सब कुछ करने के वाद ही आहार करती, निहार करती तथा अन्य कामो मे प्रवृत्त होती थी।

29– तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिवहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरिणेगमेसी देवे

तदनन्तर सुलसा की भक्ति तथा सेवा से हरिणैगमेपि देव आराधित हो गया, प्रसन्न हो गया। तव प्रसन्न हुए हरिणैगमेपि देव ने सुलसा नामक सेठानी की अनुकम्पा-निमित्त, उस पर दया भाव लाकर, सुलसा गाथा पत्नी

सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावईणिं तुमं च दो वि समउउयाओ करेइ। तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठयाए विणिहायमावण्णे दारए करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ। त समयं च णं तुमं पि नवण्हं मासाणं सुकुमाल दारए पसवसि। जे वि य णं देवाणुप्पिए! तव पुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ। तं तव चेव णं देवई! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाए गाहावइणीए।

और तुम्हे (देवकी) एक साथ रजस्वला होने की व्यवस्था कर दी। अर्थात् देव माया से तुम और सुलसा एक साथ सन्तान उत्पन्न करने लगी। तुम दोनो ने ही लगभग एक ही समय मे गर्भ धारण किया, उसका परिवहन किया और प्राय एक ही समय मे बच्चो को जन्म भी दिया। सुलसा पर अनुकम्पा करके देव ने उसके मृत बच्चो को हाथो से गृहण कर तुम्हारे पास लाकर (स्थापित) रख दिया और उस समय तुमने भी नवमास से कुछ अधिक दिन व्यतीत होने पर सुकुमार बालको को जन्म दिया। हे देवानुप्रिय! जो तुम्हारे बालक थे उनको देव ने दोनो हाथो से उठाकर सेठानी सुलसा के पास पहुँचा दिया।

अत हे देवकी! वे पुत्र तुम्हारे ही है सुलसा के नही।

पुत्र दर्शन से देवकी का हर्षातिरेक

30– तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[A] हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नंमसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि

तदनन्तर देवकी देवी अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से इस तथ्य को श्रवणकर हृष्ट हुई-सन्तुष्ट हुई और हृस्ट-तुष्ट हृदय से अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके-जहाँ वे छ अनगार थे, वहा पर आती है। आकर छहो ही अनगारो को वन्दन-नमस्कार करती है।

अणगारे वंदइ नमंसइ वदित्ता नमंसित्ता आगयपण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुयपरिक्खित्तया दरियवलय-बाहा-धाराहय-कलंब-पुप्फगं विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी-पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ निरिक्खित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमि तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरूहित्ता जेणव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरूहइ पच्चोरूहित्ता जेणेव सए वासधरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागया सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ ।

वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् आगत प्रस्नुता-अत्यधिक पुत्र स्नेह मे उसके स्तनो मे दुग्ध आ गया, उसके नेत्र आनन्दाश्रु से आर्द्र हो गये । हर्ष और रोमाच की अधिकता से शरीर फूल जाने के कारण ककरण तग होकर मेघधारा से आहत हुए कदम्बक नामक फूल के आसू मे उसकी रोमराजि विकसित हो गई । छहो अनगारो को निर्निमेष दृष्टि से स्थिर काल तक देखती है । देखकर वन्दन-नमस्कार करके जहाँ पर अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान थे, उधर आती है, आकर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करती है, करके, वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके, धार्मिक कार्यो मे उपयोग लाये जाने वाले श्रेष्ठ यान-रथ पर आरोहण करती है । आरोहण करके, जिधर द्वारिका नगरी थी, उधर आती है, आकर द्वारिका नगरी मे प्रवेश करके जहा अपना महल था और जहाँ बाहर की उपस्थापन शाला-बैठने की जगह थी, वहाँ आती है, आकर धार्मिक यान (श्रेष्ठ रथ) से नीचे उतरती है, उतरकर, जहाँ पर अपना वासग्रह था, वहाँ आकर अपनी शय्या पर बैठ जाती है ।

देवकी द्वारा आर्त्तध्यान

31– तए णं तीसे देवईए देवीए अय अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए जाव नलकूवर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया नो चेव णं मए एगम्स वि बालत्तणए

तदनन्तर देवकी देवी के मन मे इस प्रकार के विचार उत्पन्न होते है कि मैंने वैश्रमण के पुत्रो के समान सातो पुत्रो को जन्म दिया, किन्तु मैंने एक भी पुत्र के बाल जीवन का सुखानुभव नही किया । यह

समणुब्भूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्ह छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ जासिं मण्णे णियगकुच्छि सभूयाइं, थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुरसमुल्लावायाइ मम्मण-पजंपियाइ थण-मूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमोलवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए। अह णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा (अकयलक्खणा) एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता ओयह जाव[A] झियायइ।

कृष्ण वासुदेव भी छ छ मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आते है। मै मानती हूँ कि वे माताएँ धन्य है, जिनकी सतति निज कुक्षि से उत्पन्न होती है, स्तन के दुग्ध मे लुब्ध होती है, मधुर तथा अव्यक्त मुनमुन, तुतलाती वाणी मे बोलते है, स्तन मूलक कक्ष भाग मे रहती है, जिसको माता कमल के समान कोमल हाथो से उठाती, अपनी गोदी मे बिठाती है तथा उन बालको के आलाप को—शब्दादि बाल सबधी प्रक्रियाओ का सुमधुर और मजुल उत्तर देती है। मै अधन्य हूँ, अकृतपुण्या हूँ। क्योकि मुझे उपर्युक्त पुत्र जनित प्रक्रियाओ मे से एक का भी कर्त्तव्य, कर्म रूप से अनुभव नही हुआ। इस प्रकार उदासीन माता देवकी आर्त्तध्यान करने लगती है।

दुःख की अभिव्यक्ति—श्री कृष्ण के समक्ष

32— इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव[A] विभूसिए देवइए देवीए पायग्गहण करेइ करित्ता देवइं देविं एवं वयासी—

अण्णया णं अम्मो! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव[B] भवह, किण्णं अम्मो! अज्ज तुब्भे ओहयमण-संकप्पा जाव[C] झियायह ?

इधर कृष्ण वासुदेव स्नान से निवृत्त हो, सभी अलकारो से विभूषित होकर, देवकी देवी को चरण वन्दन करने के लिये शीघ्र आते है। तव कृष्ण-वसुदेव देवकी देवी को देखते है, देखकर देवकी देवी के चरण-वदन करते है, करके देवकी देवी को इस प्रकार कहते है— हे माता! अन्य दिनो मे, जव मैं तुम्हारे पास आता हूँ तो आप मुझे समीप देखकर हर्षित और खुशी होती है। परन्तु हे माता! आज आप किस कारण मे योगिनी की तरह विचार निमग्न हो ?

33— तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु अहं पुत्ता । सरिसए जाव नलकूबरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुब्भूए । तुमं पि य णं पुत्ता ! छण्हं—छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि । तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि ।

तब देवकी देवी कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोली— हे पुत्र ! निश्चय ही मैने एक समान सात पुत्रो को जन्म दिया, किन्तु एक भी पुत्र के बालत्व आदि कर्त्तव्य-कर्म का अनुभव नही किया । और न तुम भी हे पुत्र ! छ छ महीने मे मेरे पास चरण-वन्दन के लिये शीघ्र आते हो । अत मैं सोचती हूँ कि वे माताएँ धन्य है जो अपने पुत्रो के बालत्व के कर्त्तव्य-कर्म का अनुभव करती है । किन्तु हे पुत्र ! मैं उसके अभाव के कारण आर्त्तध्यान करती हूँ ।

कृष्ण द्वारा देव आराधन

34— तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहयमण संकप्पा जाव झियायह अहण्णं तहा जत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ। तओ पडिणिक्खमई पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जहा अभओ । नवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगेण्हइ जाव[D] अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया । सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं ।

तए णं से हरिणेगमेसी देवं कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-होहिइ

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव देवकी देवी को इस प्रकार कहने लगे—तुम उदासीन मत हो, यावत् आर्त्तध्यान मत करो । मैं उस प्रकार का प्रयत्न करूंगा, जिससे मेरे एक सहोदर भ्राता और होगा । ऐसा कह कर देवकी देवी को, इष्टवाग्भि-इष्ट वचनो द्वारा आश्वासन देते है । आश्वासन देकर वहाँ से चलते है, चलकर जिधर पोपधशाला थी, उधर आते है और जिस प्रकार अभयकुमार ने तेला किया, वैसे तेला करते है । अन्तर केवल इतना ही है कि कृष्ण-वासुदेव ने हरिणैगमेपी देव की आराधना करने के लिए तेले का आराधन किया था, यावत् हरिणैगमेपी देव के प्रकट हो जाने पर विधिवत् पोपध पूर्ण करके कृष्ण-वासुदेव ने कहा—हे देवानुप्रिय ! मेरी इच्छा है कि मेरे एक सहोदर-एक ही माता से उत्पन्न, एक भाई और हो ।

तदनन्तर हरिणैगमेपी देव ने कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय !

णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्क जाव[A] मणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुण्डे जाव[B] पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि वदइ वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

देवलोक से च्युत होकर एक देव तुम्हारे भाई के रूप मे जरूर उत्पन्न होगा किन्तु वह बाल भाव को छोडकर, जब युवावस्था मे प्रवेश करेगा, उसी समय अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित यावत् दीक्षित हो जायगा। देव कृष्ण-वासुदेव को दो बार-तीन बार इस प्रकार कहता है, कहकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे पुन चला गया।

कृष्ण द्वारा देवकी को आश्वासन

35– तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिवत्तइ पडिणिवत्तित्ता जेणेव देवइं देवि तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहण करेइ करेत्ता एवं वयासी–

होहिइ णं अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवइं देवि ताहि इट्ठाहि जाव[C] आसासेइ आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तब कृष्ण-वासुदेव पोषधशाला से निकलते है, निकलकर देवकी देवी के पास आकर चरण वन्दन करते हुए इस प्रकार बोले—हे माता ! मेरे सहोदर लघु भ्राता अवश्य होगा। इस प्रकार देवकी देवी को इष्ट वचनो से आश्वस्त करते है, आश्वस्त करके जिस दिशा से आये उसी दिशा मे चले जाते है।

गजसुकुमाल का जन्म और विकास

36– तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव[A] सीहं सुविणे पासित्ता पडिबुद्धा जाव[B] पाढया[C] हट्ठहियया तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तदनन्तर देवकी देवी अन्य किसी समय मे कोमल एव सुखद शय्या पर शयन कर रही थी। उस समय सिह स्वप्न को देखकर जाग्रत हो उठी। उसने स्वप्न का सारा वृत्तान्त अपने पति वसुदेव को सुनाया। महाराज वसुदेव ने स्वप्न-पाठको को बुलाकर

तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं पडिपुण्णाणं जासुमण–रत्तबंधुजीवय लक्खारस सरस पारिजातक-तरुण दिवायर-समप्पभं सव्वणयणकंतं-सुकुमाल जाव[D] सुरुवं गयतालुसमाणं दारयं पयाया। जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव[E] जम्हा णं अम्हं इमे दारगे गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेंति गयसुकुमालोत्ति। सेसं जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

स्वप्न फल के विपय मे पूछा। स्वप्न-पाठको ने उसका फल एक सुयोग्य पुण्यात्मा पुत्र की उत्पत्ति होना वतलाया। महारानी देवकी स्वप्न पाठका से स्वप्न का फल श्रवण कर प्रसन्न हुई।

समय आने पर गर्भ धारण किया और उसका उचित रीति से पालन-पोपण करने लगी। गर्भगत सवा नो मास व्यतीत होने पर जासू के फूल के समान, रक्त वधु जीवक के समान, लाख के रग के समान, खिले हुए पारिजात पुष्प के समान, प्रात कालीन सूर्य के समान कान्ति वाले, सवके नेत्रो को प्यारे लगने वाले सुकुमार, यावत् सुरूप, गजतालु के समान पुत्र को जन्म देती है। जन्म सस्कार मेघकुमार की तरह किया गया। नाम सस्कार करते समय कहा गया कि हमारा बालक हाथी के तालु के समान रक्त वर्ण वाला है तथा कोमल अगो वाला है, इसलिये इस बालक का नाम गजसुकुमाल होना चाहिये। इसके अनुसार माता पिता द्वारा बालक का नाम गजसुकुमाल कुमार रखा गया।

राजकुमार गजसुकुमाल का अवशेप वर्णन मेघकुमार की तरह जानना चाहिये। अर्थात् गजसुकुमाल कलाओ मे निष्णात हो गये तथा वालक भाव को पारकर युवानी मे भोग भोगने मे समर्थ हो गये।

राजपथ पर सोमा का खेलना

37– तत्थ णं वारवईए नयरिए सोमिले नाम माहणे परिवसइ अड्ढे। रिउव्वेय जाव[A] सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिल-माहणस्स

उस द्वारिका नगरी मे सोमिल नामक ब्राह्मण भी निवास करता था। वह ऋद्धि से सम्पन्न ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि वेदो के ज्ञान मे निष्णात सुपरिनिष्ठित था। उस सोमिल ब्राह्मण की पत्नी का नाम सोमश्री था। वह

सोमसिरी नामं माहणी होत्था। सूमालपाणिपाया। तस्स णं सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणिए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था। सोमाला जाव[B] सुरुवा। रूवेणं जोव्वणेणं लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था।

तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव[C] विभूसिया, बहूहिं खुज्जाहिं जाव[D] परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी चिट्ठइ।

सुन्दर एव सुकुमाल अङ्गोपाग वाली थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री तथा सोमश्री नामक ब्राह्मण की आत्मजा का नाम सोमा था। सोमा बालिका सुकोमल तथा रूपवती थी। रूप-लावण्य की दृष्टि से उत्कृष्ट-श्रेष्ठ शरीर वाली थी। उस सोमा बालिका ने स्नान किया, आभूषणों से अपने शरीर को अलकृत किया तथा कुब्जा आदि अनेक दासियाँ अपने साथ ली। उनसे परिवृत्त होकर घर से निकली, निकल कर जिधर राज मार्ग था उधर आती है, आकर के राज मार्ग पर कनक-कन्दूकेन-सोने की गेद से खेलने लगती है।

कन्या के अन्त:पुर में सोमा का प्रवेश

38— तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेण कुमारेणं सद्धि हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर—चामराहिं उद्धुमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान पधारे। उनके दर्शन करने के लिये जनता नगरी से निकली। तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव ने भी भगवान के आगमन सन्देश को सुनकर स्नान किया, यावत् सभी अलकारो से विभूषित हुए और राजकुमार गजसुकुमाल को साथ मे लेकर हाथी के स्कध पर सवार हो जाते हैं। करण्ड वृक्ष के फूलो से युक्त छत्र धारण कर रखा था। श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे। इस प्रकार महाराज कृष्ण, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन करने के लिये द्वारिका

पायवंदए निग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णतेउरंसि पक्खिवह । तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ । तए णं कोडुंबिय जाव[A] पक्खिवंति ।

नगरी के मध्य मार्ग से जा रहे थे । रास्ते मे सोमा नामक वालिका को देखते है । देखकर सोमा वालिका के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर आश्चर्यान्वित हो गये । तत्काल उन्होने अपने कौटुम्बिक पुरुप-कर्मचारियो को वुलाकर कहा– हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, सोमिल ब्राह्मण के पास जाकर सोमा नामक वालिका की याचना करो । सोमिल ब्राह्मण की अनुमति मिलने पर उस सोमा वालिका को ग्रहण कर कन्याओ के अन्त -पुर मे पहुँचा दो । भविष्य मे राजकुमार गजसुकुमाल के साथ इसका विवाह कर दिया जायगा । कौटुम्बिक पुरुपो ने वैसा ही किया, यावत् सोमा वालिका को कन्या अन्त -पुर मे पहुँचा देते है ।

भगवान अरिष्टनेमि के चरणों मे गजसुकुमाल

39– तए णं से कण्हे वासुदेवे वारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंववणे उज्जाणे जाव[B] पज्जुवासइ।

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव, द्वारिका नगरी के मध्य मार्ग से निकलते है, निकलकर जिधर सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, उधर आते है और दूर से भगवान के दर्शन कर हाथी से नीचे उतर कर प्रभु के चरणो मे पहुँचे और उनकी पर्युपासना करने लगे ।

गजसुकुमाल पर देशना का प्रभाव

40– तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मं कहेइ । कण्हे पडिगए । तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं नवरं अम्मापियरो

तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण-वासुदेव, गजसुकुमाल कुमार तथा सम्पूर्ण धर्म सभा को उपदेश दिया, धर्मोपदेश श्रवण कर, कृष्ण महाराज चले गये । राजकुमार गजसुकुमाल भगवान अरिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर उनके चरणो मे निवेदन करने लगे । मुझे आप श्री का उपदेश श्रवण कर विरक्ति हो आई है ।

आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्जं जाव[A] वड्ढियकुले ।

मै माता पिता से पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त कर, आप श्री के चरणो मे दीक्षा ग्रहण करू गा । भगवान ने कहा– जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो किन्तु शुभ कार्य मे किंचित भी विलम्ब मत करो । प्रभु को वन्दन कर गजसुकुमाल कुमार अपने घर गये और मेघ कुमार की तरह ही अपनी विरक्ति की बात बताकर सयम के लिये आज्ञा माँगने लगे । माता पिता ने समझाया– तुम अभी अविवाहित हो अत पहले विवाह करलो, फिर सतति उत्पन्न होने पर अपना उत्तर-दायित्व उन पर डालकर दीक्षा ग्रहण करना उचित है ।

गजसुकुमाल उन्हे समझाने लगे । जीवन का कोई पता नही है आदि-आदि ।

कृष्ण की समझाइश

41– तए ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गयसुकुमालं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे निवेसेइ निवेसेत्ता एवं वयासी–तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया । तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे जाव[B] पव्वयाहि । अहण्णं तुमे बारवईए नयरीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि ।

तए णं से गयसुकुमाले कण्हेणं

जब कृष्ण-वासुदेव कोग जसुकुमाल की दीक्षा लेने के सकल्प के समाचार मिलते है तो वे जिधर गजसुकुमाल थे, उधर आते है । आकर गजसुकुमाल का आलिगन करके-गले लगाते है और गोद मे बिठाकर कहने लगते है—

हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर लघु भ्राता हो । अत इस समय तुम अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का विचार छोड दो । मै तुम्हे बहुत बडे समारोह के साथ राज्याभिषेक करा दू गा, अर्थात् द्वारिका नगरी का राजा बना दू गा ।

वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

42– तए णं से गयसुकुमाले कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–

एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया काम[A] खेला सवा जाव[B] विप्पजहियव्वा भविस्संति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव[C] पव्वइत्तए ।

कृष्ण-वासुदेव के इस प्रकार कहने पर कुछ समयानान्तर गजसुकुमाल कुमार कृष्ण-वासुदेव के दो-तीन वार इस प्रकार कहने पर माता पिता को इस प्रकार कहने लगे–हे देवानुप्रियो ! मनुष्य का आधारभूत यह शरीर कफ-मल-मूत्र आदि का घर है, जिसे एक न एक दिन छोडना ही पडेगा । इसलिये मेरी हार्दिक इच्छा है कि, मुझे दीक्षा की आज्ञा दे, मै अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा ग्रहण कर प्रव्रजित हो जाऊँ । गजसुकुमाल ने अपने विचारो को दो-तीन वार दोहराया ।

राज्य पद से अनगार पद पर

43– तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएन्ति वहुयाहि अणुलोमाहिं जाव[A] आघवित्तए ताहे अकामाइं चेव गयसुकुमाल कुमार एवं वयासी– त इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए ।

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्ह वासुदेव अम्मापियरं च अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ । जाव[B] संजमेइ ।

तए णं से गयमुकुमाले अणगारे जाए ईरियासमिए जाव[C] गुत्तवंभयारी इणमेव निग्गंथ पवयण पुरओ काउं विहरइ ।

गजसुकुमाल के विचारो को सुनकर कृष्ण-वासुदेव और माता पिता उन्हे अनुकूल-प्रतिकूल वातो द्वारा समझाने लगे । लेकिन गजसुकुमाल अपने विचारो पर अडिग रहे । तव उन्होने कहा–हे पुत्र ! हम तुम्हे राजसिहासन पर विराजमान देखना चाहते है । अधिक नही तो कम से कम एक दिन तो राज्य श्री की शोभा वढा दो । यह वात सुनकर गजसुकुमाल मौन हो गये । तो मौन को स्वीकृति मानकर महावल कुमार की तरह इनका भी विशाल समारोह के साथ राज्याभिषेक कर दिया गया और गजसुकुमाल के आदेश पर दीक्षा सामग्री एकत्रित की गई, तव गजसुकुमाल कुमार ने दीक्षा ग्रहण कर ली । गजसुकुमाल अनगार इर्यासमिति आदि पाँच समिति, तीन गुप्ति का पालन कर, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी वन गये ।

महा–प्रतिमा ग्रहण

44– तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तएणं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव^A दो वि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

तदनन्तर गजसुकुमाल अनगार जिस दिन प्रवजित हुए थे, उसी दिन सायकाल के समय अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे पहुँचते है, पहुँचकर तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करते है, करके वन्दन-नमस्कार करते है, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

हे भगवन् ! मेरी इच्छा है, आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार कर विचरण करना चाहता हूँ ।

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कहा-जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो, परन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो । तद्नन्तर गजसुकुमाल अनगार, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से आज्ञा प्राप्त हो जाने पर, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार करते है । वन्दन-नमस्कार करके, अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास से सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलते है, निकलकर जिधर महाकाल श्मशान था, उधर आते है, आकर के स्थडिल भूमि को प्रतिलेखना करते है, प्रतिलेखना कर मलोत्सर्ग एव लघुशका निवृत्ति वाली भूमि का प्रतिलेखन करते है, प्रतिलेखन करके, कुछ झुके हुए शरीर से, दोनो पावो को सकुचित करके, एक रात्र की महाप्रतिमा को धारण करके आत्मध्यान मे विचरण करने लगते है ।

सोमिल द्वारा प्रदत्त उपसर्ग में अडिगता

45– इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईए नयरीग्रो वहिया पुव्वणिग्गए। समिहाग्रो य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं य गेण्हइ गेण्हित्ता तग्रो पडिणियत्तइ पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स ग्रदूरसामंतेणं वीईवय–माणे–वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरल मणुस्संसि गयसुकुमालं ग्रणगारं पासइ पासित्ता तं वेरं सरइ सरित्ता ग्रासुरुत्ते रूट्ठे कुविए चंडिविकए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

इधर सोमिल ब्राह्मण पहले ही हवन के निमित्त सूखी लकडियाँ लाने के लिये नगरी से बाहर गया हुग्रा था। जब वह दर्भ-कुश-पत्ते लेकर पुन लौट रहा था। उस समय महाकाल श्मशान के पास से जाते हुए उसने ध्यानस्थ गजसुकुमाल ग्रनगार को देखा, देखते ही उसके मन मे वैर जागृत हो उठा ग्रौर ग्रत्यन्त रुष्ट होकर, कुपित होकर, क्रोध मे तमतमाता हुग्रा इस प्रकार कहने लगा—

एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे ग्रपत्थिय जाव[A] परिवज्जिए, जे णं मम धूयं मोमसिरीए भारियाए ग्रत्तयं सोमं दारियं ग्रदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहित्ता मुण्डे जाव[B] पव्वइए। त सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एवं संपेहेइ संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले ग्रणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स ग्रणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं

ग्रो हो ! श्री ग्रौर लज्जा से हीन, मृत्यु को चाहने वाला, यह वही गजसुकुमाल है, जो किसी भी दोष से रहित, विवाह योग्य मेरी ग्रात्मजा सोमा नामक वालिका को छोडकर प्रव्रजित हो गया। मुझे गजसुकुमाल कुमार से वैर का वदला लेना है, ऐसा विचार कर, वह दिशा प्रतिलेखन करता है, चारो ग्रोर देखता है, देखकर गीली मिट्टी ग्रहण करता है। ग्रहण करके जिधर गजसुकुमाल ग्रनगार थे, वहाँ ग्राता है, ग्राकर के गजसुकुमाल कुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाली वाँधता है, वाँधकर जलती हुई चिता से, खिले हुए पलाश के फूल के समान लाल-लाल खैर नामक लकडी के ग्रगारो को ठीकरे से ग्रहण करता है। ग्रहण करके गजसुकुमाल कुमार ग्रनगार के मस्तक के

बंधइ बंधित्ता जलतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं गेण्हइ गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ पक्खिवित्ता भीए तसिए उव्विगे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

ऊपर डाल देता है, डालकर भयभीत, त्रसित-उद्विग्न होता हुआ ही वहा से भाग जाता है और जिस दिशा से आया था उसी दिशा मे चला जाता है।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला जाव[A] दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव[B] दुरहियासं वेयणं अहियासेइ।

तदनन्तर गजसुकुमाल अनगार के शरीर मे अत्यधिक दु खमयी, यावत् अत्यन्त असाध्य वेदना उत्पन्न होती है। तब भी गजसुकुमाल अनगार सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष नही करते हुए उस तीव्र वेदना को सहन करते है।

एक ही दिन मे सिद्धत्व प्राप्ति

46– तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव[C] केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे जाव[D] प्पहीणे। तत्थ णं अहासंनिहिएहिं देवेहिं

इस प्रकार की तीव्र वेदना के सहन करने से गजसुकुमाल अनगार के शुभ परिणाम और प्रशस्त अध्यवसाय के कारण, अतीव गुणो के घातक, ज्ञानावरणीयादि कर्मो को नष्ट करने वाले अपूर्वकरण मे प्रवेश करते है। जिसका अन्त नही ऐसे अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर लिया। तद्नन्तर आयुकर्म क्षीण हो जाने पर सिद्ध, यावत् सभी दु खो से रहित हो गये। गजसुकुमाल अनगार के मुक्त होने पर समीपवर्ती देवो ने चरित्र की सम्यक् आराधना की है, ऐसा कहकर वैक्रियमयी,

सम्मं ग्राराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णेकुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे कए, दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सुगधित जल की वृष्टि की, पॉच प्रकार के फूल वरसाये, वस्त्रो की वर्षा की, दिव्य गीत एव मृदगो की ग्रावाज से ग्राकाश गु जा दिया।

कृष्ण द्वारा वृद्ध की सहायता

47– तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव[A] ण्हाए जाव[B] विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्ल दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहि महयाभड–चडगर–पहकरवंद–परिक्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव ग्ररहा ग्ररिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं जुण्णं जरा-जज्जरिय-देहं जाव[C] किलंतं महइमहालयाग्रो इट्टगरासीग्रो एगमेगं इट्टगं गहाय वहिया रत्थापहाग्रो ग्रंतोगिहं ग्रणुप्पविसमाणं पासइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स ग्रणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ गेण्हित्ता वहिया रत्थापहाग्रो ग्रंतोघरंसि ग्रणुप्पवेसिए।

तदनन्तर दूसरे दिन कृष्ण-वासुदेव ने प्रात सूर्य-उदित हो जाने पर स्नान किया, वस्त्रादि ग्राभूषणो मे ग्रपने शरीर को ग्रलकृत किया ग्रौर श्रेष्ठ हस्तिस्कध पर बैठकर कोरण्ट नामक फूलो की मालाग्रो से युक्त छत्र धारण कर, श्वेत चवर ढुलाए जाते हुए, महान योद्धाग्रो के समूह से परिवृत्त, जिधर ग्रर्हन्त ग्ररिष्टनेमी भगवान विराजमान थे, उधर जाने का निश्चय किया। ग्रपने इसी विचारानुसार कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मार्ग से निकलते हुए, एक पुरुप को देखते है। वृद्धावस्था के कारण जिसका शरीर जर्जरित हो रहा था, ग्रत्यधिक परिश्रम से जिसका मु ह मुर्झाया हुग्रा था, ऐसा वृद्ध वाह्य प्रदेश मे स्थित विशाल ईंटो के ढेर से एक-एक ईट को उठाकर घर के ग्रन्दर रख रहा था। ऐसा देखकर कृष्ण-वासुदेव उस पुरुप पर ग्रनुकपा कर हस्ति-स्कध पर वैठे हुए, एक ईट को उठाते है ग्रौर घर के ग्रन्दर रख देते है।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससहेहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

कृष्ण-वासुदेव के ऐसा करने पर अन्य सैकडो पुरुषो ने भी वहा से ईंटे उठाकर ईंटो की राशि को बाहर से घरके अन्दर रख दिया।

गजसुकुमाल दर्शन के इच्छुक—श्री कृष्ण

48— तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए उवागच्छित्ता जाव[A] वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे एवं वयासी—

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य मार्ग से निकलते है, निकलकर जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, उधर आते हैं, आकर के वन्दन-नमस्कार करते है, करके, इधर-उधर गजसुकुमाल अनगार की खोज करते है, खोज करने पर भी जब उन्हे नही देखा तो अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास आकर वन्दन-नमस्कार करते है, करके इस प्रकार बोले—

कहि णं भंते। से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जं णं अहं वंदामि नमंसामि ?

हे भगवन् ! मेरा वह सहोदर लघु-भ्राता गजसुकुमाल अनगार कहाँ है ? मै उन्हे वन्दन-नमस्कार करना चाहता हू।

प्रभु अरिष्टनेमि का श्रीकृष्ण को समझाना

49— तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे। तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—कहण्ण भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान, कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकारे बोले—हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने मोक्ष प्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध कर लिया है। तब कृष्ण-वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार बोले—गजसुकुमाल अनगार ने अपना प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध कर लिया ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा गयसुकुमालेणं अणगारे मम कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं जाव[B] उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ पासित्ता आसुरुत्ते जाव[C] सिद्धे। त एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान कृष्ण-वासुदेव को इस प्रकार बोले-हे कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने कल दिन के पिछले भाग मे मुझको वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके, इस प्रकार कहा–आपकी आज्ञा हो तो एक रात्रि की महाप्रतिमा ग्रहण करना चाहता हू। तद्नुसार आज्ञा प्राप्त कर, वह जगल मे गया। वहा एक पुरुष ने उन्हे ध्यानस्थ देखा, देखकर वह क्रुद्ध हुआ, यावत् गजसुकुमाल अनगार सर्व कर्म क्षय करके सिद्ध हुए।

50– तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी–

से के णं भंते! से पुरिसे अपत्थिय–पत्थिए जाव[A] परिवज्जिए, जे णं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ।

इस प्रकार हे कृष्ण! उन्होने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया। यह सुनकर श्री कृष्ण अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार बोले-मृत्यु को निमन्त्रण देकर बुलाने वाला, लज्जाहीन ऐसा कौन सा धृष्ट मनुष्य है, जिसने मेरे सहोदर-लघु भाई को अकाल मे ही काल-कवलित कर लिया।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी मा णं कण्हा! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि! एवं खलु कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

भगवान ने फरमाया–कृष्ण! तुम उस पर क्रोध मत करो, उसने तो गजसुकुमाल अनगार को अपने पापो का समूलत क्षय करने के लिये बहुत सहायता दी है। भगवन्! उस मनुष्य ने गजसुकुमाल अनगार को कैसे सहायता दी?

कहण्णं भते! तेणं पुरिसेणं

अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान बोले–

गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-से नूणं कण्हा । तुमं ममं पाय वंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नगरीए एगं पुरिसं जाव[B] अणुपवेसिए ।

जहा णं कण्हा ! तुम्मे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्म णिज्जरत्थं साहिज्जे दिण्णे ।

हे कृष्ण ! अभी तुम मुझे चरण-वन्दन करने के लिये आ रहे थे, तब द्वारिका नगरी के मध्य मे तुमने एक वृद्ध को ईंट उठाते देखा । जिसे देखकर तुम्हारा मन दयार्द्र हो उठा और तुमने एक ईंट उठाकर उस वृद्ध पुरुष की सहायता की, उसी प्रकार उस पुरुष ने भी गजसुकुमाल अनगार के अनेक भवगत सहस्र-लाखो जन्मो से सचित कर्मो की उदीरणा द्वारा बहुत से कर्मो की निर्जरा करने मे सहायता की ।

श्रीकृष्ण के समक्ष सोमिल की मृत्यु

51— तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—से णं भते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ तण्णं तुमं जाणिज्जासि "एस णं से पुरिसे" ।

तब कृष्ण वासुदेव ने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को इस प्रकार कहा—

भगवन् ! मै उस पुरुष को किस प्रकार जान सकता हू ।

तब अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण-वासुदेव से कहा—

कृष्ण ! यहा से चलने के अनन्तर जब तुम द्वारिका नगरी मे प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुष तुम्हे देख-कर भयभीत होगा और वहा गिर जायगा तथा आयु समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जायगा । उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है जिसने गजसुकुमाल अनगार को सहायता दी है ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं जाव[A] जलंते अयमेयारुवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पणे—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं पायवंदए निग्गए। तं नायमेयं अरहया विण्णायमेयं अरहया सुयमेयं अरहया, सिद्धमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खं सपडिदिसिं हव्वमागए।

भगवान अरिष्टनेमि से अपने प्रश्न का समाधान पाकर, प्रभु को वन्दन-नमस्कार करते है, करके श्री कृष्ण ने वहा से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्ती रत्न पर बैठकर घर की ओर जाने का निश्चय किया। श्री कृष्ण अपने निश्चयानुसार महलो की ओर आ रहे थे, उधर अगले दिन सूर्योदय के साथ ही सोमिल ब्राह्मण के मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि निश्चय ही सूर्योदय होने पर कृष्ण-वासुदेव अर्हन्त-अरिष्टनेमि भगवान के चरणो मे वन्दन-नमस्कार करने गये है। भगवान को सब ज्ञात है, विज्ञात है और किसी देव के द्वारा सुन भी लिया गया हो। यह निश्चित है कि वे कृष्ण-वासुदेव को सारा वृत्तान्त बता देगे। अपने छोटे भाई का हत्यारा जानकर मुझे कृष्ण-वासुदेव न जाने किस प्रकार मरवाएगे। इतना जानते ही सोमिल ब्राह्मण भयभीत हो उठा। त्रास और उद्वेग की अधिकता के कारण वह काँपने लगा, भय और उद्वेग से व्याकुल हुआ सोमिल ब्राह्मण घर से भागने के लिये निकल पडा। उधर द्वारिका नगरी मे प्रवेश करते हुए कृष्ण-वासुदेव उनके सामने आ गये। इस प्रकार सोमिल ब्राह्मण और कृष्ण का अचानक ही परस्पर सामना हो गया।

सोमिल के शव पर श्रीकृष्ण का क्रोध

52– तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए ठियए चेव ठिइमेएणं कालं करेइ, धरणितलंसि सव्वंगेहि "धस" त्ति सण्णिवडिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ पासित्ता एवं वयासी—

सोमिल ब्राह्मण अचानक श्री कृष्ण को अपने सामने देखकर भय के मारे घबरा उठा, उसका हृदय धडकने लगा। अधिक भय के कारण आयुष्य की भी समाप्ति होने से उसका शरीर धडाम से भूमि पर गिर पडा।

"एस णं भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव[A] परिवज्जिए जेणं ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गजसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहि कड्ढावेइ कड्ढावेत्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

भूमितल पर गिरे सोमिल ब्राह्मण को देखकर श्री कृष्ण ने अपने साथियो को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भद्र पुरुषो! सामने भूमि तल पर पडा हुआ, मृत्यु का प्रार्थी, श्री एव लज्जा से विहीन, यह वही सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे सहोदर-लघु भ्राता गजसुकुमाल अनगार का अकाल मे ही प्राणापहरण किया है। ऐसा कहने के पश्चात् श्री कृष्ण ने (पाणै-चाण्डालै) चाण्डालो द्वारा सोमिल ब्राह्मण के पैरो को रस्सी से बँधवाकर घसीटवाते हुए नगरी के बाहर फिकवा देते है। यह सब कुछ करने के अनन्तर सोमिल ब्राह्मण का जहा शव पडा था, उस स्थान को जल से साफ करवाते है, तदनन्तर अपने महलो मे चले जाते है।

53– एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[B] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह सार प्रतिपादित किया है।

9वाँ अध्ययन

54— नवमस्स उक्खेवओ[A] ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेण तेणं समएणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया जहा पढमाए जाव[B] विहरइ । तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था वण्णओ[C] । तस्स ण बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था । वण्णओ[D] । तए णं सा धारिणी देवी सीहं सुविणे जहा गोयमे नंवर वीसं वासाइं परियाओ ।

सेसं त चेव सत्तुंजे सिद्धे ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेण अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि ।

नवम्-अध्ययन का उत्क्षेप-पहले की तरह जान लेना चाहिये ।

आर्य सुधर्मा स्वामी, आर्य जम्बू स्वामी से कहने लगे-हे जम्बू ! उस समय द्वारिका नगरी मे महाराज श्री कृष्ण, यावत् सुखपूर्वक विचरण करते थे । उस समय बलदेव नामक राजा के धारिणी नामक देवी थी । वह धारणी देवी सिह स्वप्न को देखकर गर्भ धारण करती है और समय पर पुत्र रत्न को जन्म देती है । गौतम कुमार की भाँति बालक का जन्मोत्सव आदि मनाया गया । पुत्र का नाम सुमुखकुमार रखा गया । युवावस्था आने पर पचास-पचास कन्याओ के साथ उसका विवाह कर दिया गया । पचास-पचास प्रकार का प्रीतिदान प्राप्त हुआ । वैराग्य आने पर साधु जीवन अगीकार कर लेते है । चौदह पूर्वो का अध्ययन करते है । वीस वर्प पर्यन्त सयम पर्याय का पालन करते है । अन्त मे शत्रु जय नामक पर्वत पर सिद्धि प्राप्त करते है ।

10–13 अध्ययन

55— एवं दुम्मुहे वि । कूवए वि तिण्णि वि बलदेव-धारिणी सुया ।

दारए वि एवं चेव, नवरं-वसुदेव धारिणी-सुए ।

एवं अणाहिट्ठी वि वसुदेव धारिणी सुए । एवं खलु जंबू !

इसी प्रकार द्विमुख और कूपदारुक कुमार का वर्णन भी जान लेना चाहिये । सुमुख और कूपदारुक ये तीनो राजा बलदेव एव धारिणी के आतमज थे । इसी प्रकार दारुक कुमार के विपय मे भी जानना चाहिये । विशेपता इतनी है कि इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था । दारुक कुमार के भाई अनाहष्टि कुमार के

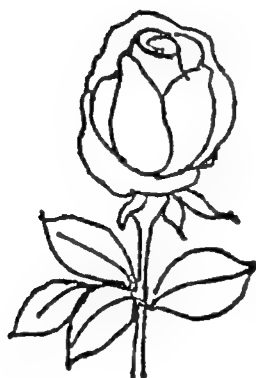
समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

।। तईओ वग्गो सम्मत्तो ।।

जीवन का भी ऐसा ही वर्णन जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह वसुदेव राजा और धारिणी रानी का पुत्र था ।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने आर्य जम्बू स्वामी को सबोधित करते हुए कहा—हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष प्राप्त, यावत् श्रमण भगवान महावीर ने आठवे अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययनो का सार प्रतिपादित किया है ।

।। तृतीय वर्ग समाप्त ।।



तृतीय वर्ग—जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — 'चउद्दसपुव्वाइ'-चौदह पूर्व क्या है ?

समाधान — चौदह पूर्वो का वर्णन इस प्रकार है—

उत्पादपूर्व—इस पूर्व मे सभी द्रव्य, सभी पर्यायो के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गयी है ।

अग्रायणीपूर्व—इसमे सभी द्रव्यो, सभी पर्यायो श्रौर जीवो के परिमाण का वर्णन है ।

वीर्य-प्रवादपूर्व—इसमे कर्म सहित श्रौर बिना कर्म वाले जीवो तथा श्रजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है ।

अस्ति-नास्ति-प्रवादपूर्व—ससार मे धर्मास्तिकाय श्रादि जो वस्तुएँ विद्यमान है तथा श्राकाश-कुसुम श्रादि जो श्रविद्यमान है, उन सबका वर्णन इस पूर्व मे है ।

ज्ञान-प्रवादपूर्व—इसमे मतिज्ञान श्रादि पञ्चविधज्ञानो का विस्तृत वर्णन है ।

सत्य-प्रवादपूर्व—इसमे सत्य रूप सयम का या सत्य वचन का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

आत्म-प्रवादपूर्व—इसमे श्रनेक नय तथा मतो की श्रपेक्षा से श्रात्मा का वर्णन है ।

कर्म-प्रवादपूर्व—इसमे श्राठ कर्मो का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, श्रनुभाग श्रौर प्रदेश श्रादि भेदो द्वारा विस्तृत रूप मे दिया गया है ।

प्रत्याख्यान-प्रवादपूर्व—इसमे प्रत्याख्यानो का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन है ।

विद्यानुवाद-पूर्व—इस पूर्व मे विविध प्रकार की विद्याश्रो तथा सिद्धियो का वर्णन है ।

अवन्ध्यपूर्व—इसमे ज्ञान, तप, सयम श्रादि शुभ फल वाले तथा प्रमाद श्रादि श्रशुभ फल वाले, निष्फल न जाने वाले कार्यो का वर्णन है ।

प्राणायुष्य-प्रवादपूर्व—इसमे दस प्राण श्रौर वायु श्रादि का भेद-प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन हे ।

क्रिया-विशालपूर्व—इसमे कायिकी, श्रधिकरणिकी श्रादि तथा सयम के उपकारक क्रियाश्रो का वर्णन है ।

लोक-बिन्दुसारपूर्व—ससार मे श्रुतज्ञान मे जो शास्त्र, बिन्दू की तरह सबसे श्रेष्ठ है, वह लोक बिन्दुसार है ।

जिज्ञासा —"सिह केसर मोदक" किसे कहते है ?

समाधान —'सिह केसरमोयगाण' का श्रर्थ है– सिह केसर नामक मोदक । गुजराती कोष शब्द सग्रह के पृष्ठ ७८१ पर मोदक का श्रर्थ इस प्रकार किया है— "सिंह केशर पुं (सिंह केशर) सिंह नी केवी बुन्दीना बनावेल लाडवा सिंह केशरिया लाडवा" श्रर्थात् शेर की गर्दन के बालो के समान बारीक दानो से निर्मित मोदक को 'सिह केसर मोदक' कहते है ।

"सीह केसराणा मोयगाण"–सिह केसराणा मोदकाना। चतुरशीति-विशिष्ट-वस्तु विनिर्मितामोदका सिह केसर मोदका उच्यन्ते। अर्थात् जिन लड्डुओ मे ८४ प्रकार की विशिष्ट वस्तुएँ प्रक्षिप्त की जाती है उसे सिह केसर मोदक कहते है। कहने का तात्पर्य यह है कि "सिह केसर मोदक" अत्यन्त गरिष्ट एव अत्यधिक ताकतवर होता है।

जिज्ञासा —सुलसा गाथापत्नी ने देव की अर्चना की तो आज देव-पूजा के लिये निषेध क्यो किया जाता है ?

समाधान —सासारिक पर्याय मे रहने वाले प्राणी के मन मे सासारिक अन्यान्य भावनाओ के साथ सतान की भावना भी वलवती होती है। सुलसा गाथापत्नी की जव वाल्यावस्था थी तभी उसे किसो ज्योतिषो ने कहा कि तुम मृतवन्ध्या होगी। ये शव्द सुलसा के मानस पटल पर स्थायो रूप मे वन चुके थे। इसी भावना से वह सदा अनुप्राणित रहती थी। मन मे कई तरह के सकल्प-विकल्प भी आया करते थे–यह मेरे जीवन के लिये एक कलक का रूप है, जो कि नही रहना चाहिये। इसको दूर करने के लिये वह अनेक तरह के प्रयत्न करती थी।

जव उसे कोई अन्य विशेष उपाय परिलक्षित नही हुआ, तव उसे सहसा स्मृति मे आया कि मैं हरिणैगमेषी देव की भक्ति करू। व्यक्ति जव विशिष्ट ज्ञान से सपन्न होता है तव तो उसको भक्ति का रूप भी पाप प्रवृत्ति से रहित दिखता है। पर विशिष्ट ज्ञान के अभाव मे मन-कल्पित भक्ति का रूप भी वना लिया जाता है। सुलसा भी उसी भावना से हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा वनाकर, उसको आराधित करने की प्रक्रिया करने लगी। उसकी यह प्रवृत्ति भावावेश का परिणाम था। सामान्य आत्मा भावावेश मे आकर इच्छानुसार कल्पित कल्पना से कार्य करने लगतो है। देव का वैक्रिय शरीर होता है। औदारिक शरीर की उपमा भी उसके योग्य नही रहती, तो उसको निर्जीव प्रतिमा वनाना कैसे योग्य रह सकता है ? यह तो सुज्ञ सहज ही समझ सकता है। देव उन अयोग्य साधनो को देखकर के आकर्षित होता है तो भक्ति करने वाले के भावो को भी समझकर आकर्षित होता है। क्योकि भावो का सवन्ध भावो के साथ जुडता है, भाव शुन्य द्रव्य के साथ नही। सुलसा को सतान की जितनी लालसा नही थी, उतनी मृत-वन्ध्या के कलक को मिटाने की थो। उस कलक को परिमार्जित करने के लिये वह देव की भक्ति मे इतनी दत्तचित्त वन गई कि जिससे आर्त्तध्यान का रूप, तीव्रता को धारण कर चुका था। और उस आर्त्त की भावना हरिणैगमेषी देव तक पहुँचो, तो उस देव ने देखा कि यह नारी अपने कलक के लिये अति दु खित है। दु खी आत्मा पर अनुकपा करना सम्यक्दृष्टि का लक्षण है। इसी प्रसग ने उसने अपने ज्ञान के माध्यम ने देवकी महारानी की कुक्षि मे जन्म लेने वाली दिव्य आत्माओ का भी ध्यान लगाया

और उनकी भी अनुकपा आवश्यक समझो, तव देव ने सुलसा को दर्शन दिये और उसके आर्त्त को शमित करने के लिये कहा कि मै इसके लिये प्रयत्न करु गा, जिससे तुम्हारा यह कलक समाप्त हो जाय। तद्नुसार उस देव ने शास्त्र मे वर्णित प्रक्रिया पूरी की और अनुकपा का आदर्श उपस्थित किया।

जिज्ञासुओ के लिये यह ध्यातव्य है कि चरित्तानुदेव मे अनेक प्रकार के प्रसग उपस्थित होते है, वे सभी प्रसग ग्रहण करने योग्य नही होते। जो प्रसग रत्नत्रय की अभिद्धि मे सहायक हो वे प्रसग स्वय के लिए एव अन्य के लिए उपादेय होते है।

रत्नत्रय की अभिवृद्धि रूप प्रसगो का कथन अन्यो के रत्नत्रय की अभिवृद्धि मे भी करना चाहिए। साधारण व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला इस प्रकार का मन कल्पित भक्ति का रूप तथा हिंसादिक साधनो मे प्रवृत्ति आदि सावद्य प्रक्रियाओ का कथन उपादेय रूप से नही लेना चाहिए।

इसी सदर्भ मे सुलसा के चरितानुवाद को ध्यान मे लेने पर उपर्युक्त प्रसग का अवकाश ही नही रहता।

जिज्ञासा —श्रीकृष्ण-वासुदेव ने अनुकपा करके वृद्ध की सहायता के लिये एक ईट उठाकर भीतर रख दी। लेकिन प्रभु या साधु ईट उठाने की आज्ञा नही देते, अत कृष्ण की यह अनुकपा सावद्य हुई। क्या यह मानना सत्य है ?

समाधान —अनुकपा परिणामो मे आती है और ईट उठाने की क्रिया शरीर द्वारा होती हे। ईट उठाने की क्रिया भिन्न है और अनुकपा भिन्न है। ईट उठाने की क्रिया से अनुकपा सावद्य नही हो सकती। यदि ईट उठाने की क्रिया से अनुकपा सावद्य हो जाय तो जब भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन के लिये श्री कृष्ण-वासुदेव चतुरगिणी सेना सजाकर गए थे, तब भगवान का दर्शन भी सावद्य हो जाना चाहिये। क्योकि भगवान या साधु सेना सजाने के लिये आज्ञा नही देते। लेकिन इस प्रसग मे तो यही कहा जाता है कि सेना सजाना भिन्न कार्य है। अत सेना सजाने के कारण प्रभु वन्दना सावद्य नही हो जाती। ठीक इसी प्रकार यह भी समझना चाहिये कि वृद्ध के प्रति किये अनुकपापूर्ण प्रशस्त विचार भिन्न है और ईट उठाने रूप क्रिया भिन्न है। ईट उठाने रूप क्रिया से अनुकम्पा कभी सावद्य नही होती। भगवान एव साधु ईट उठाने की आज्ञा नही देते, परन्तु अनुकम्पा को अच्छी वताते है और अनुकम्पा करने की आज्ञा देते है। अत ईट उठाने की क्रिया का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य कहना मिथ्या है।

जिज्ञासा —अरिष्टनेमि प्रभु ने गजसुकुमाल अनगार की अनुकपा नही की और न ही उनकी रक्षा के लिये साथ मे कोई साधु भेजे, अत अनुकपा करना पाप है। इस प्रकार की मान्यता क्या सत्य है ?

समाधान -गजसुकुमाल अनगार जिस दिन दीक्षित हुए थे, उसी दिन बारहवी महाभिक्षु प्रतिमा अगीकार करके श्मशान जाकर ध्यान धर कर खडे रहने की, प्रभु अरिष्टनेमि से आज्ञा मागी थी ।

ग्यारहवी भिक्षुप्रतिमा का विधिवत् पालन करने के अनतर बारहवी भिक्षुप्रतिमा अगीकार की जाती है । इसका समय केवल एक रात्रि का होता है । इसकी आराधना बेले के अनन्तर चौविहार-तेला करके किया जाता है । इसके आराधक ग्रामादि से बाहर जाकर, शरीर को इषत्, कुछ आगे की ओर झुकाकर, एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए, अनिमेष नेत्रो से निश्चलता पूर्वक, सब इन्द्रियो को गुप्त रखकर, दोनो पैरो को सकुचित कर, हाथो को घुटनो तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना होता है । कायोत्सर्ग मे देव, मनुष्य, तिर्यंच सम्बन्धी किसी भी प्रकार से उत्पन्न परिषहो को दृढता से सहन करना होता है । मलमूत्र की आशका होने पर प्रतिलेखित भूमि पर उसे विसर्जन कर पुन आकर कायोत्सर्ग करना होता है । इस प्रतिमा की सम्यक् प्रकार से आराधना होने पर साधक को निश्चित रूप से अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान या केवलज्ञान मे से किसी एक ज्ञान की प्राप्ति होती है । लेकिन देवादि उपसर्गो के सम्यक् प्रकार से सहन न करने पर पागलपन या दीर्घकाल तक रहने वाला रोग या केवली धर्म से साधक गिर जाता है । यह साधना कम से कम २९ वर्ष की अवस्था वाला, लगभग १० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला ही कर सकता है और अष्टम् भक्त-तेला भी होना चाहिये । लेकिन गजसुकुमाल अनगार न तो २९ वर्ष के थे, न ही १० वर्ष की दीक्षा पर्याय थी और न ही तेले का तप ही था । फिर भी भगवान ने गजसुकुमाल अनगार को योग्यता एव उसी प्रकार से होने वाला उनका मोक्ष जानकर उन्हे बारहवी भिक्षु प्रतिमा साधने की आज्ञा दे दी ।

दूसरी बात चरम शरीरी जीव होने से गजसुकुमाल अनगार का आयुष्य अनप्रवर्तनीय था । जो कि उपक्रम लगने पर भी बिना आयु की समाप्ति के समाप्त नही हो सकता । गजसुकुमाल अनगार अपने आयुष्य के पूर्ण क्षय होने पर ही मोक्ष मे गये थे । उनका आयुष्य मध्य मे टूटा नही था ।

भगवान सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने के कारण उन्होने अपने ज्ञान मे जैसा देखा वैसा किया । अत कहना मिथ्या है कि अरिष्टनेमि भगवान ने गजसुकुमाल अनगार की रक्षा नही की, क्योकि भगवान तो जानते थे कि इनका इसी प्रकार कल्याण होने वाला है, अत उन्होने महाभिक्षु प्रतिमा की पूर्व विधि न होने पर भी उन्हे आज्ञा दे दी थी ।

दूसरी बात सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कल्पनातीत होते है । अत वे अपने ज्ञान मे जैसा देखते है, वैसा करते है । किन्तु सूत्र व्यवहारी साधक के लिये तो सूत्रानुसार बताई गई विधि के अनुसार ही

आचरण करना चाहिये ।

गजसुकुमाल मुनि थे और उनकी रक्षा के लिये सतो को नही भेजा, इसलिये अनुकपा करना पाप है, यह मान्यता शास्त्रीय दृष्टि से भी विपरीत पडती है । क्योकि इस हेतु से यह तात्पर्य निकलता है कि साधु की रक्षा भी नही करनी चाहिये, क्योकि भगवान अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल अनगार की रक्षा के लिये सतो को नही भेजा । किन्तु विचारणीय विपय यह है कि यदि सत जीवन की रक्षा करना भी पाप है तो फिर भगवान ने साधु जीवन की रक्षा हेतु आहार-पानी की विधियाँ क्यो बतलाई ? जब कि ग्लान साधु की सेवा करना उनकी रक्षा करना है । इस प्रकार साधु की सेवा का उपदेश क्यो दिया ? गृहस्थ जो आहार-पानी साधु को देता है, वह साधु की रक्षा के लिये देता है । जिसके लिये भगवान की आज्ञा है । इस उपरोक्त मान्यता के अनुसार तो साधु-साध्वियो को आहार-पानी भी नही देना चाहिये, न ही उनकी सुरक्षा के लिये कोई साधन ही जुटाना चाहिये । रुग्ण एव ग्लान साधु-साध्वियो की, अन्य साधु-साध्वियो की सेवा भी नही करना चाहिये, क्योकि इससे साधु-साध्वियो की रक्षा होगी । इस कल्पित सिद्धान्तानुसार, कि अनुकपा मे पाप है, इसलिये प्रभु अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल की रक्षा के लिये कोई साधु नही भेजे, तो साधु-साध्वी की रक्षा मे भी पाप ही होगा । पर वस्तुत ऐसा नही है । साधु की रक्षा करना महा-धर्म है, अन्य प्राणियो की अनुकपा भाव से रक्षा करना सम्यक्दृष्टि भाव का पोषण है ।

जिज्ञासा —हरिणैगमेपी देव ने सुलसा पर अनुकपा करके सुलसा के मृत पुत्रो को देवकी के यहाँ और देवकी के पुत्रो को सुलसा के यहाँ पहुँचाया । इस प्रकार की क्रिया करने से हरिणैगमेपी देव की अनुकपा सावद्य थी । क्या ऐसा मानना सत्य है ?

समाधान —आने-जाने की क्रिया से सुलसा पर की गई हरिणैगमेपी देव की अनुकपा सावद्य नही है । जैसे कि चतुरगिणी सेना सजाकर प्रभु के दर्शन करने जाने से दर्शन सावद्य नही है ।

आने-जाने की क्रिया अलग है और अनुकपा भिन्न है । हरिणैगमेपी देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दु ख की निवृत्ति की तथा बालको पर अनुकम्पा करके उनके प्राण भी बचाए थे । इस अनुकपा का फल यह हुआ कि वे छहो कस के भय से बच गये तथा हरिणैगमेपी देव को अभयदान का फल भी मिला । अत हरिणैगमेपी देव की अनुकपा को सावद्य नही कहा जा सकता ।

जिज्ञासा —'नल कूब्बर समाणा' का अर्थ 'वैश्रमण देव के पुत्र समान' लिया जाता है । लेकिन (वैश्रमण) देव के तो पुत्र होते नही फिर यह कैसे कहा गया ?

समाधान —यह सत्य है कि देव के कोई पुत्र नही होता। अत नलकूबर के भी कोई पुत्र नही था। 'नलकुव्वर समाणा' से नलकूबर का पुत्र अर्थ लेना उपमा से ही यौक्तिक हो सकता है। उपमा एक देशीय होती है। वैसे भी नलकूबर (वैश्रमण) देव की सुन्दरता प्रसिद्ध है। रथनेमि को फटकारते हुए राजमति ने भी कहा है कि यदि तुम वैश्रमण देव के समान रूपवान भी हो तो भी मै तुम्हे नही चाहती। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि नलकूवर देव ने कभी प्रसग वश वैक्रिय पुद्गलो से अत्यन्त सुन्दर पुरुष को विकुर्वित किया हो। जिसे देखकर यह उपमा दी जाती है। इस विशेषण से छ अनगारो के रूप की उत्कृष्टता का ही वर्णन किया है।

जिज्ञासा —छ अनगारो के लिये 'सरिसव्वया' एक समान उम्र वाले विशेषण कैसे दिया गया, क्योकि सभी का जन्म तो एक साथ नही हुआ था ?

समाधान —छ अनगारो के लिये दिये गये विशेषण व्यावहारिक प्रतीति की अपेक्षा से दिये गये हो, ऐसा प्रतीत होता है। 'सरिसव्वया' विशेषण के पूर्व 'सरिसया और सरित्तया' अर्थात् समान थे, समान त्वचा वाले थे, ये विशेषण भी लगाये गये है। 'सरिसव्वया' के अनतर "विलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासा" विशेषण भी लगाया गया है। जिसका अर्थ होता है—उन छहो अनगारो का वर्ण भैस के सीग के अन्दर का भाग, गुलिका नामक रग तथा अलसी के फूल के समान प्रकाश युक्त था। छहो अनगारो का जन्म एक साथ नही हुआ था, अत उनकी आयु भी एक समान नही हो सकती है और न ही वे एक समान ही हो सकते है। उनकी त्वचा, आयु की तारतम्यता के कारण एक समान नही हो सकती और न ही वर्ण भी एक समान हो सकता है। तथापि इन विशेषणो को देने का तात्पर्य यह हो सकता है कि आयु, वर्ण, त्वचा आदि मे किंचित तारतम्यता होते हुए भी वह लोगो को प्रतीत नही होती थी। उन्हे तो छहो अनगार एक समान ही लगते थे।

दूसरी वात यह है—"वाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति" मुख्यता की अपेक्षा से कथन होता है। जिस वगीचे मे ९० आम्र के और १० नीम के वृक्ष है तो वह वगीचा आम्र वगीचा ही कहलायेगा, नीम का नही। ठीक इसी प्रकार छहो अनगारो मे आशिक तारतम्यता होते हुए भी, तथा वह भी प्रतीति मे न आने से, उसकी विवक्षा नही की गई है।

जिज्ञासा :—छ अनगारो को देखकर देवकी महारानी को यह स्मृति हो आई थी कि "अतिमुक्त कुमार नामक अनगार ने मुझे यह कहा था—तुम एक समान आठ पुत्रो को जन्म दोगी—ऐसे पुत्रो को इस पूरे भरतक्षेत्र मे कोई भी माता जन्म नही दे पायेगी।" इसी वात का स्पष्टीकरण प्रभु अरिष्टनेमि ने भी किया था। लेकिन जव आर्त्तध्यान करती हुई देवकी

को कृष्ण-वासुदेव ने यह ग्राश्वासन दिया कि मै ऐसा प्रयास करूगा कि मेरे एक भाई ग्रौर हो, तदनुसार उन्होने तेले की ग्राराधना कर देव से वृत्तान्त श्रवण कर ग्रपनी माता देवकी को भी सुनाया, लेकिन यह सब करने की ग्रावश्यकता क्या थी ? देवकी को तो यह मालूम था कि मेरे ग्राठ पुत्र होगे जिसमे से सात पुत्र तो हो चुके है, एक ग्रौर होने वाला है।

समाधान —देवकी महारानी को छ ग्रनगारो को देखकर ग्रतिमुक्तक ग्रनगार के वचनो की स्मृति ग्रा गई थी। लेकिन जब वह प्रभु चरणो मे पहुँच कर, शका का समाधान पाती है ग्रौर ग्रपने छहो पुत्र साधको को देखती है तो उसके मन मे इतना ग्रधिक वात्सल्य भाव जाग्रत हो उठता है कि उसके स्तनो से दूध फूट पडता हे। नैत्र ग्रानन्दाश्रुग्रो से ग्रार्द्र हो जाते है। हर्ष की ग्रधिकता से कचूकी के वन्धन टूट जाते हे। ग्रत्यधिक हर्ष से शरीर के फूल जाने से ककरण तग हो जाते हे। इसी उल्लास के साथ जब देवकी महारानी महलो मे पहुँचती है तो उसके विचारो मे एक विलक्षरण मोड ग्राता है ग्रौर ग्रार्त्तध्यान करने लगती है, कि मैं कैसी पुण्यहीना हूँ कि ऐसे श्रेष्ठ सात-सात पुत्रो को जन्म देकर एक भी पुत्र के लालन–पालन का ग्रानन्द ग्रौर तज्जनित कर्त्तव्य नही निभा पाई। ग्रौर यह कृष्ण-वासुदेव भी छ महीने मे एक बार वन्दन करने के लिये ग्राता है। इस प्रकार के विचारो के साथ वह ग्रार्त्तध्यान मे इतनी ग्रधिक ग्राकण्ठ थी, ग्रर्थात् ग्रार्त्तध्यान का इतना ग्रधिक उभार था कि कृष्ण–वासुदेव के सामने ग्रा जाने पर भी देवकी महारानी उस ग्रोर ध्यान नही दे पाती है।

ऐसे ग्रार्त्तध्यान की स्थिति मे यह भूल जाना सभव है कि उसके एक पुत्र ग्रौर भी होगा। ऐसे समय मे कृष्ण–वासुदेव उसे विश्वास दिलाकर तेले का ग्रनुष्ठान कर देव से वृत्तान्त की जानकारी कर माता को विश्वास दिलाते है कि मेरे एक भाई ग्रौर होगा। ग्रत देवकी महारानी को जानकारी होने पर भी ग्रार्त्तध्यान की निमग्नता के कारण पुन विस्मृत हो जाती है। जिसका स्मरण कृष्ण–वासुदेव करवा देते है।

वर्तमान मे भी ऐसा देखा जाता है कि ग्रभी घटे भर पूर्व कही गयी बात भी व्यक्ति ग्रन्य विचारो मे खो जाने पर भूल जाता है।

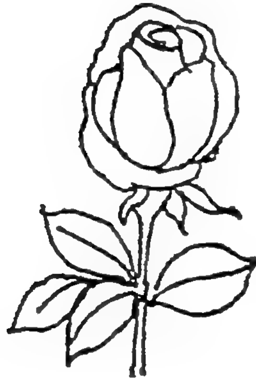
कई व्याख्याकारो का यह भी कहना है कि कृष्ण–वासुदेव को यह ज्ञात था कि मेरे एक भाई ग्रौर होने वाला है, लेकिन उसका भी छ भाइयो की तरह देव सहरण न करले, ग्रत हरिणैगमेषी देव की ग्राराधना कर पूछ लेना चाहिये। ताकि वह सहरण नही कर सके।

जिज्ञासा —जब कृष्ण–वासुदेव एक नवकारसी का तप भी नही कर सकते तो फिर तेले के

तप का अनुष्ठान कैसे किया ?

समाधान –कृष्ण-वासुदेव के द्वारा नवकारसी का व्रत भी नही कर सकने का कारण यह है कि वे आत्म साधना के लिये आगम विधि के अनुसार नवकारसी का तप नही कर सकते । सासारिक कार्यो के लिये वे कुछ भी करते है तो वह आत्ममूलक नही है ।

कृष्ण–वासुदेव ने जो तेले का तप किया था वह सासारिक कार्य के लिये था अत उस तेले के तप की विवक्षा नही की गई ।



चउत्थो वग्गो–चतुर्थ-वर्ग

उत्थानिका

तृतीय-वर्गगत ग्रध्ययनो के विवेचन के ग्रनन्तर, क्रम प्राप्त चतुर्थ वर्ग ग्राता है। तृतीय वर्ग के तरह ही ग्रध्ययनो मे राजकुमारो का जीवन वर्णित किया गया था। प्रस्तुत चतुर्थ वर्ग के दस ग्रध्ययनो मे भी राजकुमारो का जीवन ही वर्णित किया गया है।

विराट राज्य एव वेभव के वीच जन्मने वाले राजकुमार भौतिक सामग्री का प्राचुर्य होते हुए भी प्रभु द्वारा ससार की ग्रसारता तथा जीवन की नश्वरता का वोध प्राप्त कर भोग से योग की ग्रोर प्रवृत्त हो जाते है। युवानी का परिस्फोट जिन्हे पतन के महाद्वार पर ले जाने वाला होता है, वही विस्फोट सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर्मो का विस्फोटन कर उनकी ग्रात्मा को मोक्ष के महाद्वार मे प्रवेश करवा देता है। वे शाश्वत शाति की ग्रनुभूति मे तल्लीन हो जाते है।

सभी कुमारो का ग्राद्योपान्त जीवन गौतम कुमार की तरह ही था। इन सभी का पचास-पचास कन्याग्रो के साथ विवाह किया गया। पचास-पचास प्रकार का प्रीतिदान प्राप्त हुग्रा। ये सभी, प्रभु ग्ररिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर भागवती दीक्षा ग्रगीकार कर लेते है। वारह ग्रगो का तलस्पर्शी ग्रध्ययन करते है। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन करते है। ग्रन्त मे एक मास के सलेखना-सथारा पूर्वक शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर सिद्ध-वुद्ध-मुक्त ग्रवस्था प्राप्त करते है।

इन दसो राजकुमारो के नाम व इनके माता पिता के नाम निम्नानुसार है —

	राजकुमार	पिता का नाम	माता का नाम
१	जालि कुमार	महाराज वसुदेव	धारिणी रानी
२	मयालि कुमार	"	"
३	उवयाली कुमार	"	"
४	पुरुषसेन कुमार	"	"
५	वारिषेण कुमार	"	"
६	प्रद्युम्न कुमार	श्री कृष्ण-वासुदेव	रुक्मिणी रानी
७	साम्ब कुमार	"	जाम्बवती रानी
८	ग्रनिरुद्ध कुमार	प्रद्युम्न कुमार	वैदर्भी रानी
९	सत्यनेमि कुमार	महाराज समुद्रविजय	शिवा रानी
१०	दृढनेमि कुमार	महाराज समुद्रविजय	शिवा रानी

चउत्थो वग्गो—चतुर्थ-वर्ग

1—10 अध्ययन

56– "जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[A] संपत्तेणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[B] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्ष–प्राप्त ने आठवे अग अतकृद्दशाग के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह सुना । अतकृद्दशाग के चौथे वर्ग का श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्ष प्राप्त, ने क्या भाव फर्माये है ?"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[C] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-
1. जालि 2. मयालि 3. उवयाली
4. पुरिससेणे 5. वारिसेणे य ।
6. पज्जुण्ण 7. संब 8. अणिरुद्ध
9. सच्चणेमि य 10. ढढणेमि ।।1।।"

"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्ष प्राप्त, ने चौथे वर्ग के दस अध्ययन कहे है, जो इस प्रकार है — (१) जालि कुमार (२) मयालि कुमार (३) उवयालि कुमार (४) पुरुपसेन कुमार (५) वारिषेण कुमार (६) प्रद्युम्न कुमार (७) शाम्ब कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार ।

"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[D] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर, यावत् मोक्ष प्राप्त, ने चौथे वर्ग के दश अध्ययन कहे है, तो इसके प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?"

57– एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । तीसे णं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव[A] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[B] विहरइ । तत्थ णं बारवईए नयरीए वसुदेवे राया । धारिणी देवी वण्णओ । जहा गोयमो नवरं जालिकुमारे ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नाम की नगरी थी । उस द्वारिका नगरी का वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है, यावत् श्री कृष्ण—वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे, यावत् विचरण करते थे । उस द्वारिका नगरी मे महाराज 'वासुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे । इसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार

पण्णासओ दाओ। वारसंगी। सोलसवासा परियाओ। सेसं जहा गोयमस्स जाव^{C} सेत्तुंजे सिद्धे।

जानना चाहिये। जालि कुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना। विशेषता यह है कि जालि कुमार ने युवावस्था प्राप्त कर पचास कन्याओ से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओ का दहेज मिला। दीक्षित होकर जालि कुमार मुनि ने बारह अगो का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन किया, शेष सब गौतम कुमार की तरह, यावत् शत्रु जय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

एवं मयाली उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य।

इसी प्रकार मयालि कुमार, उवयाली कुमार, पुरुपसेन और वारिषेण का वर्णन जानना चाहिये।

एवं पज्जुण्णे वि नवरं-कण्हे पिया, रुप्पिणी माया।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये। विशेप-कृष्ण उनके पिता और रुक्मिणी देवी माता थी।

एवं सवे वि नवरं जंववई माया।

इसी प्रकार साम्ब कुमार भी, विशेप-उनकी माता का नाम जाम्बवती था। ये दोनो श्री कृष्ण के पुत्र थे।

एवं अणिरुद्धे वि नवरं पज्जुण्णे पिया वेदब्भी माया।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है। विशेष यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उसकी माता थी।

एवं सच्चणेमी, नवरं समुद्दविजए पिया सिवा माया।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है। विशेप-समुद्र विजय पिता और शिवा देवी माता थी।

एवं दढणेमी, वि सव्वे एगगमा।

इसी प्रकार दृढनेमि कुमार का भी वर्णन समझना। ये सभी अध्ययन एक समान है।

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड-दसाण चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर के द्वारा दश अध्ययनो वाले इस चौथे वर्ग का अर्थ कहा गया है।

।। चउत्थो वग्गो सम्मात्तो ।।

।। चतुर्थ वर्ग समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —विवाहित पुरुषो को दीक्षा लेने के लिये माता पिता से आज्ञा प्राप्त करने का उल्लेख शास्त्रो मे मिलता है । पत्नी की आज्ञा लेने का नही, तो क्या पत्नी की आज्ञा लेना अनिवार्य नही है ?

समाधान —शास्त्रो मे बहुत से वर्णन प्रासगिक आते है । कई स्थलो पर 'जाव' शब्द करके भी वर्णन सकुचित कर दिया जाता है । यद्यपि अन्तकृद्दशाग सूत्र मे कुमारो के दीक्षित होने पर भी विशेष कर माता पिता से आज्ञा लेने का वर्णन ही आता है, तथापि अन्य शास्त्रो मे धर्म पत्नी से आज्ञा लेने का उल्लेख मिलता है । जब जम्बू कुमार ने दीक्षा अगीकार की थी तब उसने माता पिता की आज्ञा होते ही दीक्षा ग्रहण नही कर ली थी । किन्तु अपनी आठ पत्नियो को समझाया था, उनसे भी आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर दीक्षा ली थी । शालिभद्रजी ने भी माता की आज्ञा से ही दीक्षा नही ली किन्तु अपनी बत्तीस ही धर्म पत्नियो को समझाया । उन सबके द्वारा अनुमति देने पर ही दीक्षा ग्रहण की थी ।

अत स्पष्ट है कि विवाहित पुरुष को दीक्षा के लिये पत्नी से भी आज्ञा प्राप्त करना होता है ।



पंचमो वग्गो—पचम वर्ग

उत्थानिका —

चतुर्थ वर्ग को विवेचना समाप्ति के अनन्तर पचम वर्ग के विपय मे जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी के समक्ष जिज्ञासा व्यक्त की–"भगवन् ! पचम वर्ग मे प्रभु ने क्या फरमाया ?" जम्बू स्वामी के प्रश्न के सन्दर्भ मे सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–"जम्बू ! पचम वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये है।"

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का द्वारिका नगरी मे पदार्पण हुआ। समवसरण की रचना हुई। श्री कृष्ण-वासुदेव प्रभु के दर्शन हेतु पहुँचे। देशना सुनने के अनन्तर श्री कृष्ण–वासुदेव एव पद्मावती के अतिरिक्त सभी श्रोताओ के चले जाने पर प्रभु से कृष्ण-वासुदेव ने प्रश्न किया—

'भगवन् ! द्वारिका का विनाश कैसे होगा ?' प्रभु ने फरमाया–देवानुप्रिय ! द्वारिका के विनाश का कारण सुरा, अग्नि, द्वैपायन ऋपि होगे। सुरापान करके यदुवशी युवक, द्वैपायन ऋपि का अपमान करेगे, मारपीट करेंगे। फिर द्वैपायन ऋपि अग्नि कुमार देव वनकर द्वारिका नगरी को अग्नि से दग्ध कर देगे।

हे कृष्ण ! तुम दीक्षित होने का विचार करते हो, लेकिन वासुदेव पद निदानकृत होने से वासुदेव त्रिकाल मे भी दीक्षा ग्रहण नही कर सकते। तो भो भगवन्। मैं यहा से काल करके कहाँ उत्पन्न होऊगा ?

श्री कृष्ण के पूछने पर प्रभु ने फरमाया-'कृष्ण ! द्वारिका नगरी के दग्ध हो जाने पर सभी परिजनो से रहित होकर राम वलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे की ओर युधिष्ठिर प्रधान पाण्डुराजा के पुत्र पाँचो पाण्डवो के पास पाण्डु मथुरा की ओर जाते हुए कोशाम्ब वन उद्यान मे न्यग्रोध वटवृक्ष के नीचे पृथ्वी, शिलापट्ट पर पीतवस्त्र से अपने शरीर को आच्छादित की हुई अवस्था मे राजकुमार द्वारा धनुप से छोडे तीक्ष्ण वाण द्वारा वाएँ पैर के विध जाने पर मृत्यु के समय काल करके तीसरी वालुकाप्रभा के उज्जवलिका नामक नरक विशेप मे नारक रूप मे उत्पन्न होवेंगे।'

यह सुनकर कृष्ण महाराज आर्त्तध्यान करने लगे। तव प्रभु ने फरमाया—'कृष्ण ! चिन्ता मत करो। तुम तीसरी नरक की आयु पूर्ण कर, आने वाली चौवीसी मे जम्बूद्वीपान्तर्गत, भारतवर्षीय पुण्ड्रदेश के शतद्वार नामक नगर मे अमम नामक वारहवे तीर्थंकर बनोगे। अनेक वर्षों तक विचरण करते हुए सभी कर्मो को क्षय करके सिद्ध अवस्था प्राप्त करोगे।' यह सुनकर

कृष्ण महाराज आनन्द विभोर हो उठे। हर्षाधिक्य के कारण सिहनाद कर उठे । प्रभु के दर्शन-वन्दन करके अपने नगर मे पहुँचे । नगर मे यह घोषणा करवाई, कि जो भी व्यक्ति प्रभु के पास दीक्षा लेना चाहते हो वे सहर्ष दीक्षा ग्रहण करे। उनका दीक्षा–महोत्सव स्वय कृष्ण महाराज मनाऐ गे । साथ ही उनके अवशेष पारिवारिक जनो की सार-सभाल भी करेगे ।

इधर पद्मावती रानी प्रभु की देशना सुनकर दीक्षा लेने के लिये तत्पर हो गई । पद्मावती को कृष्ण महाराज ने सहर्ष अनुमति दी । इसी प्रकार गौरी देवी, गाधारी देवी, लक्ष्मणा देवी, सुसीमा देवी, जाम्बवती देवी, सत्यभामा देवी, रूक्मिणी देवी को भी कृष्ण–वासुदेव ने सहर्ष दीक्षा की अनुमति प्रदान की । इन सभी रानियो का दीक्षा महोत्सव बडे ठाठ के साथ मनाया गया । ये सभी दीक्षित होकर यक्षिणी आर्या के सानिध्य मे रही । सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया । वेले–तेले आदि अनेक विध तप कम किया । अन्त मे एक मास की सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित किया । अनशन द्वारा साठ भक्तो का परित्याग किया । अन्त मे सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

इसी प्रकार शाम्बकुमार को धर्मपत्नी मूलश्री एव मूलदत्ता ने भी कृष्ण–वासुदेव से आज्ञा प्राप्त कर प्रभु के पास दीक्षा अगीकार की और अन्त मे कर्मो का नाश कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।



पंचमो वग्गो—पंचम वर्ग

पद्मावती नामक प्रथम अध्ययन

58– 'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[A] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स श्रयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स श्रंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[B] संपत्तेणं के श्रट्ठे पण्णत्ते ?'

"हे भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने चतुर्थ-वर्ग का यह श्रर्थ फरमाया तो भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने पचम वर्ग का क्या श्रर्थ फरमाया ?"

'एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[C] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस श्रज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा– 1. पउमावईय 2. गोरी 3. गंधारी 4. लक्खणा 5. सुसीमा य। 6. जंववइ 7. सच्चभामा 8. रुप्पिणी 9. मूलसिरि 10. मूलदत्ता य' ।।

'हे जम्बू ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने पचम वर्ग के दस श्रध्ययन प्रतिपादित किये है।' उनके नाम इस प्रकार है —

१– पद्मावती देवी, २– गौरी देवी,
३– गाधारी देवी, ४– लक्ष्मणा देवी,
५– सुसीमा देवी, ६– जाम्बवती देवी,
७– सत्यभामा देवी, ८– रूक्मिणी देवी,
९– मूलश्री देवी श्रौर १०– मूलदत्ता देवी ।

'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[D] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस श्रज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते श्रज्झयणस्स के श्रट्ठे पण्णत्ते ।'

'भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने पचम वर्ग के दस श्रध्ययन प्रतिपादित किये है । तो प्रथम श्रध्ययन मे प्रभु ने क्या बतलाया है ?'

एव खलु जंवू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । जहा पढमे जाव[E] कण्हे वासुदेवे श्राहेवच्चं जाव[F] विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णश्रो ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी, जहाँ कृष्ण–वासुदेव राज्य करते थे । उनकी पटरानी का नाम पद्मावती था । जो सभी लक्षणो से सम्पन्न थी । उसका वर्णन जानना चाहिये ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव[G] विहरइ। कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव[H] पज्जुवासइ। तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणी हट्ठतुट्ठा जहा देवई देवी जाव[I] पज्जुवासइ। तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य जाव[J] परिसा पडिगया।

उस काल उस समय मे अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान द्वारिका नगरी मे पधारे। नगरी के बाहर नन्दन वन उद्यान मे बिराजे। तप सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। कृष्ण-वासुदेव प्रभु के चरणो मे पहुँचे। भगवान की पर्युपासना—भक्ति करने लगे। तद्नन्तर पद्मावती देवी भी इस वृत्तान्त को जानकर बहुत प्रसन्न हुई और देवकी महारानी की तरह ही भगवान के चरणो मे पहुँची। तव कृष्ण-वासुदेव एव पद्मावती रानी आदि जनमेदिनी को प्रभु ने देशना सुनाई। धर्म-कथा सुनकर परिषद् विसर्जित हुई।

द्वारिका विनाश का मूल कारण

59— तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

'इमीसे णं भंते! बारवईए नयरीए दुवालस्सजोयण आयामाए नवजोयण-वित्थिन्नाए जाव[A] देललोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ?'

कण्हाइ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"एवं खलु कण्हा। इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयण-वित्थिन्नाए जाव[B] देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।"

तद्नन्तर कृष्ण—वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

'हे भगवन्! यह द्वारिका नगरी, जो नवयोजन चौडी और वारह योजन लम्बी है, उसका विनाश किमूलक-किस कारण होगा?'

हे कृष्ण! इस प्रकार सम्बोधित करते हुए अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण वासुदेव को कहा— 'हे कृष्ण! स्वर्ग सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण होगा।'

श्री कृष्ण का उद्वेग

60— कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढनेमि-सच्चणेमि-प्पभियओ कुमारा जे णं चइत्ता हिरण्णं जाव[C] परिभाइत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मु डा जाव[D] पव्वइया ।

अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से यह बात श्रवण कर कृष्ण-वासुदेव के मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ—

वे जालि, मयाली, उवयालि, पुरुपपेण, वारिपेण, प्रद्य ुम्न, शाम्व, अनिरुद्ध, दृढनेमि, सत्यनेमि आदि कुमार धन्य है। जो हिरण्य आदि सबको छोड कर अपने भाईयो तथा याचको मे वितरित कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित, यावत् दीक्षित हो चुके है।

अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव[E] अंतेउरे[20] य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए[21] गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव पव्वइत्तए ।

मै तो अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ। राज्य, अन्त पुर तथा मनुष्य सम्बन्धी काम भोगो मे मूर्छित आशक्त तथा स्नेहानुबन्धित हूँ। अत अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने के लिये समर्थ नही हूँ।

श्री कृष्ण के उद्वेग का शमन

61— कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

'से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—धण्णा णं ते जालिप्पभिइकुमारा जाव[A] पव्वइया[22]। से नूणं कण्हा । अत्थे समत्थे ?'

'हंता अत्थि ।'

तं नो खलु कण्हा । एयं भूयं वा

तब हे कृष्ण ! ऐसा कह कर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण-वासुदेव को सम्बोधित किया—'हे कृष्ण ! तुम्हारे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं अधन्य हूँ, अकृतपुन्य हूँ, जिससे दीक्षा ग्रहण नही कर सका। क्या यह कथन सत्य है?' तब कृष्ण-वासुदेव ने कहा—'हाँ भगवन् ! आपका कथन असदिग्ध सत्य है।' "किन्तु हे कृष्ण ! वासुदेव दीक्षा ग्रहण करे, ऐसा न तो भूतकाल मे हुआ है, न वर्तमान मे हो रहा है और न ही भविष्य मे होगा।"

भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव[B] पव्वइस्संति ।

'से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ न एयं भूयं वा जाव[C] पव्वइस्संति ?'

'कण्हाइ' ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं-वासुदेवं एवं वयासी–

'एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा[23] से एतेणट्ठेणं कण्हा । एवं वुच्चइ न एयं भूयं जाव[D] पव्वइस्संति ।'

'हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहा जाता है कि वासुदेव कभी दीक्षा नही लेते ?'

'हे कृष्ण ! 'इस प्रकार सम्बोधित करते हुए कृष्ण–वासुदेव को अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान बोले–'हे कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्व भव मे निदान कृत होते है । इसी कारण वे न दीक्षित होते है, न हुए है और न ही होगे ।'

श्रीकृष्ण के तीर्थकर होने की भविष्यवाणी

62– तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमि एवं वयासी-"अहं णं भंते! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामी?

तदनन्तर कृष्ण–वासुदेव ने अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को कहा–'हे भगवन् ! मै काल के समय यहा से काल करके कहाँ जाऊ गा ? कहाँ उत्पन्न होऊ गा ?'

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं-वासुदेवं एवं वयासी–"एवं खलु कण्हा । तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए अम्मापिइ-नियग विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धि दाहिणवेयालि अभिमुहे जुहिट्ठिल्ल-पामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुराय पुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंब-वणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइय-

तब अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान ने कृष्ण–वासुदेव को इस प्रकार कहा-हे कृष्ण ! द्वारिका नगरी के अग्निकुमार देव रुप द्वैपायन ऋषि द्वारा भस्म हो जाने पर (तुम) माता पिता तथा स्वजन-सम्वन्धियो से रहित, केवल राम वलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर प्रमुख पाच पाण्डवो की राजधानी मथुरा की ओर जाते हुए कोशाम्ब नामक फलो वाले वृक्षो के वन मे, न्यग्रोध नामक श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर, शरीर पर पीतवस्त्र को ओढकर वैठोगे, उस समय जराकुमार के द्वारा (कोदण्ड) धनुप से निकले हुए तीक्ष्ण वाण

सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए[25] नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

से तुम्हारे बाये पैर के विध जाने पर तुम काल के समय काल करके तीसरी वालुका नामक पृथ्वी मे नारक रुप मे उत्पन्न होवोगे।'

तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव[A] झियाइ।

अर्हन्त अरिष्ठनेमि भगवान के मुख से इस बात को सुनकर, विचार कर कृष्ण—वासुदेव निराश हो गए तथा आर्त्तध्यान करने लगे।

63— कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एव वयासी-मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पे जाव[A] झियाह। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे[26] दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जवणएसु सयदुवारे नयरे वारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं वहूइं वासाइं केवलि[27]परियागं[28] पाउणेत्ता सिज्झिहिसि, वुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाणं अंतं करिहिसि।

कृष्ण—वासुदेव की यह स्थिति देखकर 'हे कृष्ण !' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए अर्हन्त अरिष्ठनेमि भगवान वोले—

'हे देवानुप्रिय ! तुम्हे निराश नही होना चाहिये। क्योकि तुम उस तीसरी उज्ज्वलित-वालुकाप्रभा से निकलकर सीधे इसी जम्बूद्वीप के अतर्गत भरतक्षेत्र मे आने वाले उत्सर्पिणीकाल मे पुण्ड्र नामक जनपद के शतद्वार नामक नगर मे वारहवे अमम नामक तीर्थकर वनोगे। वहा पर तुम वहुत वर्ष पर्यन्त केवली—पर्याय मे रहकर सिद्ध, वुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त तथा सभी दु खो का अन्त करोगे।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ठ- अप्फोडेइ अप्फोडेत्ता वग्गइ वग्गित्ता तिवइं छिंदइ छिंदित्ता सीहणाय करेइ करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमिं

वे कृष्ण—वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास इस अर्थ को श्रवण कर, विचार कर अत्यधिक प्रसन्न हुए और अगो का प्रस्फुटन करते है, भुजाओ को फडकाते है, फडका कर जोर से आवाज करते है, आवाज करके, भूमि पर तीन वार पद-न्यास-

वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्कं हत्थिं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला[29] जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

64 गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया। बारवईए नयरीए सिंघाडग जाव[A] उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह-एवं खलु देवाणुप्पिया। बारवईए नयरीए नवजोयण जाव[B] देवलोगभूयाए सुरग्गि–दीवायण–मूलाए विणासे भविस्सइ। जं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवईए नयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे वा तलवरे वा माडंबिय-कोडुंबिय इब्भ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव[C] पव्वइत्तए। तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ। पच्छातुरस्स वि य से अहापवित्त वित्तिं अणुजाणइ। महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से निक्खमणं करेइ। दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं

पैरों को पटकते हैं उछलते हैं और जोर से सिंह गर्जना करते हैं, करके अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन–नमस्कार करते हैं, वन्दन–नमस्कार करके उसी सर्व प्रधान हाथी पर चढ़ते हैं चढ़कर जिधर द्वारिका नगरी थी जिधर अपना घर था, उधर आते हैं आकर प्रधान हस्ति रत्न से उतरते हैं उतरकर जिधर बाहर सभास्थान था और जहां पर अपना सिंहासन था वहां पर आते हैं और उत्तम सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाते हैं बैठकर राज सेवकों को बुलाते हैं बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—

हे देवानुप्रियो! तुम जाओ द्वारिका नगरी के तीन मार्ग-चार मार्ग जहां मिलते हों वहां, उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोलो—

हे देवानुप्रियो! स्वर्ग सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा, अग्नि और उस द्वैपायन ऋषि के द्वारा निश्चित रूप से होगा। अतः हे–देवानुप्रियो! द्वारिका नगरी में जो कोई राजा, युवराज ईश्वर (ऐश्वर्य सम्पन्न) तलवर (जो राजा का मान्य हो) माडम्बिक[1] (छोटे गांव का स्वामी) कौटुम्बिक इभ्य (हाथी के बराबर जिसके पास धन हो) श्रेष्ठी देवी, कुमारी, यदि अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित यावत् दीक्षित होना चाहते हों तो उन्हें कृष्ण–वासुदेव सहर्ष आज्ञा देते हैं। उसके पीछे रहने वाले रोगी या निराश्रित को भी वे यथायोग्य आजीविका का प्रबन्ध करेंगे। और बड़े वृद्धि सत्कार के साथ उनका निष्क्रमण–दीक्षा महोत्सव करेंगे।

इस प्रकार की घोषणा दो बार तीन

घोसेह घोसित्ता ममं एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।

वार करो। घोपणा करके मुझे पुन सूचित करो।

कोटुम्बिक पुरुषो ने वैसा ही करके पुन श्री कृष्ण—वासुदेव को सूचित कर दिया।

साधन से सिद्धि तक : पद्मावती

65— तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इसके अनन्तर वह पद्मावती देवी अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान से धर्म-कथा श्रवण कर विचार कर आनन्द विभोर हो उठी। यावत् प्रसन्न हृदय वाली होकर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन नमस्कार करती है। करके कहने लगी—

"सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं—देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि।

हे भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखती हूँ, जैसा कि आप फरमाते है, वह सत्य है। 'हे देवानुप्रियो! मै कृष्ण—वासुदेव से पूछ कर उनकी अनुमति प्राप्त कर आपके सानिध्य मे मुण्डित होकर, दीक्षा ग्रहण करुगी।'

'अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेहि।'

'हे देवानुप्रियो! जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो। किन्तु शुभ कार्य मे किंचित् मात्र भी विलम्ब मत करो।'

तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव[1] कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

इसके बाद वह पद्मावती देवी अपने धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढती है, और जिधर द्वारिका नगरी मे अपना महल था, उधर आती है। धार्मिक रथ से नीचे उतरती है, कृष्ण-वासुदेव जहाँ थे, वहाँ आती है और उन्हे दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार कहने लगी—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा[B] जाव पव्वइत्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि ।

'हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा होने पर मै अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ ।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख हो वेसा करो ।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते जाव पच्चप्पिणंति ।

तद्नन्तर कृष्ण-वासुदेव अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे— 'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पद्मावती के लिये विशाल निष्क्रमणाभिषेक-दीक्षा महोत्सव की तैयारी करो, तैयारी करके पुन मुझे सूचित करो ।' तद्नन्तर आज्ञा का पालन कर वे पुन कृष्ण-वासुदेव को सूचित कर देते है ।

66— तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं जाव[A] महाणिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकार विभूसियं करेइ करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिवियं दुरुहावेइ दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सोय ठवेइ "पउमावइं देविं" सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव

तद्नन्तर कृष्ण—वासुदेव, पद्मावती देवी को पाट पर बिठलाते है, तथा १०८ स्वर्ण कलशो से निष्क्रमणाभिषेक करते है, करके सभी अलकारो से विभूषित करते है, करके पुरुष सहस्त्रवाहिनी शिविका पर बिठलाते है । तद्नन्तर द्वारिका नगरी के मध्य मार्ग से निकलते हुए जिधर रैवतक नामक पर्वत था, और जिधर सहस्त्राम्र वन था, उधर आते है, आकर पालकी को नीचे रुकवाते है, तव पद्मावती पालकी से नीचे उतरती है । तद्नन्तर कृष्ण—वासुदेव पद्मावती देवी को आगे करके जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान विराजमान थे, उधर आते हे, आकर प्रभु को वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके, इस प्रकार निवेदन करने लगी—

उवागच्छइ, उवागच्छिता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणाभिरामा जाव[B] किमग्गं पुण पासणयाए ?

तण्णं अहं देवाणुप्पिया। सिस्सिणिभिक्खं दलयामि। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया। सिस्सिणिभिक्खं।

अहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिवंधं करेह।

67– तए णं सा पउमावई उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुयित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवगच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-आलित्ते जाव तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं धम्ममाइक्खियं !

तए ण अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ पव्वावेत्ता सयमेव मुण्डावेइ सयमेव जक्खिणीए[30]

'हे भगवन् ! यह पटरानी पद्मावती देवी मुझे इष्ट है, इच्छित है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनाम है, अभिराम, है, यावत् व उसका तो देखना भी बडा दुर्लभ है।'

'देवानुप्रिय ! उसे ही मैं शिष्या रूप मे भिक्षा देता हूँ। हे देवानुप्रिय ! आपश्री शिष्या रूप मे भिक्षा को स्वीकार करे।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो।'

तदनन्तर पद्मावती देवी उत्तर-पश्चिम (ईशानकोण) मे जाती है, जाकर के स्वयमेव सभी आभूषणो को उतारती है, उतार कर स्वयमेव पचमुष्ठिक लुंचन करती है, करके जिधर अर्हन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे, उधर आती है, आकर के वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगी–'भगवन् ! यह ससार आदीप्त-जरा मरण आदि दु खो से जल रहा है, अत आपसे दीक्षा अगीकार करना चाहती हूँ, आप मुझे धर्म का उपदेश सुनाए।'

तव अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान– पद्मावती देवी को स्वय ही प्रव्रजित करते है, स्वय ही भाव से मुण्डित करते है, स्वय ही यक्षिणी आर्या को शिष्या रूप से देते है।

अज्जाए सिस्सिणित्ताए दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देवि सयमेव जाव संजमियव्वं। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया। इरियासमिया जाव[A] गुत्त[31]-बंभयारिणो[32]। तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं[33] विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तदनन्तर यक्षिणी आर्या, पद्मावती देवी को केश लुन्चन रूप प्रव्रज्या देती है और समझाती है कि सयम यात्रा मे पूर्ण सजग रहना चाहिये। तदनन्तर वह पद्मावती देवी साधना मे यत्न करती है, अब वह पद्मावती आर्या हो गई। इर्या-समिति आदि पाच समिति—तीन गुप्ति, से गुप्त यावत्, ब्रह्मचर्य का पालन करती है। पद्मावती महासती, यक्षिणी आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करती है। उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला से अर्धमास खमण, मास खमण आदि से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करती है।

तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडि-पुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[B] तमट्ठं आराहेइ चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।

पद्मावती आर्या पूरे बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन करती है। एक मास की सलेखना द्वारा आत्मा को आराधित-शुद्ध करती है, साठ भक्त अनशन द्वारा छोडती है तथा जिस उद्देश्य हेतु दीक्षा ग्रहण की, उस उद्देश्य को सिद्ध कर लेती है। अन्तिम श्वासोच्छ्वास मे सिद्ध गति को प्राप्त कर लेती है।

2-8 अध्ययन

68— उक्खेवओ य अज्झयणस्स।

अतगडसूत्र के पचम वर्ग के प्रथम अध्ययन का सार श्रवण करने के अनतर आगे के अध्ययनो को जानने की जिज्ञासा जबू स्वामी द्वारा करने पर सुधर्मा स्वामी फरमा रहे है।—

तेणं कालेण तेणं समएणं बारवई नयरी। रेवयए पव्वए उज्जाणे

उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी, रैवतक नामक पर्वत और नन्दनवन नामक उद्यान था। उस द्वारिका नगरी

नंदणवणे । तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ ।

अरहा समोसढे । कण्हे णिग्गए । गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया । धम्मकहा । परिसा पडिगया । कण्हे वि । तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता जाव[A] सिद्धा ।

के कृष्ण—वासुदेव नामक राजा थे । उन कृष्ण—वासुदेव की सब लक्षणो से युक्त गौरी नामक महारानी थी । अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का पदार्पण हुआ । कृष्ण—वासुदेव, गौरी महारानी आदि परिषद् ने धर्म देशना का लाभ लिया । परिषद् एव कृष्ण—वासुदेव धर्म देशना श्रवण कर चले गये । तदनन्तर गौरी देवी का वर्णन पद्मावती देवी की तरह जान लेना चाहिये, यावत् निष्क्रमण हुआ और चरम उच्छ्वास नि श्वास मे सिद्धि प्राप्त की ।

एवं-गंधारी लक्खणा सुसीमा जम्बवई सच्चभामा रुप्पिणी अट्ठवि पउमावई सरिसयाओ अट्ठ अज्झयणा ।

इसी प्रकार गाधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रूक्मिणी, पद्मावती सहित इन आठो का जीवन वृत्त पद्मावती की तरह जानना चाहिये ।

9–10 अध्ययन

69— उक्खेवओ य नवमस्स ।

पचम वर्ग के अष्ठ अध्ययनो का सार जान लेने के अनतर नवम—दशम अध्ययन के सार को जानने की जिज्ञासा जबू स्वामी द्वारा करने पर सुधर्मा स्वामी ने फरमाया —

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए रेवयए पव्वए नंदणवणे उज्जाणे, कण्हे वासुदेवे । तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जबवईए देवीए अत्तए संवे नामं कुमारे होत्था — अहीणपडिपुण्णपंचिदिय — सरीरे । तस्स णं संवस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भज्जा वि निग्गया,

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे द्वारिका नामक नगरी, रैवतक नामक पर्वत, नन्दन वन नामक उद्यान था । द्वारिका के राजा कृष्ण—वासुदेव थे । उस कृष्ण—वासुदेव का पुत्र, जाम्बवती देवी का आत्मज, सभी इन्द्रियो मे पूर्ण, सर्वांग सुन्दर शाम्ब नामक कुमार था । उस शाम्ब नामक कुमार के मूलश्री नामक पत्नी थी । अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान का पदार्पण हुआ । कृष्ण—वासुदेव, मूलश्री आदि धर्म देशना सुनने के लिये निकले ।

जहा पउमावई। जं नवरं-देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि जाव[A] सिद्धा।

यहा पद्मावती की तरह सारा वर्णन जानना चाहिये।

विशेष—'हे देवानुप्रिय! कृष्ण—वासुदेव को पूछकर, यावत् सिद्ध अवस्था प्राप्त की।'

एवं मूलदत्ता वि।

इसी प्रकार मूलदत्ता वर्णन भी जानना चाहिये।

।। पंचमो वग्गो सम्मत्तो ।।

।। पचम वर्ग समाप्त ।।



जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा— 'निदान' किसे कहते है ?

समाधान — "हमारे तप-सयम का यदि कुछ फल हो तो हमे अमुक वस्तु मिले" इस प्रकार की धारणा को निदान कहते है । निदान, कल्याण कारण नही है ।

निदान नव प्रकार से किये जाते है—

१– एक पुरुष किसी समृद्ध पुरुष को देखकर निदान करता है ।

२– स्त्री अच्छा पुरुष प्राप्त करने के लिये निदान करती है ।

३– पुरुष सुन्दर स्त्री के लिये निदान करता है ।

४– स्त्री किसी सुखी एव सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है ।

५– कोई जीव देवलोक मे देव रूप से उत्पन्न होकर अपनी तथा दूसरी देवियो को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है ।

६– कोई जीव देव भव मे सिर्फ अपनी देवी को वैक्रिय करके भोगने का निदान करता है ।

७– कोई जीव अगले भव मे श्रावक बनने का निदान करता है ।

८– कोई जीव देव भव मे अपनी देवी को विना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है ।

९– कोई जीव अगले भव मे साधु बनने का निदान करता है ।

वासुदेव, पूर्व निदान कृत होते है, अत उन्हे उस भव मे चारित्र धर्म की प्राप्ति नही होती है ।

जिज्ञासा :— वैदिक परम्परा के अनुयायी जिस कृष्ण को मानते है, क्या ये वही कृष्ण है या अन्य कोई ?

समाधान — माता पिता आदि सम्बन्धियो के नामो की समानता की अपेक्षा से तो सनातन धर्मानुगत कृष्ण एव प्रस्तुत कृष्ण मे कोई अन्तर परिलक्षित नही होता । किन्तु जब दोनो पक्षो का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है तब महान् अन्तर प्रतीत होता है । इस अन्तर को देखते हुए यह नि सकोच कहा जा सकता है कि दोनो कृष्ण भिन्न-भिन्न है । मात्र नामादि की कुछ एकता से दोनो एक नही माने जा सकते । एक ही नाम के अनेक पुरूप तो आज भी उपलब्ध होते है, लेकिन सब मे एकता नही होती ।

सनातन धर्म मे ही देखा जाय तो शकराचार्य की गद्दी पर जो भी बैठता है, उसे भी शकराचार्य के नाम से ही व्यवहृत किया जाता है । इस नाम सामजस्य से सभी व्यक्तियो को एक नही माना जा सकता है । दोनो ही पक्षीय कृष्ण, भारत भूमि मे जन्म लेने वाले है, तथा

अनीति एव अत्याचार का प्रतिकार दोनो ने किया है। इसी प्रकार की अन्य कई बाते दोनो मे समान रूप से पाई जाती है। किन्तु वैदिक सस्कृति की मान्यतानुसार श्रीकृष्ण पाच हजार वर्ष पूर्व मे हुए है तथा जैन सस्कृति की दृष्टि से श्रीकृष्ण ८६ हजार वर्ष पूर्व हुए है।

वैदिक सस्कृति मे श्री कृष्ण को अवतार के रूप मे माना गया है। तथा बतलाया है कि जब जब धर्म की ग्लानि—ह्रास का प्रसग आता है तब-तब दुष्टो का दलन करने के लिये भगवान अवतार लेते है।[1]

जैन सस्कृति के अनुसार श्री कृष्ण, तीन खण्ड के स्वामी, वासुदेव के रूप मे माने गये है। जिन्होने समत्व भाव के साथ आध्यात्मिक धर्म की उत्पत्ति मे बहुत योगदान दिया। परिणाम-स्वरूप आगामी चौबीसी मे बारहवे अमम नामक तीर्थकर होगे तथा चार तीर्थ की स्थापना कर, परम पद मोक्ष को पाएगे।

ऐसा वर्णन वैदिक सस्कृति या गीता मे नही मिलता। यह दृष्टि उभय पक्षीय कृष्णो को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन करती है। यह तो वडे रूप मे सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। सूक्ष्मता की दृष्टि से अन्य अनेक बाते उभय पक्षीय कृष्णो को भिन्न-भिन्न बतलाने मे बतलाई जा सकती है। किन्तु अधिक विस्तार न हो अत सक्षिप्त मे ही सकेत किया गया है। ऐसे ऐतिहासिक एव प्रागैतिहासिक अवस्था से भी चिन्तन किया जाय तो कई बातो मे साम्यता रखने वाले कई पुरुष भी भिन्न-भिन्न होते है।

इस विषय मे पुराण मे भी उल्लेख मिलता है कि दानी वीर कर्ण ने कहा कि मेरा देहावसान होने पर मुझे ऐसे स्थान पर जलाना कि जिस स्थान पर मेरे समान कोई भी पुरुष जलाया न गया हो। इसी भावना को ध्यान मे रखकर, कर्ण के देहावसान होने पर उनको जलाने की तैयारी की जाने लगी। उसमे इस बात का ध्यान रखा गया कि स्थान ऐसा खोजना कि जिस स्थान पर किसी प्रकार का दानी वीर कर्ण न जलाया गया हो। जब सभी स्थान खोज लेने पर कही पर भी ऐसा स्थान नही मिला कि जहा ऐसा कोई कर्ण नही जलाया गया हो, तब कर्ण की लाश का पहाडो के शीर्षस्थ पर दाह सस्कार करने की तैयारी की जाने लगी। उसी समय देववाणी हुई—

---

[1] यदा यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारते।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यह ॥
परित्राणाय, साधुना विनाशाय च दुष्कृता।
धर्म सस्थापनार्थ च, सभवामि युगे युगे ॥

अत्र द्रोण शतदग्ध, पाडवाना शतत्रयम् ।
दुर्योधन सहस्त्रानि, कर्ण सख्या न विद्यते ।।

उस वाणी मे सुनाई दिया कि पहाड के शीर्षस्थ पर द्रोणाचार्य सरीखे सौ व्यक्ति जलाए गये । तीन सौ पाडव जलाए गये, हजारो दुर्योधन जलाए गये और कर्ण जैसो की तो गिनती ही नही है ।

इस पुराण के श्लोक से यह भलि-भाति स्पष्ट हो जाता है कि एक ही नाम के समान वैभव रखने वाले अनेक व्यक्ति इस धरातल पर हो गये है । वैसो स्थिति मे वैदिक सस्कृतिगत श्रीकृष्ण एव जैन सस्कृतिगत श्री कृष्ण, जिनकी सपूर्ण बाते नही मिलती तो वे भिन्न-भिन्न हो, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है । अतएव अपने-अपने स्थान पर अपनी-अपनी अवस्था से उनका मूल्याकन किया जा सकता है । जितनी बातो मे साम्यता है, उतनी बातो को लेकर उभय पक्षीय जन समुदाय को शिक्षण भी दिया जा सकता है ।

जिज्ञासा —वासुदेव मे कितना बल होता है ?

समाधान —वासुदेव मे महान् बल होता है । जिसका वर्णन जैनाचार्य ने उपमा द्वारा बतलाते हुए कहा है —

कूप मे बैठ हुए वासुदेव को जजीरो से बाधकर यदि हाथी, घोडे, रथ और पैदल रुप चतुरगिणी सेना सहित १४ हजार राजा भी खीचने लगे तो भी उसे खीच नही सकते, जबकि उसी जजीर को बाए हाथ मे पकड कर वासुदेव आसानी से अपनी ओर खीच सकते हे । दूसरी दृष्टि मे वासुदेव मे १० लाख अष्टापद का बल भी बतलाया जाता है ।

जिज्ञासा – क्या कृष्ण की जराकुमार द्वारा मृत्यु—अकाल मौत नही है, जबकि वासुदेव की अकाल मृत्यु होती ही नही है ?

समाधान —जराकुमार के बाण द्वारा श्री कृष्ण की मृत्यु को अकाल मृत्यु नही माना जा सकता । किसी वासुदेव को किसी भी प्रकार के उपक्रम मे पूर्व मृत्यु नही होती हे ।

कृष्ण—वासुदेव की आयुष्य स्वत ही पूर्ण हो चुकी थी और इधर जराकुमार का भी निमित्त मिल गया । यदि उनकी आयु अवशेष रहती तो वे जराकुमार के बाण मे नही मरते ।

जिज्ञासा —पद्मावती रानी के प्रव्रज्या लेते समय अन्य विशेषणो के साथ "मुण्डभावे" विशेषण भी आया है । तो भगवान ने पद्मावती रानी का मुण्डन कैसे किया ?

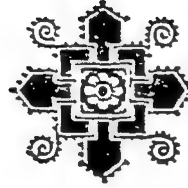
समाधान —स्थानाग सूत्र मे दस प्रकार के मुण्डनो का वर्णन आता है—

१—श्रोत्रेन्द्रिय मुण्डन, २—चक्षुरिन्द्रिय मुण्डन, ३—घ्राणेन्द्रिय मुण्डन, ४—रसनेन्द्रिय मुण्डन,

५—स्पर्शनेन्द्रिय मुण्डन ६—क्रोध मुण्डन, ७— मान मुण्डन, ८—माया मुण्डन, ९—लोभ मुण्डन, १०—शिर मुण्डन ।

इन दस मुण्डनो मे से प्रारभ के नो मुण्डन तो स्वय भगवान ही करते है । इस अपेक्षा से मुण्डभावे शब्द सार्थक प्रतीत होता है ।

शिर लु चन रुप मुण्डन पद्मावती महासती का यक्षिणी आर्या ने किया था ।



छट्ठो वग्गो—षष्ठ वर्ग

उत्थानिका :

पचम वर्ग के विवेचन के अनन्तर क्रम प्राप्त छट्ठे वर्ग का वर्णन आता है। इस वर्ग मे १५ अध्ययन बतलाए गये है।

षष्ठ वर्ग के मूल पाठ मे सोलह ही अध्ययनो का वर्णन स्पष्ट है। पुनरुक्ति न हो अत यहाँ उन सबका वर्णन न कर, सम्बन्धित विशेष विषयो को ही स्पष्ट कर रहे है।

चौदहवे अध्ययनगत अतिमुक्तक अनगार का दीक्षा के बाद का एक जीवन प्रसग भगवती सूत्र मे इस प्रकार मिलता है—

अतिमुक्तक अनगार प्रकृति से भद्र एव सरल थे। एक बार अतिमुक्तक अनगार बाहर गये। निपटने के बाद एक तरफ पानी को बहते देखा तो सहज ही बाल सुलभ स्वभाववश मिट्टी की पाल बाँधकर पानी को रोक दिया और उसमे अपना काष्ठपात्र तिराते हुए कहने लगे कि "मेरी नाव तीरे, मेरी नाव तीरे" यह सब दृश्य जब अन्य मुनिराजो ने देखा तो वे भगवान के पास पहुँचे और निवेदन करने लगे—

"भगवन्! आपके बाल मुण्डन मुनि अतिमुक्तक कितने जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगे?'

सर्वज्ञ– सर्वदर्शी प्रभु, प्रश्न का रहस्य समझ गये। प्रभु ने फरमाया–'आर्यो! अतिमुक्तक अनगार प्रकृति से भद्र एव विनयवान है। वह इसी भव मे सभी दुःखो का अन्त कर मुक्ति प्राप्त कर लेगे। अत उनकी अवहेलना, निन्दा मत करो।'

भगवान के मुख से यह वृत्तान्त श्रवणकर सभी मुनिराज अतिमुक्तक अनगार की निःसकोच सेवा करने लगे।

अतिमुक्तक अनगार ने गुणरत्न आदि तपश्चरण किया। आचाराग आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बहुत वर्षो तक सयम पर्याय का पालन कर, विपुलगिरि पर्वत पर सलेखना-सथारापूर्वक सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

छट्ठो वग्गो—षष्ठ वर्ग

1—2 अध्ययन

70- जइ ण भंते ! समणेण भगवया महवीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के पाँचवे वर्ग का यह अर्थ फरमाया तो भगवन् ! छट्ठे वर्ग का महाप्रभु ने क्या अर्थ फरमाया है ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के सोलह अध्ययन फरमाये है। जिनके नाम इस प्रकार है—

संगहणी गाहा—

1. मकाइ 2. किकमे चेव
3. मोग्गरपाणी य 4. कासवे 5. खेमए
6. धिइहरे, चेव 7. केलासे
8. हरिचंदणे ॥1॥
9. वारत्त 10. सुदंसण 11. पुण्णभद्द तह
12. सुमणभद्द 13. सुपइट्ठे 14. मेहे
15. अतिमुत्त 16. अलक्के
अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥2॥

१ मकाइ, २ किकर्मा, ३ मुद्गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७ कैलाश, ८ हरिचन्दन, ९ वारत्त, १० सुदर्शन, ११ पुण्यभद्र, १२ सुमनभद्र, १३ सुप्रतिष्ठित, १४ मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष्य ।

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भगवान ने जो सोलह अध्ययन फरमाये है उनमे प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है ?

71- एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था। गुणशील नामक वगीचा था। नगर के सम्राट श्रेणिक थे। उसी नगर

तत्थ णं मकाई नामं गाहावई परिवसइ–अड्ढे जाव[A] अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिकरे गुणसिलए जाव[B] विहरइ। परिसा निग्गया। तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए। लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए निक्खंते जाव अणगारे जाए-इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारुवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं[34] अहिज्जइ। सेसं जहा खंदयस्स गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ। तहेव विउले सिद्धे।

किंकमे वि एवं चेव जाव[C] विउले सिद्धे।

मे मकाई नामक गाथापति निवास करते थे। जो ऋद्धि आदि से समृद्ध और अपरिभूत थे।

उस काल उस समय मे धर्म तीर्थ के प्रवर्तक श्रमण भगवान महावीर स्वामी का गुणशील नामक बगीचे मे पदार्पण हुआ। जनता उपदेश श्रवण कर विसर्जित हुई। मकाई श्रेष्ठी भी भगवान के पदार्पण के शुभ समाचार श्रवण कर भगवती सूत्र मे वर्णित गगदत्त की तरह प्रभु के चरणो मे उपस्थित हुआ। प्रभु की वाणी श्रवण कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। गगदत्त की तरह ही मकाई ने भगवान के चरणो मे निवेदन किया–'भगवन्! मे अपने बडे पुत्र को कुटुम्ब का सब दायित्व सभलाकर आपश्री के चरणो मे दीक्षा लेना चाहता हूँ?' भगवान ने फरमाया—

'हे देवानुप्रिय! जिसमे तुम्हे सुख हो। वैसा करो।'

मकाई गाथापति अपने बडे पुत्र को सभी सम्बन्धियो के समक्ष अपना दायित्व सभलाया। सहस्त्र पुरुपवाहिनी शिविका पर बैठकर नगर से प्रस्थान किया, प्रभु के चरणो मे सयम जीवन अगीकार किया। ईर्या समिति आदि पाच समिति, तीन गुप्ति, और इन्द्रियो का दमन करते हुये ब्रह्मचारी हुए।

तद्नन्तर मकाई नामक अनगार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के तथा-रुप स्थविरो के पास मे सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। गुणरत्न सवत्सर आदि अनेक विध तप कर्म किया। अवशेप वर्णन स्कदक अनगार की तरह जानना चाहिये। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर

अन्तिम समय मे विपुल गिरि नामक पर्वत पर सलेखना सथारा पूर्वक सभी कर्मो का अत कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की ।

आर्य जम्बू के प्रश्न करने पर द्वितीय किकर्मा नामक गाथापति के विषय मे आर्य सुधर्मा ने इसी प्रकार फरमाया । किकर्मा अनगार ने भी विपुलाचल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की थी ।

तृतीय अध्ययन—मुद्गरपाणी

अर्जुनमालाकार

72—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसीलए चेइए । सेणिए राया । चेलणा देवी । तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था—सूमालपाणिपाया । तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था—किण्हे जाव[A] निउरंबभूएदसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे।

किकर्मा गाथापति का जीवन वृत्त श्रवण करने के अनतर आर्य जम्बू स्वामी द्वारा मुद्गरपाणि के जीवन वृत को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की गई। तब सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

'हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था । गुणशील नामक बगीचा था । नगर के सम्राट श्रेणिक थे, महारानी चेलना थी । उसी राजगृह नामक नगर मे अर्जुन नामक माली निवास करता था । जो कि ऋद्धि आदि से सम्पन्न एव नगर मे प्रतिष्ठित था । बधुमती नाम से सुकोमल अगोवाली इसकी पत्नी थी। अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक विशाल पुष्पोद्यान था । वह उद्यान कृष्ण प्रभा वाला था । महामेघो के समान उसमे वृक्षो की आधिक्यता थी । (दसार्द्ध)—पाँचो प्रकार के पुष्पो मे सदा खिला रहता था । जनता के लिये जो आकर्षण का केन्द्र था ।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते, एत्थ णं अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेग-

उस पुष्पोद्यान के पास ही मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था । जो कि अर्जुनमाली के दादा, परदादा एव पिता—इस प्रकार

कुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था । पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे । तत्थ ण मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ ।

अनेक कुल परम्पराओ से पूजित था । यह मन्दिर प्राचीन, दिव्य, मनोहर, सत्य प्रभाव वाला था । औपपातिक सूत्र मे वर्णित पूर्णभद्र यक्षायतन की तरह ही इसका वर्णन भी जान लेना चाहिये । उस मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा के एक हजार पल के परिमाण वाले विशाल लोहमय मुद्गर को अपने हाथ मे ग्रहण करके स्थित थी ।

73—तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था । कल्लाकल्लि पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुपफुच्चयं करेइ करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

अर्जुनमाली बाल्यकाल से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था । वह (कल्याकलिय) प्रतिदिन (पच्छिपिटकान्) अनेक विध टोकरियो को ग्रहण करता, ग्रहण करके राजगृह नगर से बाहर निकलता, निकलकर जिधर पुष्पाराम उद्यान था, उधर आता और पुष्प चयन करता । पुष्पो को चयन कर उनमे से (अग्रयाणि वराणि) खिले हुए श्रेष्ठ पुष्पो को लेकर मुद्गरपाणि यक्ष के पास आकर उसकी उन (महार्घ) बडो के योग्य पुष्पो द्वारा पूजा करता, तदनन्तर भूमि पर दोनो घुटने टेककर प्रणाम करता, पश्चात् राजगृह पथ पर आजीविका करके समय व्यतीत करता ।

ललितांग गोष्ठी का अनाचार

74— तत्थ ण रायगिहे नयरे ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया जक्यसुकया यावि होत्था ।

उसी राजगृह नगर मे ललितांग गोष्ठी अर्थात् समान आयुवाले छः मित्रो की मण्डली भी रहती थी । वह मण्डली, ऋद्धि आदि मे सम्पन्न एवं अपरिभूत थी । उसका कोई

तिरस्कार नही कर सकता उन्हे राजा का अनुग्रह प्राप्त होने से वह (यत्कृत सुकृता) जो भी करते उसे ही अच्छा समझने वाली थी ।

तए णं रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था । तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जं इ त कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमइए भारियाए सद्धि पच्छिपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चयं करेइ । तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंत्ति ।

उसी राजगृह नगर मे किसी समय एक प्रमोद महोत्सव की घोषणा को सुनकर अर्जुनमाली सोचने लगा– आगामी दिन अधिक फूलो की आवश्यकता होगी । अत वह प्रात काल होते ही अपनी बन्धुमती पत्नी के साथ अनेक टोकरिया लेकर अपने घर से निकला, राजगृह नगर के मध्य मार्ग से होता हुआ, जिधर पुष्पोद्यान था, उधर पहुँचा और अपनी धर्मपत्नी बन्धुमती के साथ पुष्प सचय करने लगा । इसी समय उस ललिताग गोष्ठी के छहो साथी, जिधर मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था, उधर आते है, क्रीडा करने लगते है ।

75– तए णं अज्जुणए मालागारे बधुंमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चयं करेइ (पच्थियं भरेइ) भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खायणे तेणेव उवागच्छइ । तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं

इधर अर्जुन माली, बन्धुमती भार्या के साथ पुष्प एकत्रित करता है, एकत्रित करके श्रेष्ठ पुष्पो को लेकर जिधर मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, उधर आता है । उस समय ललिताग गोष्ठी के छहो मित्र अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ इधर आते हुए देखते है, देखकर परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करते है—

वंधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाणं पासंति पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी-

"एस ण देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे वंधुमईए भारियाए सद्धि इहं हव्वमागच्छइ। तं सेय खलु देवाणुप्पिया। अम्हं अज्जुणय मालागारं अवओडय वंधणयं करेत्ता वधुमईए भारियाए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइ भुंजमाणाणं विहरित्तए", त्ति कट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेति, पडिसुणेत्ता कवाडतरेसु निलुक्कंति, निच्चला, निप्फंदा तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तए ण से अज्जुणए मालागारे वधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ आलोए पणाम करेइ, महरिहं पुप्फच्चण करेइ, जण्णुपायपडिए पणाम करेइ। तए ण छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडतरेहितो निग्गच्छति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागार गेण्हति गेण्हित्ता अवओडय-बधण करेनि। वधुमईए मालागारीए सद्धि विउलाइ भोगभोगाइ भुजमाणा विहरंति।

"हे देवानुप्रियो ! अर्जुनमाली, वन्धुमती भार्या के साथ शीघ्र ही इधर आ रहा है। अत हे देवानुप्रियो ! यह अच्छा है कि हम सभी अर्जुनमाली को अवकोटक वन्धन मे बाधकर वन्धुमती भार्या के साथ भोग्य-भोगो को भोगते हुए विचरण करे।" ऐसा विचार कर छहो परस्पर इस वात को स्वीकार करते है। निश्चल, निष्पन्द और बिल्कुल मौन होकर मन्दिर के दरवाजे के पीछे छिप जाते है। तदनन्तर वह अर्जुनमाली वन्धुमती भार्या के साथ जिधर मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। उधर आता है, आकर के उस यक्ष की मूर्ति का अवलोकन कर प्रणाम करता है। नमस्कार कर उन श्रेष्ठ पुष्पो से अर्चना करता है। घुटने और पाव टेककर प्रणाम करता है। ठीक इसी समय वे छहो गोष्ठिक पुरुष बडी शीघ्रता से दरवाजे के पीछे से निकलते है, निकल कर अर्जुन माली को पकड लेते है, और अवकोटक बन्धन मे बाधते है। तदनन्तर वन्धुमती भार्या के साथ यथेच्छ विपुल भोगो को भोगने लगते है।

अर्जुनमाली का प्रतिशोध–पुरुष-स्त्रियों का संहार

76— तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पजित्था-एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव[A] पुप्फच्चणं करेमि, जण्णुपायपडिए पणामं करेमि तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्ति कप्पेमाणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होंते, से णं किं मम एयारुवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते ? तं नत्थि णं मोग्गरपाणि जक्खे इह सण्णिहिए। सुव्वत्तं णं एस कट्ठे। तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारुवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिदइ, छिंदित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ।

यह देखकर अर्जुनमाली के मन मे इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ। मै बचपन से ही मुद्‌गरपाणि भगवान की प्रतिदिन अर्चना करता हूँ। घुटने टेक कर प्रणाम करता हूँ। उनकी अर्चना करने के बाद ही आजीविका करता हूँ। यदि मुद्‌गरपाणि यक्ष साक्षात् यहा पर सनिहित होते तो क्या वह मेरे पर आने वाली इस प्रकार की आपत्ति को देखते ? किन्तु मुद्‌गरपाणि यक्ष यहा विद्यमान नही है, अत स्पष्ट है कि यह मात्र काष्ठ प्रतिमा है।

इधर मुद्‌गरपाणि यक्ष, अर्जुनमाली के इस प्रकार के विचारो को जानकर उसके शरीर मे प्रवेश कर जाता है। यक्ष के प्रवेश करते ही अर्जुनमाली, अवकोटक बधन को तडातड तोड देता है, और फिर उस हजार पल भारी लोहमय मुद्‌गर को ग्रहण करता है, ग्रहण करके उन छ पुरुषो एव सातवो स्त्री बन्धुमती को भी मार डालता है।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरतेणं कल्लाकल्लिं इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ।

तद्‌नन्तर अर्जुनमाली मुद्‌गरपाणि यक्ष के प्रवेश से परवश हुआ प्रति दिन छ पुरुष और एक स्त्री की घात करता हुआ विचरण करने लगा।

राजगृह मे आतंक परिव्याप्त

77– तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव[A] महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासेइ एवं पण्णवेइ एवं परुवेइ ।

"एवं खलु देवाणुप्पिया । अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।"

तए ण से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंविय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

"एव खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[B] घाएमाणे विहरइ । त मा णं तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सरइ निग्गच्छह । मा णं तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । त्ति कट्टु दोच्च पि तच्च पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेय पच्चप्पिणह ।" तए णं से कोडुंविय पुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

यह चर्चा राजगृह नगर के त्रिकोण, चतुष्कोण, समान्य–विशेष मार्गो पर होने लगी । एक दूसरे को परस्पर इस प्रकार कहने लगे-

'हे देवानुप्रियो ! मुद्‌गरपाणि यक्ष मे आविष्ट होकर अर्जुनमाली निश्चय ही प्रति दिन राजगृह नगर के बाहर छ पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता हुआ विचरण कर रहा है ।"

इस बात की जानकारी सम्राट श्रेणिक को मिलने पर वे अपने कौटुम्बिक (सेवक पुरुषो) को बुलाते है, बुलाकर इस प्रकार कहने लगे—

'हे देवानुप्रिय ! अर्जुनमाली प्रतिदिन सात प्राणियो को मारता है । अत तुममे से कोई भी, नगरवासियो मे घोषणा कर दो कि कोई भी व्यक्ति नगर मे बाहर लकडी, तृण, पानी, फूल तथा फलो के लिये नही जाये, जाने पर उसका शरीर नष्ट हो जायगा, क्योकि अर्जुनमाली लोगो की हत्याए कर रहा है । इस घोषणा को दो-तीन बार करके पुन मुझे सूचित करो ।" सेवक पुरुषो ने तद्‌नुसार करके पुन सूचित किया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

78– तत्थ ण रायगिहे नयरे सुदंसणे नाम सेट्ठी परिवसइ अड्ढे । तए ण

उसी राजगृह नगर मे सुदर्शन नामक ऋद्धि सम्पन्न श्रेष्ठी निवास करता था । वह

से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था अभिगयजीवाजीवे जाव[A] विहरइ ।

सुदर्शन नामक श्रमणोपासक जीवाजीवादि तत्वो का ज्ञाता प्रतिष्ठित श्रमणोपासक था ।

महाप्रभु महावीर का पदार्पण

79- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव[B] विहरइ । तए णं रायगिहे णयरे, सिघाडग जाव[C] महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव[D] किमंग पुण विउलस्स अत्थस्स गहणयाए ?

अर्जुनमाली के इस आतक के समय मे ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी का राजगृह के बाहर गुणशील नामक बगीचे मे पदार्पण हुआ । प्रभु के आगमन की चर्चा राजगृह नगर के त्रिकोणादि मार्गो पर होने लगी--कि जिनके नाम, गौत्र श्रवण करने से भी महाफल होता है, उनके दर्शन करने से महान् लाभ होता है, तब उनके द्वारा प्ररुपित धर्म-अर्थ को ग्रहण करने के फल का कहना ही क्या ?

सुदर्शन श्रमणोपासक का साहस

80- तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं अट्ठं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था- एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि; एवं संपेहेइ संपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं जाव[A] एवं वयासी–

अनेक पुरुषो से इस प्रकार के वृत्तान्त को श्रवण कर सुदर्शन सेठ के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुआ—निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान मे विचरण कर रहे है, अत मै जाता हूँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करता हूँ, ऐसा विचार करके जिधर उनके माता पिता थे उधर आता है, आकर दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार बोला—

"एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं

"हे पूज्य ! माता पिताजी ! निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर गुणशील नामक उद्यान मे विचरण कर रहे है । अत. मैं श्रमण

गच्छामि ण समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव[B] पज्जुवासामि"।

भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार एव पर्युपासना करने जाऊँ।"

तए णं सुदसणं सेट्ठि अम्मापियरो एव वयासी–

तब माता पिता ने सुदर्शन श्रेष्ठी को इस प्रकार कहा—

"एव खलु पुत्ता! अज्जुणऐ मालागारे जाव[C] धाएमाणे धाएमाणे विहरइ। तं मा णं तुमं पुत्ता। समणं भगव महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमण्ण इहगए चेव समण भगव महावीरं वंदाहि।"

'हे पुत्र! निश्चय ही अर्जुनमाली नगर के बाहर सात प्राणियो की प्रतिदिन हत्या (घात) करता है। अत हे पुत्र! तुम श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना करने के लिये नगर मे बाहर मत निकलो, क्योकि वहा जाने से तुम्हारे शरीर को कष्ट होगा। तुम वहा रहकर ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार कर लो।"

वन्दनार्थ गमन : सुदर्शन का

81– तए ण से सुदंसण सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी–"किण्णं अहं अम्मायाओ। समणं भगवं महावीरं इहमागय इह पत्तं इह समोसढं इह गए चेव वंदिस्सामि नमंसिस्सामि? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ। तुब्भेहि अब्भणुणाए समाणे समणं भगव महावीर वदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि।"

तब सुदर्शन श्रेष्ठी ने माता पिता को इस प्रकार कहा–'हे पूज्य माता पिता! इस नगर मे पधारे हुए, इस नगर को प्राप्त हुए, इसी नगर मे समवसरण लगे हुए श्रमण भगवान महावीर को मैं यहीं बैठा हुआ वन्दन–नमस्कार करूँ यह नही हो सकता। अत हे माता पिता! आप लोगो की आज्ञा प्राप्त होने पर मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के सानिध्य मे वन्दन–नमस्कार एव पर्युपासना करने जाना चाहता हूँ।"

तए णं सुदसण सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहि आघवणाहि जाव[A] परवेत्तए ताहे एवं वयासी–

इसके बाद भी सुदर्शन श्रेष्ठी के माता पिता जब उसे अनेक वचनो से, विशिष्ट वचनो से समझाने मे भी समर्थ नही हुए, तब उन्होने इस प्रकार कहा---

"अहासुहं देवाणुप्पिया ।"

"हे देवानुप्रिय! जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो। वैसा करो।"

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

इस प्रकार माता पिता द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर सुदर्शन श्रेष्ठी ने स्नान किया, शुद्ध वस्त्रो को धारण कर अनेक विध आभूषणो से शरीर को अलकृत करके अपने घर से पैदल ही राजगृह नगर के मध्य मार्गो से निकलते है, निकल कर मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर के न अति दूर और न अति निकट, गुणशीलक नामक बगीचे मे जहा श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उधर ही जाने का निश्चय किया।

अध्यात्म शक्ति से प्रतिहत : भौतिक बल

82— तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूर सामंतेणं वीईवयमाणं—वीईवयमाणं पासइ पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे—उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणि जक्खं एज्जमाणं पासइ पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए

तदनुसार सुदर्शन श्रेष्ठी चलते हुए उस मुद्गरपाणि यक्ष के समीप पहुँचते है, तब सुदर्शन श्रमणोपासक को न अति दूर, न अति निकट आते हुए, मुद्गरपाणि यक्ष देखता है, देखकर (आसूरत्ते–) शीघ्र क्रोधित होता है, रुठे–रोषयुक्त, कुपित–कोपयुक्त, चाडक्किए-कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, मिसिमिसिमाणे–क्रोध की ज्वाला से दाँत पीसता हुआ, हजार पल के भारी लोहे के मुद्गर को उछालता हुआ, जिधर सुदर्शन श्रमणोपासक था, उधर जाने के लिये प्रस्थित हुआ। तदनुसार यक्ष को इधर आते हुए देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक (अभीत)-भय रहित (अत्रास)-त्रास रहित, (अनुद्विग्न)-उद्विग्न रहित (अक्षोभ)-क्षोभ-

असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं। नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलाए मुसावाए, थूलाए अदिण्णादाणे सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव[^] मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाण खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारित्तए। अहं णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि, 'तो मे तहा' पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागार पडिमं पडिवज्जइ।

रहित (अचलित)-चलायमान नही होते हुए (असभ्रात)-आकुल-व्याकुलता रहित होकर वस्त्र से भूमि को शुद्ध करते है और दसो नखो सहित दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार बोला—

मोक्ष प्राप्त श्री अरिहत को एव मोक्ष प्राप्ति की कामना करने वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो। मैने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात, स्थूल अदत्तादान का जीवन पर्यन्त त्याग किया था। तथा स्वदारसन्तोष, इच्छा-परिमाण व्रत को जीवन भर के लिये अगीकार किया था। अब भी इन्ही की साक्षी मे सभी प्रकार के प्राणातिपात का जीवन पर्यन्त त्याग करता हूँ। इसी प्रकार जीवन पर्यन्त मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन एव परिग्रह का त्याग करता हूँ। इसी प्रकार क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक, अठ्ठारह ही पापो का त्याग करता हूँ। सभी प्रकार के अशन, पान, खादिम, स्वादिम इन चारो प्रकार के आहारो का भी जीवन पर्यन्त त्याग करता हूँ।

यदि मै इस उपसर्ग से मुक्त हो जाउ तो मुझे पूर्ण पालन करना कल्पता है और यदि मुक्त नही हो पाउ तो मेरे प्रत्याख्यान उसी प्रकार जीवन पर्यन्त तक रहेगे।"

इस प्रकार कहकर सुदर्शन श्रमणोपासक सागार प्रतिमा-छूट सहित, प्रतिज्ञा धारण कर लेते है।

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे त्त पलसहस्सणिप्फण्ण अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे–उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव णं संचाएइ सुदंसण समणोवासय तेयसा समभिपडित्तऐ।

इधर मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल के बने हुये लोहमय मुद्गर को उछालता हुआ, जिधर सुदर्शन श्रमणोपासक थे, उधर आता है, आकर सुदर्शन श्रमणोपासक को वह अपनी दिव्य शक्ति से आक्रान्त करने मे समर्थ नही हो सका।

83– तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासय सव्वओ समंता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदसण समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्स णिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

जब मुद्गरपाणि यक्ष चारो ओर से चक्कर लगाकर भी सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से आक्रान्त करने मे समर्थ नही हो सका, तब वह सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने, बराबर मे, बिल्कुल सामने खडा होकर निर्निमेष दृष्टि से, चिरकाल तक देखने के बाद अर्जुनमाली के शरीर को छोड देता है, छोडकर उस हजार पल से बने लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे चला गया।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए 'निरूवसग्ग' मित्ति कट्टु पडिमं पारेइ।

तब वह अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होने पर 'धस' ऐसे शब्द के साथ धडाम से सभी अगो के साथ भूमि पर गिर पडता है। तदनन्तर सुदर्शन श्रमणोपासक 'विघ्न खतम हो गया' ऐसा जानकर प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेते है।

महाप्रभु की सेवामे : सुदर्शन और अर्जुनमालाकार

84– तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ उट्ठेत्ता सुदसणं समणोवासयं एवं वयासी—

अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर अर्जुनमाली कुछ आश्वस्त होकर उठता है, उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगा —

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के कहि वा संपत्थिया ?"
तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—
"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीर वंदए संपत्थिए।"

"हे देवानुप्रिय ! आप कौन है ? और कहा जा रहे है ?" सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुनमाली को इस प्रकार कहा—
"हे देवानुप्रिय ! मै सुदर्शन नाम का जीवाजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक हूँ । मै गुणशीलक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन करने के लिये जा रहा हूँ ।"

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसण समणोवासयं एवं वयासी—
"त इच्छामि ण देवाणुप्पिया अहमवि तुमए सद्धि समणं भगवं महावीरं वदित्तए जाव[4] पज्जुवासित्तए ।"

तब अर्जुनमाली, सुदर्शन श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगे—
"हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार, यावत् पर्युपासना करने के लिये जाना चाहता हूँ ।"

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेहि ।

सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा—
"जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो । वैसा करो ।"

तए ण सुदसणे समणोवासए अज्जुणएण मालागारेण सद्धि जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अज्जुणएण मालागारेण

तब अर्जुनमाली सुदर्शन श्रमणोपासक के साथ जिधर गुणशीलक उद्यान था, श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहा पर आता है, आकर, अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को

सद्धि समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव[B] पज्जुवासइ ।

तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दन–नमस्कार–पर्युपासना करता है ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ । सुदंसणे पडिगए ।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और नगर से आई हुई विशाल जनता को धर्मोपदेश सुनाया । धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् सुदर्शन श्रमणोपासक प्रभु को वन्दन करके अपने स्थान पर चला जाता है ।

अर्जुन मालाकार : भोग से योग की ओर

85– तए ण से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथ पावयण जाव[A] अब्भुट्ठेमि ण भंते ! निग्गंथ पावयणं ।"

अर्जुनमाली, प्रभु से धर्म को श्रवण कर, हृदय मे धारण कर, हर्षित होकर इस प्रकार कहने लगा—

"हे भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हू, और इसकी आराधना के लिए उपस्थित होता हू ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेहि ।"

प्रभु ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हारी आत्मा को सुख हो । वैसा करो ।'

तए ण से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जाव[B] विहरइ ।

अर्जुनमाली, उत्तर–पूर्व दिशा भाग मे जाकर स्वय ही पचमुष्ठि लुचन करता है । लोच करके प्रभु मे अनगार अवस्था स्वीकार करते हुए तप–सयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगता है ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुण्डे जाव[C] पव्वइए तं

वे अर्जुन अनगार जिस दिन मे मुण्डित प्रव्रजित हुए थे, उसी दिन से श्रमण भगवान महावीर को वन्दन–नमस्कार करते है,

चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगिण्हइ—ओगिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव[D] विहरइ ।

वन्दन—नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रहण करते है—मुझे कल्पता है, बेले-बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना । इस प्रकार अभिग्रह धारण करके अर्जुन अनगार जीवन पर्यन्त बेले-बेले का तप करते हुए विचरण करते है।

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जाव[E] अडइ ।

अर्जुन अनगार बेले के पारणे मे प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते है । दूसरे प्रहर मे ध्यान करते है । तीसरे प्रहर मे गौतम स्वामी की तरह भगवान से, आज्ञा प्राप्त कर उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भिक्षा के लिये भ्रमण करते है ।

सहनशीलता का उत्कर्ष · सिद्धि की प्राप्ति

86— तए णं त अज्जुणयं अणगार रायगिहे नयरे उच्च जाव[A] अडमाणं वहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—

उन अर्जुन अनगार को राजगृह नगर के उच्चादि घरो मे घूमते हुए देखकर बहुत से स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध, युवा इस प्रकार कहने लगे—

"इमेण मे पिता मारिए ! इमेण मे माता मारिया । इमेण मे भाया भगिणी भज्जा पुत्ते धूया सुण्हा इमेण मे अण्णयरे सयण-संबधि-परियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति अप्पेगइया हीलंति[1] निंदंति[1] खिसंति[2] गरिहंति[3]

"इसने मेरे पिता को मार दिया, माता को मारा, बहिन को मारा, पत्नी को मारा, पुत्र को मारा, (दुहिता) लडकी को मारा, (स्नुषा) पुत्र वधू को मारा । इसने मेरे अन्य स्वजन—भाई बन्धु, सगे सम्बन्धी, परिजन—दास-दासी आदि को मार दिये । ऐसा कहकर कई व्यक्ति कटु वचनो से भर्त्सना करते है । कई व्यक्ति दुर्वचनो द्वारा क्रोध पैदा करने की कोशिश करते है, दोष

तज्जंति तालेति ।"

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहि बहूहि इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे जाव[B] तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ सम्मं तितिक्खइ सम्मं अहियासेइ, सम्म सहमाणे सम्मं खममाणे सम्मं तितिक्खमाणे सम्मं अहियासेमाणे रायगिहे नयरे उच्च–णीय–मज्झिम–कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं[44] न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ ।

87– तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी[45] अडइ अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव[A] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेण तमाहारं आहारेइ । तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ

निकालते है, तिरस्कार करते है, लाठी, ईंट आदि से ताडना करते है ।"

किन्तु अर्जुन अनगार उन बहुत से स्त्रियो से, पुरुषो से, बालको से, वृद्धो से, युवाओ से आक्रोशित होते हुए, यावत् ताडित होते हुए उनके प्रति मन मे भी द्वेष नही करते हुए समभाव से सहन करते है । क्षमा करते है । सदीन भाव से सहन करते है । निर्जरा की भावना से शुद्ध अन्त करणपूर्वक क्षमा करते हुए, राजगृह नगर के उच्च–नीच–मध्यम कुलो मे भ्रमण करते हुए उन्हे आहार मिलता तो कभी पानी नही मिलता और यदि पानी प्राप्त होता तो कभी आहार प्राप्त नही होता ।

वे अर्जुन अनगार अदीन, अविमन, अकलुष, (अनाविल), जिसका अन्त करण स्वच्छ है (अविषादि) विषाद-निराशा से रहित (अपरितान्त योगी) थकावट रहित योग समाधि वाले होकर घरो मे परिभ्रमण करते है, घूम करके राजगृह नगर से बाहर निकलते है । निकल कर गुणशीलक नामक बगीचे मे जहा श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, उधर आते है, आकर गौतम स्वामी की तरह उन्हे आहार दिखलाते है । दिखलाकर श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त होने पर अमूर्छित हो, अगृद्ध हो, जिस प्रकार सर्प बिल मे प्रवेश करता है, उसी तरह रागद्वेष के टेढेपन से रहित होकर समभाव मे ग्रहण करते है । कुछ दिनो के पश्चात् किसी दिन श्रमण भगवान महावीर

पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

स्वामी राजगृह नगर से बाहर जनपद मे विहार करते है।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए अप्पाणं झूसेइ झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव सिद्धे ।

अर्जुन अनगार भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त, उत्कृष्ट भावना से अगीकृत, उदार, विपुल, प्रदत्त (प्रग्रहित), महान प्रभाव वाले तप कर्म रूप आचरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए, परिपूर्ण छ महिनो तक साधुवृत्ति का पालन करते है। अर्द्धमास की सलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करते है। तीस भक्त का छेदन करते है, छेदन करके जिस प्रयोजन के लिये साधु जीवन स्वीकार किया था, उसे पूर्ण कर अर्थात् सर्व कर्म विनिर्मुक्त होकर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करते है।

4—14 अध्ययन

काश्यप आदि गाथापति

88— तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, कासवे नाम गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे ।

उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था। गुणशीलक नामक बगीचा था। श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उसी नगर मे काश्यप नामक गाथापति रहता था। मकाई गाथापति की तरह काश्यप गाथापति ने भी सयम जीवन अगीकार कर सोलह वर्ष पर्यन्त उसका पालन कर अन्त मे सभी कर्मों का क्षय करके विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं— खेमए वि गाहावई, नवर—कायंदी नयरी। सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे ।

इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन भी जानना चाहिये। विशेषता इतनी ही है कि काकदी नगरी थी। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[B]– धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए। सोलस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार धृतिधर गाथापति का वर्णन भी जानना चाहिए। काकंदी नगरी थी। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे विपुलाचल पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की।

एवं[C]–केलासे वि गाहावई–नवरं–साएए नयरे। बारस वासाइं परियाओ विपुले सिद्ध।

इसी प्रकार केलाश नामक गाथापति का वर्णन भी समझना चाहिये। विशेष-साकेत नगर था। बारह वर्ष पर्यन्त सयम पर्याय का पालन किया और विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[D]– हरिचंदणे वि गाहावई–साएए नयरे। बारस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार हरिचन्दन गाथापति का भी वर्णन जानना चाहिये। साकेत नगरी थी। बारह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[E]– वारत्तए वि गाहावई–नवरं–रायगिहे नयरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार वारतक नामक गाथापति के विषय मे भी जानना चाहिये। विशेष–राजगृह नामक नगरी थी, बारह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया, विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[F]– सुदंसणे वि गाहावई–नवरं वाणियग्गा मे नयरे दूइपलास चेइए। पंच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति के विपय मे भी जानना चाहिये। विशेष-वाणिज्यग्राम नामक नगरी मे द्युतिपलाश नामक वगीचा था। पॉच वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[G]– पुण्णभद्दे वि गाहावई–वाणियग्गामे नयरे। पंच वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति के विपय मे भी जानना चाहिये। वाणिज्यग्राम नामक नगर था। पाँच वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[H]— सुमणभद्दे वि गाहावई-सावत्थीए नयरीए। बहुवासाइं परियाग्रो। विपुले सिद्धे।

सुमनभद्र गाथापति के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिये। विशेष—श्रावस्ती नगरी थी। बहुत वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[I]— सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थोए णयरीए। सत्तावीसं वासा परियाग्रो। विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार सुप्रतिष्ठित गाथापति के विषय मे भी जानना चाहिये। विशेष—श्रावस्ती नगरी थी। सत्ताईस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

एवं[J]— मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे। बहूहि वासाइं परियाग्रो विपुले सिद्धे।

इसी प्रकार मेघ गाथापति के विषय मे जानना चाहिये। राजगृह नगर था। बहुत वर्ष तक सयम का पालन किया। विपुल पर्वत पर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

15वाँ अध्ययन

पोलासपुर मे गौतम अनगार

८9— तेणं कालेणं तेण समएणं पोलासपुरे नयरे। सिरिवणे उज्जाणे। तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजए नामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी नाम देवी होत्था, वण्णग्रो। तस्स णं विजयस्स रण्णो। पुत्ते सिरीए देवीए ग्रत्तए ग्रइमुत्ते नाम कुमारे होत्था, सुमालपाणिपाए।

षष्ठम वर्ग के चौदह अध्ययनो का अर्थ श्रवण करने पर आर्य सुधर्मा स्वामी के समक्ष जम्बू स्वामी द्वारा पन्द्रहवे अध्ययन का सार जानने की जिज्ञासा व्यक्त करने पर आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

हे जम्बू! उस काल उस समय मे पोलासपुर नामक नगर था। श्रीवन नामक उद्यान था। उस पोलासपुर मे विजय नामक राजा राज्य करता था। उस विजय राजा के श्री नाम की पटरानी थी, जिसकी गुण सपदा का वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार जानना चाहिये। विजय राजा का पुत्र, श्री देवी का आत्मज सुकुमार अगोपाग वाला अतिमुक्तक नामक कुमार था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव[A] विहरइ ।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पोलासपुर के श्रीवन नामक उद्यान मे पधारे ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती अणगारे जहा पण्णत्तीए जाव[B] पोलासपुरे नयरे उच्च जाव[C] अडइ ।

भगवान महावीर के पदार्पण के अनन्तर प्रभु के पट्ट शिष्य इन्द्रभूति अनगार, वेले के पारणे के लिये (भगवती मे वर्णित विषय के अनुसार) प्रभु से आज्ञा लेकर पोलासपुर के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे गोचरी के लिये निकलते है ।

इम च ण अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए बहूहिं दारगेहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए तेहिं बहूहिं दारएहि य संपरिवुडे अभिरममाणे– अभिरममाणे विहरइ । तए णं भगवं गोयमे उच्च जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ ।

इधर अतिमुक्तक कुमार स्नान आदि करके, सर्वविध आभूषणो से विभूषित होकर बहुत से बालक-वालिकाओ, लडके-लडकियो, कुमार-कुमारियो के साथ एकत्रित होकर, घर से निकले, निकलकर जहाँ इन्द्रस्थान था (क्रीडा-स्थल) उधर पहुँचे । वहाँ अपने साथियो से घिरे हुए खेल खेलने लगे ।

उसी समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर मे घरो मे भ्रमण करते हुए, इन्द्रस्थान के, न अति निकट न अति दूर, निकलते है ।

अतिमुक्तक और गौतम अनगार का समागम

90– तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए, भगवं गोयमं एवं वयासी—

तव अतिमुक्तक कुमार भगवान गौतम को इस प्रकार न अति दूर न अति निकट जाते हुए देखते है, देखकर जहा भगवान गौतम थे, वहा आते है । आकर, भगवान गौतम को इस प्रकार कहने लगे–

"के णं भंते! तुब्भे? किं वा अडह?"

"भगवन्! आप कौन है? किस लिए घरो मे भ्रमण कर रहे है"?

तए णं भंते गोयमे अइमुत्त कुमारं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया—समणा निग्गंथा इरिया—समिया जाव गुत्तबंभयारी उच्च जाव[^] अडामो।"

तब भगवान गौतम ने फरमाया—

"हे देवानुप्रिय! हम श्रमण-निर्ग्रन्थ है। इर्यासमिति आदि पाच समिति-तीन गुप्ति महाव्रत, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने वाले है। भिक्षार्थ उच्च-नीच-मध्यम परिवार मे घूम रहे है।"

तए ण अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयम एवं वयासी—

एह णं भंते! तुब्भे जा णं अह तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयम अगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरिदेवी भगव गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण[47]—पाण[48]—खाइम[49] साइमेण पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ।

तब कुमार अतिमुक्तक ने भगवान गौतम को कहा— "हे भगवन्! आप इधर पधारे, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हूँ।" ऐसा कह कर कुमार, भगवान गोतम की अगुली पकड लेता है। पकड कर, जिधर अपना घर (महल) था, उधर ले जाता है। श्री महारानी भगवान गौतम को इस प्रकार आते हुए देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हे। आसन से उठती है, उठकर जहा पर भगवान गौतम थे, वहा पर आती है। भगवान गौतम को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करती है, करके वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके, विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम से प्रतिलाभित करती है और सम्मान पूर्वक उन्हे विदा करती है।

(।)— तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी—

उसके बाद भगवान गौतम को अतिमुक्तक कुमार इस प्रकार कहने लगे—

"कहि ण भते! तुब्भे परिवसह?

'हे भगवन्! आप कहा पर रहते है?"

तए णं से भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरुवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तत्थ णं अम्हे परिवसामो।"

भगवान गौतम ने अतिमुक्तक कुमार को कहा–"हे देवानुप्रिय ! धर्मतीर्थ की स्थापना करने, मोक्ष प्राप्ति की विशुद्ध कामना करने वाले, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक, मेरे धर्माचार्य धर्मगुरू, श्रमण भगवान महावीर स्वामी पोलासपुर नामक नगर के बाहर, श्रीवन नामक उद्यान मे साधुवृत्ति के अनुरुप अवग्रह लेकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे है। वहाँ पर मै रहता हूँ।"

गौतम अनगार के साथ अतिमुक्तक

92– तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-"गच्छामि णं अहं तुब्भेहिं सद्धि समणं भगवं महावीरं पायवंदए।"

तदनन्तर भगवान गौतम से अतिमुक्तक कुमार ने कहा–"भगवन् ! मै आपके साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी को चरण–वन्दन करने के लिये चलना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहिं'।

भगवान गौतम ने फरमाया—

"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को शान्ति हो। वैसा करो। परन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धि जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ जाव[A] पज्जुवासइ।

तब अतिमुक्तक कुमार भगवान गौतम के साथ जिधर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, उधर आते है, आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिणा–प्रदक्षिणा कर, वन्दन–नमस्कार यावत् पर्युपासना करते है।

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए जाव[B] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता संजमेणं तवसा

भगवान गौतम भी जिधर श्रमण भगवान महावीर स्वामी थे, उधर आते है, आकर पारणे के निमित्त लाया हुआ आहार, भगवान महावीर को दिखलाते है, दिखलाकर

अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा।

उसे ग्रहण करते हुए संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगते है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी, अतिमुक्तक कुमार के साथ ही उपस्थित विशाल जनमेदिनि को धर्म कथा श्रवण कराते है।

साधना से सिद्धि तक : अतिमुक्तक अनगार

93– तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! निग्गंथ पावयणं जाव[A] ज नवरं-देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाण अंतिए जाव[B] पव्वयामि।

वह अतिमुक्तक कुमार भगवान के पास धर्मकथा श्रवण कर, विचार कर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए प्रभु से इस प्रकार बोले– "भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, यावत हे देवानुप्रिय! माता पिता से अनुमति प्राप्त कर मैं भगवान के पास दीक्षित होना चाहता हूँ।

अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंध करेहि।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव[C] पव्वइत्तए।

प्रभु ने फरमाया–'हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो किन्तु शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।' तदनन्तर अतिमुक्तक कुमार जिधर अपने माता पिता थे, उधर आते है, आकर माता पिता से दीक्षित होने हेतु अनुमति चाही।

94– तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–"बाले सि ताव तुमं पुत्ता! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता। किं णं तुमं जाणसि धम्मं?"

तब माता पिता ने अतिमुक्तक कुमार को इस प्रकार कहा––

'हे पुत्र! तुम अभी बालक हो!'

'हे पुत्र! तुम अभी असंबुद्ध हो।'

'तुम अभी धर्म तत्व को क्या जानते हो?'

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी–"एवं खलु

तब अतिमुक्तक कुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा–"हे माता पिता! मै जिसको

अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि ।"

जानता हूँ, उसी को नही जानता हूँ, और जिसको नही जानता हूँ, उसी को जानता हूँ।'

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—"कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि जाव[A] तं चेव न जाणसि ?"

तब अतिमुक्तक कुमार को माता पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! तुम कैसे जिसको जानते हो, उसी को नही जानते हो और जिसको नही जानते हो, उसी को जानते हो ?"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

"जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्स मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा कियच्चिरेण वा ? न जाणामि णं अम्मयाओ ! केहि कम्मायणेहि जीवा नेरइयतिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु-उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइय जाव[B] उववज्जंति । एवं खलुअहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामो णं अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुणाए जाव पव्वइत्तए ।"

तब अतिमुक्तक कुमार ने अपने माता पिता को इस प्रकार कहा—"हे माता पिता ! मैं जानता हूँ जैसे—जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यभावी है । किन्तु हे माता पिता ! मै यह नही जानता हूँ कि वह कब किस समय अथवा कहा पर, किस स्थान पर कैसी अवस्था मे आयेगी । मै नही जानता हूँ कि जीव किन कर्मायतनो—किन कर्मबन्ध के कारणो से नारकी, तिर्यच, मनुष्य या देवता मे उत्पन्न होते है । किन्तु हे माता पिता ! मै यह जानता हूँ कि जीव अपने कर्म बन्ध के कारणो से नारकी आदि योनियो मे जन्म लेते है । अत हे माता पिता ! इस प्रकार निश्चय ही मै जो जानता हू, उसे ही नही जानता हू । और जो नही जानता हू, उसे ही जानता हू । हे माता पिता ! अब आपके द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर मैं सयम जीवन अगीकार करना चाहता हूँ ।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएति बहूहिं आघवणाहि जाव[C] तं इच्छामो ते

अतिमुक्तक कुमार को माता पिता, अनेकविध कठोर मृदु वचनो से समझाने का प्रयास करने लगे किन्तु जब वे उसे

जाया। एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणिए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स। निक्खमणं। जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं जाव विपुले सिद्धे।

प्रव्रजित होने से नही रोक सके, तब उन्होने कहा—पुत्र ! हम केवल एक दिन की ही तो राज्य श्री को देखने की इच्छा करते है। तब अतिमुक्तक कुमार माता पिता की इतनी सी बात मानकर उनके दिल को सन्तुष्ट करने के लिये मौन हो बैठे रहे। तब उनका राज्याभिषेक किया गया। जिसका वर्णन महाबल की तरह जानना चाहिये। अतिमुक्तक कुमार ने निष्क्रमण महोत्सव के साथ भगवती दीक्षा ग्रहण की। स्थविर भगवन्तो के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बहुत वर्षो तक श्रामण्य धर्म का पालन किया। गुण रत्न आदि तपश्चरण किया। अन्त मे विपुलगिरि नामक पर्वत पर सभी कर्मो का अन्त कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

16वाँ अध्ययन

अलक्ष

95— तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, परिसा निग्गया। तए णं अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे जहा कोणिए जाव धम्मकहा।

उस काल उस समय मे वाराणसी नामक नगरी थी। उसके बाहर काम महावन नामक उद्यान था। वाराणसी नगरी के नरेश का नाम महाराजा अलक्ष था।

उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगर मे पधारे और नगरी के काममहावन उद्यान मे विराजे। भगवान के पदार्पण का वृत्तात श्रवण कर, नगर निवासी प्रभु के चरणो मे उपस्थित हो गये। भगवान महावीर का समाचार जब अलक्ष नरेश को मिला तो उन्हे बडा हर्ष एव सन्तोष हुआ। वे भी महाराज कोणिक की तरह बडे समारोह के साथ प्रभु के चरणो मे उपस्थित हुए। वन्दन नमस्कार कर नरेश आदि सब के बैठने के बाद प्रभु ने धर्मोपदेश किया।

तए णं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए-जहा उदायणे तहा निक्खंत्ते। नवरं जेट्ठपुत्तं रज्जे अभिसिचइ। एक्कारस अंगाइं। बहू वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ छट्ठो वग्गो सम्मत्तो ॥

इस प्रकार छट्ठे वर्ग के सोलह अध्ययन सुनाने के बाद आर्य सुधर्मा स्वामी, आर्य जम्बू स्वामी को कहने लगे–हे जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के षष्ठम वर्ग के इस प्रकार सोलह अध्ययन फरमाये हैं।

॥ षष्ठ वर्ग समाप्त ॥



जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा —श्रमण भगवान महावीर स्वामी के "आइगरे" विशेषण लगाया गया है कि भगवान महावीर धर्म के "आदिकर" कैसे हुए ? अवसर्पिणी काल मे धर्म के आद्य प्रवर्तक तो ऋषभदेव भगवान है ?

समाधान — जितने भी तीर्थंकर होते है, वे किसी का भी उपदेश नही सुनते और न ही किसी के पास दीक्षा ही ग्रहण करते है। वे स्वत ही दीक्षा ग्रहण करके अपनी साधना द्वारा केवल-ज्ञान, केवलदर्शन, प्राप्त करते है। और प्रत्येक तीर्थंकर अपने काल मे चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते है। श्रुत–चारित्र धर्म का प्ररूपण करते है।

इस अवसर्पिणी काल मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान हुए है। इसलिये अवसर्पिणी काल एव प्रथम तीर्थंकर की अपेक्षा धर्म के 'आदिकर' कहे जाते है। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हुए, किन्तु उन्होने प्रभु ऋषभदेव का उपदेश सुनकर उपदेश नही दिया, अपितु स्वत पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उपदेश दिया था। अत वे भी अपने काल की अपेक्षा धर्म के 'आदिकर' है। इसी प्रकार प्रभु महावीर ने भी स्वत पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, फिर धर्मोपदेश दिया था, अत वे भी उस काल की अपेक्षा धर्म के आदिकर हुए।

यद्यपि धर्म की व्याख्या सभी तीर्थंकर मूलत समान ही करते है किन्तु वे उसका अनुवर्तन नही करते। अत वे सभी धर्म के 'आदिकर' ही होते है।

जिज्ञासा — प्रभु अरिष्टनेमि एव प्रभु महावीर की शासन परम्परा एक समान ही है या उनमे कुछ अन्तर है ?

समाधान — किसी भी तीर्थंकर की शासन परम्परा मे मूलत कोई अन्तर नही होता। निर्दोष दृष्टि से सूर्य को देखने वाले, सूर्य के प्रकाश का एक समान ही वर्णन करेगे। इसी प्रकार पूर्णज्ञानी महापुरूप की व्याख्या यद्यपि स्वतोद्भूत होती है, तथापि सभी के पूर्णज्ञान की समानता के कारण, सभी की व्याख्या मूलत एक ही समान होती है। देश काल की अपेक्षा से व्याख्या के प्रकारो मे अन्तर आ सकता है। भगवान ऋषभदेव एव भगवान महावीर की शासन परम्परा एव आचार व्यवस्था एक समान, और मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो की व्यवस्था एक समान थी।

प्रथम एव अन्तिम तीर्थंकरो के साधक क्रमश ऋजुजड एव वक्रजड होने के कारण व्यवस्था मे पाच महाव्रत बतलाए गए और सफेद कपडो का विधान किया गया।

मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो की शासन परम्परा मे साधक ऋजुप्राज्ञ होने के कारण, चार

महाव्रत बतलाए गये । उसमे चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत को पाचवे अपरिग्रह महाव्रत मे परिगणित कर लिया गया । क्योकि स्त्री को भी परिग्रह मे मान लिया गया । पाचो ही रग के कपडे रखने का भी विधान किया गया ।

इसी प्रकार मध्यवर्ती बाईस तीर्थकरो के शासन काल के साधको को उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक नही था, जब दोष लगता, तभी वे प्रतिक्रमण करते थे । किन्तु प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो के साधको के लिये उभयकाल प्रतिक्रमण एव श्वेत वस्त्र आवश्यक बतलाये गये है । इसी प्रकार के और भी कुछ परिवर्तनो का वर्णन शास्त्रो मे मिलता है ।

ऋजुप्राज्ञ से तात्पर्य जो सरल भी हो और बुद्धिमान भी हो । अर्थात् जो थोडे से मे अधिक समझ जाय उसे ऋतुप्राज्ञ कहते है । ऋजुजड उसे कहते है जो सरल तो हो किन्तु मद बुद्धिवाला हो । अर्थात् जो बार-बार कहने से भी उस बात को पूरी समझ न पावे । वक्रजड उसे कहते है जो कुटिल भी हो और बुद्धि से भी मद हो । अर्थात् जो एक बार कहने पर न तो पूरी बात समझ पावे और साथ ही कुतर्क भी करे ।

जिज्ञासा —उभय कालीन प्रतिक्रमण किस-किस समय करने चाहिएँ ?

समाधान —रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य–उदय होने के एक मुहूर्त पहले प्रारभ कर सूर्योदय तक समाप्त हो जाना चाहिये । दिवस प्रतिक्रमण सूर्य अस्त होने के बाद प्रारभ कर एक मुहूर्त मे समाप्त हो जाना चाहिये ।

कई लोगो का यह कहना है कि दिन का प्रतिक्रमण सूर्य अस्त होने के बाद प्रारभ हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य उदय होने के बाद प्रारभ होना चाहिये, या दिन का प्रतिक्रमण सूर्य अस्त के पहले हो तो रात्रि का प्रतिक्रमण सूर्य उदय होने के बाद होना चाहिए । दिवस और रात्रि का प्रतिक्रमण रात्रि मे ही कैसे हो सकता है ?

इस कथन के पीछे कोई ठोस शास्त्रीय आधार नही है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के समाचारी नामक छब्बीसवे अध्ययन मे साधु समाचारी का वर्णन किया गया है । इसी अध्ययन की आठवी गाथा मे बतलाया है कि–

दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम भाग मे, अर्थात् सूर्य उदय हो जाने पर, गुरूदेव को वन्दन नमस्कार करके, प्रतिलेखन करे ।[1]

इस गाथा के अनुसार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने का विधान किया गया है । यदि

---

[1] पुव्विलम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भण्डय पडिलेहित्ता, वदित्ता य तओ गुरु ॥

रात्रिकालीन प्रतिक्रमण सूर्योदय होने पर प्रारभ होता तो, शास्त्रकार सूर्योदय होते ही प्रतिलेखन करने के लिये नही कहते ।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे प्रतिक्रमण करने का विधान इसी अध्ययन की उन्नीसवी गाथा से स्पष्ट होता है । उसमे यह बतलाया गया है कि–

रात्रिकालीन अन्तिम नक्षत्र के उदय होने पर, प्रत्यूपकाल–सूर्योदय के काल को जानकर, स्वाध्याय से विराम ले । [1]

इधर सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन करना है, उधर रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे स्वाध्याय से विराम लेना है तो फिर उस समय क्या किया जाय ?

इसका विधान गाथा ४४ से ४८ तक की गाथाओ मे किया गया है—

प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय दूसरे प्रहर मे ध्यान, तीसरे प्रहर मे निद्रा और चतुर्थ प्रहर मे पुन स्वाध्याय करे । उस चतुर्थ प्रहर मे काल का प्रतिलेखन कर साधु स्वाध्याय करे ।

चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे गुरूदेव को वन्दन कर, काल का प्रतिक्रमण कर, समय को अच्छी तरह जान ले । सभी दु.खो को नाश करने वाले कायोत्सर्ग को करे । ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप सम्बन्धी रात्रि मे लगे अतिचारो का अनुक्रम से चिन्तन करे ।

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि रात्रि सम्बन्धी प्रतिक्रमण रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे करे । [2]

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे क्या करना चाहिये ? इसका विधान गाथा ३८,३९ मे किया गया है—

दिवस के चतुर्थ प्रहर के चतुर्थ भाग मे काल का प्रतिक्रमण कर शय्या, वस्त्रादि का प्रति लेखन करे । उच्चार प्रस्त्रवण भूमि का प्रतिलेखन करने के बाद सभी दु खो का अन्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।

इतना कार्य सम्पन्न करते-करते सूर्यास्त का समय आ जाता है । उस सूर्यास्त के समय पर क्या करे, इसके लिये ४०,४१,४२,४३ वी गाथाओ मे सकेत दिया गया है ।

---

[1] ज गेइ जया रत्ति, णक्खत्ते तम्मि णह चउब्भाए ।
सम्पत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पयोसकालम्मि ॥

[2] पढम पोरिसि सज्झाय, बिइय झाण झियायई । तइयाइ णिद्दमोक्ख तु, सज्झाय तु चउत्थिए ॥
पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिलेहया । सज्झाय तु तओ कुज्जा, अबोहेतो असजए ॥
पोरिसीए चउब्भाए, वदित्ताण तओ गुरु, पडिक्कमित्तु कालस्स, काल तु पडिलेहए ॥
आगए कायवोस्सग्गे, सव्व दुक्खविमोक्खणे । काउस्सग्ग तओकुज्जा, सव्व दुक्ख विमोक्खाण ॥
राइय च अइयाइ, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो, णाण मि दसण मि य, चरित्तंपि तव मि य ॥

ज्ञान, दर्शन चारित्र के विषय मे लगे दिवस सम्बन्धी अतिचारो का चिन्तन करे। कायोत्सर्ग पूर्ण कर गुरुदेव को वन्दन करे। यथाक्रम से दिवस सम्बन्धी अतिचारो की आलोचना करे। प्रतिक्रमण करके निशल्य होता हुआ गुरुदेव को वन्दना करे। स्तुति-मगल करके काल का प्रतिलेखन करे।

इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्यास्त होते समय प्रारम्भ करना चाहिये।

भगवती सूत्र मे वर्णन आया है कि सध्या के समय साधु आहार कर रहा है। आहार करते करते उसे एकदम सूर्य डूबता हुआ दृष्टिगत हो जाय तो तुरन्त आहार करना बद कर दे।

इसी प्रकार सूत्रकृताग सूत्र मे सूर्य-अस्त तक विहार करने का वर्णन आया है। इन प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण सूर्य-अस्त होने पर प्रारभ किया जाता है। सूर्यास्त के पहले ही प्रारभ करके पूर्ण नही किया जाता है।

जिज्ञासा —प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे प्रहर मे ध्यान और तीसरे प्रहर मे भिक्षा के लिये जाने का विधान शास्त्र मे मिलता है। दशवैकालिक सूत्र मे भी "एकभत्त च भोयण" एक भक्त भोजन का लिखा है। अत स्पष्ट है कि साधक को दिन मे एक बार ही भोजन करना चाहिये, फिर आज के साधक तीन बार क्यो करते है ?

समाधान —वीतराग देव की साधना मे प्रवृत्त होने वाला साधु विचक्षणता से सम्पन्न होना चाहिये। आचाराग सूत्र मे कहा है— कालण्णे" अर्थात् साधु काल को भी जानने वाला हो। काल को जानने का यह भी तात्पर्य है कि भिक्षा का कौनसा काल है ? यह भी जानने वाला हो क्योकि साधु जीवन अगीकार करने के बाद वह पूर्ण ब्रम्हचारी होता है। बम्हचारी पुरुष को भिक्षा आदि के लिये प्रवेश करने का समय भी विदित होना चाहिये। अर्थात् जिस समय ग्रहस्थ के घर भोजन बनता है, उस समय साधु को भिक्षार्थ गहस्थ के घर मे प्रवेश करना चाहिये क्योकि उस समय मे ग्रहस्थ के पारिवारिक सम्य घर मे उपस्थित रह सकते हैं, अत उनकी उपस्थिति मे भोजन की गवेषणा साधु के लिये हितावह है। भोजन का समय समाप्त हो जाने के बाद पुरुष वर्ग प्राय अपने अपने कार्य मे चले जाते हैं। महिला वर्ग मे भी भोजन के पश्चात् शयनादि प्रसग प्राय रहता है, उस समय जो भिक्षा का काल नही, उस काल मे गहस्थ के घर भिक्षा लेने के लिये यदि साधु जाता है तो कई विसगतिया सामने आ जाती हैं। प्रथम तो यह कि गृहस्थाश्रम मे रहने वाली बहिनें भोजनोपरान्त प्राय दरवाजा बद करके शयन करती हैं। ऐसे समय मे दरवाजा खुलवाने का प्रसग आ सकता है। उस दरवाजा खुलने से भी यदि चुलिये वाला कपाट है तो उसे नही खुलवा सकता, क्योकि ऐसे कपाट मे हिंसादि का प्रसग रहता है।

कब्जे का कपाट खुलवाने मे या तो कपाट खटखटायेगे या फिर आवाज लगायेगे, जिसमे शयन करती हुई बहिने जगेगी, भोजनादि के लिये द्वार खोलेगी । उस वक्त कई बहिनो को अटपटा भी लग सकता है । वह सोच सकती है कि साधु इस वक्त भिक्षा के लिये क्यो आया, साधु को भिक्षा के समय ही आना चाहिये । असमय भिक्षा के लिये आया देखकर, उसके जीवन के विषय मे भी शका उठ सकती है । एसे समय बहिने दरवाजा खोलने मे दु ख का अनुभव करेगी और एकाकी बहिन के घर मे रहते साधु भिक्षा ग्रहण भी नही कर सकता । जबकि एसे समयो पर एकाकी बहिन ही अधिक स्थानो पर मिलेगी । यह तो एक अपेक्षा है । इसी प्रकार अन्यान्य प्रसग भी उपस्थित हो सकते है । अन्य मतावलम्बियो के उपर भी कुप्रभाव पड सकता है । इसीलिये भगवान ने बतलाया कि "काले काले समायरे" । साधु जिस समय भिक्षा का काल हो उसी समय भिक्षा के लिये जावे । अर्थात् जिस समय घरो मे भोजन बनता है, उसी समय साधु को गोचरी के लिये घरो मे प्रवेश करना चाहिये । जिस समय ग्रहस्थो के घर मे भोजन बनता हो, उसका ज्ञान साधुओ को होने से वह यह जान जाता है कि ग्रहस्थ लोग मध्यान्ह मे भोजन करते है, वे दिन मे एक समय भोजन बनाते है, तो साधु को वहा पर एक वक्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिये और जब मध्यान्ह मे भोजन कर लिया तो फिर सन्ध्या मे भोजन की स्थिति नही रहती है । दशवैकालिक सूत्रगत "एगभत्त च भोयण" दिन मे एक वक्त भोजन करने वाले यह उपर्युक्त क्षेत्र, काल की अपेक्षा से समझना चाहिये । ऐसी अवस्था मे साधु के दैनिक जीवन का कार्यक्रम भोजन के समय को देखकर बन जाता है । क्योकि उसे ज्ञान रहता है कि, तृतीय प्रहर मे भोजन मिलेगा । जहा साधक शेपकाल या चातुर्मास मे रहता है, वहा भोजन से पहले के दो प्रहर का सयमानुष्ठान मे उपयोग करता है । इस दृष्टि से प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान करने के बाद तीसरे प्रहर मे भिक्षा का प्रसग आता हे । जिन क्षेत्रो मे गृहस्थ के जीवन मे परिवर्तन आता है और प्रथम प्रहर मे अल्पाहार आदि गृहस्थ ग्रहण करता है और मध्यान्ह के समय भोजन करता है, तो उन क्षेत्रो की दृष्टि से साधक भी "काले काले समायरे"—प्रभु के इस निर्देश मे अपनी आवश्यकतानुसार प्रथम प्रहर मे भी ग्रहस्थ के घर पर अल्पाहार आदि के लिये जा सकता है । क्योकि वह अल्पाहार का काल है । उदाहरण के रूप मे गुजरात के निवासी प्राय भाई-बहन प्रथम प्रहर मे नास्ता पानी लेते है, मध्यान्ह मे भोजन करते है ।

किसी अन्य प्रदेश मे प्रात अल्पाहार, द्वितीय प्रहर मे भोजन बनता हो और मध्यान्ह मे भाजन का कोई कार्यक्रम नही रहता हो, और फिर सध्या के समय तिविहार—चौविहार रखने वाले गृहस्थ सूर्यास्त के पहले भोजन करने की स्थिति मे हो तो साधु के लिये भी उस क्षेत्र की दृष्टि मे तीनो समय भिक्षा का काल हो सकता है । आवश्यकतानुसार वह तीनो काल मे भी

यदि भिक्षा के लिये जाता है तो वह "काले काले समायरे"—शास्त्रीय पाठ का उलघन नही करता। किन्ही की आवश्यकता तीन काल की न हो तो, वह एक या दो बार से भी अपना काम चला सकता है। यह सब साधक के उपर निर्भर है, किन्तु यह स्पष्ट है, कि तीन बार भिक्षा के लिये जाने वाला साधक भी भगवान की आज्ञा के अनुसार ही चलता है।

जिज्ञासा हो सकती है कि साधु कभी दूसरे प्रहर और सध्या को ही गोचरी के लिये जावे–प्रात नही जाय तो क्या बाधा है? इसका समाधान यह है कि बाधा तो कुछ भी नही, दो-तीन बार जाना भी उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि वह तीन बार भी जाता है तो शास्त्रीय आज्ञा से विपरीत नही करता, क्योकि शास्त्रकारो ने साधु के लिये यह बतलाया कि साधु प्रथम प्रहर का आहार चतुर्थ प्रहर मे न ले–"जे ण निग्गथे वा जाव साइय पढमा पोरिसीए पडिगाहित्ता पच्छिम पोरिसि उवायणावेत्ता आहार आहारेति एसण गोयमा। कालित्तिक्कते पाण भोयणे।" भाग ७,२

यदि साधु को प्रथम प्रहर मे लेने का ही प्रसग न होता तो प्रथम प्रहर का लाया आहार चतुर्थ प्रहर मे काम मे नही लेता, तो इस कथन की आवश्यकता नही थी। अत इस कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणवर्ग प्रथम प्रहर मे आवश्यकतानुसार आहार ग्रहण करता है। उस प्रथम प्रहर मे लाए हुए आहार मे से अवशेप रह जाय तो चतुर्थ प्रहर के पहले-पहले काम मे ले लेना चाहिये। इस विधान से यह स्पष्ट हो जाता है कि "एगभत्त च भोयण" यह पाठ त्रैकालिक नही है, किन्तु तत्कालीन और प्रादेशिक स्थिति से है।

जिज्ञासु को यह भी जिज्ञासा हो सकती है कि आवश्यक सूत्र के अनुसार प्रथम प्रहर मे आहार लेना शास्त्र से विपरीत नही है, तो चतुर्थ प्रहर मे आहार लेना शास्त्र सम्मत कैसे?

इसका समाधान यह है कि शास्त्रकारो ने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार साधक को दिन के समय भिक्षादि ग्रहण करने मे कोई एकान्तिक नियम नही बताया है, वह कदाचित् विहार करता हुआ एक गाव से दूसरे गाव मे जा रहा है, तो विहार मे ही कभी एक या दो प्रहर व्यतीत हो जाते है तो उस स्थिति मे प्रथम प्रहर को स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर मे ध्यान का प्रसग गौण बन जाता है। किन्तु आहार उसे करना ही होता है, अत उस समय यदि मर्यादा मे कोई दोप न लगता हो एव गृहस्थ वर्ग मे भी भ्रान्ति तथा साधु के प्रति अविश्वास पैदा न होता हो तो दिन के किसी भी समय आहार ला सकता है। इस विषय मे भगवती सूत्र शतक सात, उद्देशक एक मे उल्लेख आया है—

"गोयमा! जे ण निग्गथो वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण–पाण–खाइम-साइम–अणुग्गत्ते सूरिए पडिग्गाहित्ता उग्गते सूरिये आहार आहारेति एस ण गोयमा खेतातिक्कति

पाण भोयणे ।"

उपर्युक्त पाठ मे स्पष्ट उल्लेख है कि साधु सूर्योदय से पूर्व आहार ग्रहण करके, सूर्योदय के बाद आहार करता है तो वह क्षेत्रातिक्रान्त पान भोजन कहलाता है । यदि वह सूर्योदय के बाद मे आहार लाकर काम मे लेता है तो क्षेत्रातिक्रान्त दोष नही लगता ।

उपर्युक्त पाठ से भी जिज्ञासा हो सकती है कि सूर्योदय मे पूर्व साधु आहार कैसे लाता है ? समाधान यह है कि कभी पहले दिन साधु को आहार का सयोग नही मिला, लम्बा विहार भी हुआ, सूर्यास्त हो जाने से उस दिन आहार लाने का प्रसग नही आया और इधर दूसरे रोज फिर लम्बे विहार का प्रसग है । वैसी स्थिति मे बादल आदि होने से कभी साधु को सूर्योदय से पूर्व ही सूर्योदय की भ्रान्ति हो जाय और उसी भ्रान्ति मे वह सूर्योदय से २–४ मिनिट पहले गृहस्थ के घर से आहार–पानी ले आता है, काम मे लेने के लिये बैठ भी जाता है और इधर अचानक ही बादल बिखर गए तब उसे यह दिखलाई दे कि सूर्य अब उदय हो रहा है, तो उस लाये आहार को ग्रहण न करे, किन्तु योग्य स्थल पर परठ दे । ग्रहण करने पर क्षेत्रातिक्रान्त दोष लगता है ।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि सूर्योदय होने के बाद लाया गया आहार ग्रहण करता है तो उसे दोष नही लगता है ।

अत मूल पाठ से यह फलित होता है कि प्रथम प्रहर मे भी साधु आहार ग्रहण कर सकता है, जो कि भगवती सूत्र से प्रमाणित है ।

इसी प्रकार सध्या के समय भी कभी बादलो के कारण सूर्यास्त का ज्ञान नही हो पाया । सूर्यास्त मे विलम्ब है । ऐसा समझकर आहार करने के लिये साधु बैठ गया । (आज की तरह पूर्व मे घडियो के साधन उपलब्ध नही थे । आज भी सब जगह ये साधन उपलब्ध नही होते) इधर आकाश मे बादल या धूलि है और उसको ज्ञात हुआ कि सूर्यास्त हो रहा है, तो साधक उसी समय मुह का नवाला भी मुह से निकाल ले तथा अवशेष आहार को विधिवत् परठ कर सध्याकालीन प्रतिक्रमण मे सलग्न हो जाय । यही विषय भगवती सूत्र के मूलपाठ मे गौतम स्वामी की जिज्ञासा का समाधान करते हुये भगवान ने स्पष्ट किया है ।

अत स्पष्ट है कि साधक चतुर्थ प्रहर की समाप्ति के पहले-पहले आहार-पानी ग्रहण करता है, वह आगम सम्मत है । इन प्रमाणो से यह भलि-भाति स्पष्ट है कि साधक अपनी आवश्यकतानुसार सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त के पहले-पहले आहारादि की गवेषणा और उपयोग कर सकता है ।

इसका तात्पर्य यह नही है कि साधु सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक निरन्तर आहार लाता

ही रहे और खाता रहे । ऐसा करने वाला योग्य साधक नही होता । साधु ने आहार-पानी के लिये साधु जीवन नही लिया है, किन्तु साधु जीवन की आराधना के लिये आहार-पानी लेता है । साधक आहारादि की मात्रा का भी ज्ञाता होता है । इसलिये आचाराग मे साधु को "कालण्णे" के वाद "मायण्णे" भी कहा है ।

निष्कर्ष यह है कि सयमी जीवन निर्वाह करने हेतु २४ घण्टो मे कितना आहार चाहिये । उस परिमाण को जानकर साधक को "काले-काले समायरे" के निर्देशानुसार आहार को ग्रहण कर अन्य समय का कार्यक्रम सयम साधना के लिये निर्धारण करना, साधु जीवन के लिये योग्य है । विहार के प्रसग पर, विहार के समय अतिरिक्त दिन के समय का यथास्थान विभाग करके आहारोपरान्त समय मे ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा आदि साधना मे लग सकता है । रात्रि मे भी प्रतिक्रमण के पश्चात् तथा आवश्यकतानुसार निद्रा के अतिरिक्त समय मे साधना के लिये पर्याप्त समय मिल सकता है । ऐसे तो उभय कालीन प्रतिक्रमण भी साधना का अग है । सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन किया जाय तो विवेकशील साधक के लिये चौवीस ही घण्टे साधना की श्रेणी मे आते है ।

अतएव "एगभत्त च भोयण" पाठ की बात को लेकर जो जिज्ञासा व्यक्त की है, उसका समाधान उपर्युक्त मूल प्रमाणो से सुस्पष्ट है ।

जिज्ञासा —सुदर्शन श्रमणोपासक ने घर से ही प्रभु के दर्शन क्यो नही कर लिये, क्योकि प्रभु तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे ?

समाधान —यह सत्य है कि प्रभु सर्वज्ञ—सर्वदर्शी थे । वे सुदर्शन श्रमणोपासक के वन्दन को जान सकते थे, देख सकते थे । किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक प्रभु को नही देख सकता था । इसलिए वह प्रभु के दर्शन करने के लिये गया । यदि उस समय मे भी मूर्ति का वहुत प्रचलन होता, जैसा कि आज देशवासियो मे देखा जाता है, तो सुदर्शन श्रमणोपासक के माता पिता उन्हे मूर्ति के दर्शन करके आत्म सन्तुष्टि कर लो, ऐसा कह देते, लेकिन ऐसा नही कहा । क्योकि उस समय कोई भी प्रभु की मूर्ति नही थी । वैसे भी मूर्ति को कही भी शास्त्रो मे मोक्ष के लिए विधि रुप से उपयोगी नही वतलाया गया है ।

जिज्ञासा :—अर्जुनमालाकार के सामने, श्रेणिक सम्राट की विशाल सेना भी कुछ नही कर सकी, ऐसी स्थिति मे सुदर्शन श्रमणोपासक ने उसे कैसे परास्त किया ?

समाधान :—शक्ति दो प्रकार की होती है । एक भौतिक शक्ति और दूसरी आध्यात्मिक शक्ति ।

अर्जुनमाली के पास दैविक सम्वन्धी भौतिक शक्ति थी । वह इतनी वलवान थी कि राजा की सेना भी उसका कुछ भी नही विगाड सकती । किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक के पास आत्मिक

रूप आध्यात्मिक शक्ति थी, जिसके सामने बडी से बडी भौतिक शक्ति भी झुक जाती है।

दशवैकालिक सूत्र मे स्पष्ट कहा है—

धम्मो मगलमुक्किठ, अहिसा सजमो तवो ।
देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सयामणो ।।

अहिसा, सयम, और तप रूप धर्म, मगल और उत्कृष्ट है। जिस किसी व्यक्ति का मन ऐसे धर्म मे लग जाता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

उस सुदर्शन श्रमणोपासक का मन धर्म मे ओत-प्रोत था। उसके रग-रग मे प्रभु के प्रति पूर्ण आस्था समाहित थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह था कि मृत्यु का यमदूत, अर्जुनमाली से सत्रस्त स्थान की ओर से वह सुदर्शन प्रभु के दर्शन करने के लिये रवाना हो गया।

जिसके मन मे इतनी धर्म के प्रति आस्था होती है, उसमे आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। एसी शक्ति के सामने ससार की कोई भी भौतिक शक्ति नही टिक सकती।

कारण था कि सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने भौतिक शक्ति नही टिक सकी।

जिज्ञासा — मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली पर प्रसन्न होकर उसके सकट को समाप्त किया तो क्या भेरू-भवानी आदि देवो की आराधना करने से सकट समाप्त हो सकता है?

समाधान —भेरू-भवानी आदि देवो का वास्तविक स्वरूप समझ कर उसकी आराधना की जो विधि है, उसमे एकावधानता ले आता है तो वह भेरू-भवानी आदि देव उसके सामने उपस्थित हो सकते है। पर आजकल जो कल्पित स्वरूप आम जनता मे प्रचलित है, वह वास्तविक भेरू-भवानी का नही है, क्योकि देव योनि के जितने भी देव है, उनके नाम चाहे कुछ भी हो, वे सभी वैक्रिय शरीर वाले होते है। वैक्रिय शरीर वाले देव इच्छित वैक्रिय रूप बना सकते है, परन्तु सच्चे रूप मे देव सज्ञा को प्राप्त नही कर सकते। जो वास्तविक देव नही है उनको देव कहना, मिथ्यात्व की परिधि मे आता है। मिथ्यात्वी पुरुष जब देव के स्वरूप को नही समझता, तो उसको उसके आराधक की विधि भी ज्ञात नही हो पाती। अविदित विधि से यदि कोई व्यक्ति अव्यवस्थित रूप से आराधना करता है और कभी काकतालीय को न्याय दृष्टि से कुछ हो जाता है तो वह, एक सयोग ही समझना चाहिये। ऐसा प्रसग आजकल क्वचित मिल भी सकता है। पर वह प्रयोग विधिवत नही है। यही कारण है कि आजकल भी देवो-देवताओ के नाम पर, भेरु-भवानी की बहुतेरी कल्पना चलती है, परन्तु उनकी भक्ति करने वालो की अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति प्राय नही वत् होती है। किन्तु वास्तविक देव की आराधना सही विधि से की जाती है तो उसकी आराधना से देव उपस्थित भी होता है। जैसे कि शान्तिनाथ भगवान की आत्मा, पहले चक्रवर्ती पद पर थी, उस चक्रवर्ती पद की पूर्ती हेतु देव आराधना के

लिये उनकी आत्मा ने तेले किये थे, तब देव उपस्थित हुआ था, और वह उनके कार्य मे सहायक भी हुआ। पर वह विधि अति कठिन होती है। आज का मानव उस प्रकार की विधि साधने मे प्राय अक्षम होता है। क्योकि तीन दिन तक अन्न पानी आदि समग्र खाने पीने की वस्तुओ का त्याग कर बाह्य जगत से दृष्टि को मोडकर निरतर तीन रोज तक एकावधानता के साथ देव आराधना करना प्राय अशक्य है।

अर्जुनमाली का जो प्रसग सामने है, वह एक सयोग ही कहा जा सकता है। क्योकि वैक्रिय शरीर मे रहने वाले यथार्थ देव जो चचल प्रकृति के है, वे अपनी पूजा–प्रतिष्ठा भी चाहते है, तथा वे तिर्यकलोक मे भी समय–समय पर परिभ्रमण करते रहते है। आम जनता अन्धभक्ति से किसी को भी देव का कल्पित रूप बना कर पूजा–प्रतिष्ठा करने लगती है।

उस समय सयोगवश कभी वह देव परिभ्रमण करता हुआ वहा आ गया, तो वह उस स्थान को अपने लिए प्रतिष्ठा का स्थान समझ कर उस पर अपना आधिपत्य रखने लगता है। वह आधिपत्य रखने वाला देव यदि शक्ति सपन्न है तो उस स्थान को अन्य के प्रतिष्ठा का स्थान नही बनने देता। लेकिन वह देव सदा उसी कथित स्थान पर ही रहता हो, यह आवश्यक नही है। परन्तु उस स्थान पर अन्य देव आधिपत्य न जमाले, इसका वह अदृश्य रह कर भी ध्यान रखता है।

अर्जुनमाली का जो प्रसग घटित हुआ, वह मन की अत्यधिक एकाग्रता का स्वरुप था और उस वक्त मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा प्रतिष्ठा समाप्त होने ही वाली थी, कि देव का उपयोग इस ओर आकर्षित हुआ, तब देव ने अर्जुनमाली की सहायता कर दी। इससे यह फलित नही होता कि सर्वत्र ऐसा ही होता है।

जिज्ञासा .—'अर्जुनमाली ने यक्षोन्माद मे कितने पुरुष एव स्त्रियो की हत्याए की ?'

समाधान —श्रेणिक चरित्र मे ऐसा बतलाया गया है कि अर्जुनमाली का यक्षोन्माद पाच मास तेरह दिनो तक रहा। एक दिन मे ६ पुरुष, एक स्त्री के गणित से अर्जुनमाली ने ११४१ व्यक्तियो का प्राणान्त किया। जिनमे ९७८ एव १६३ स्त्रिया थी।

जिज्ञासा — ११४१ प्राणियो की हत्या करके अर्जुनमाली ६ महिने की साधना मे ही मुक्तिगामी कैसे हो गया, जबकि पचेन्द्रिय घात, नरकायु का बधन कराने वाला है ?

समाधान —अर्जुनमाली के सामने जब असहनीय अत्याचार हो रहा था, उस वक्त उसके मन मे अनीति के प्रतिकार की तीव्र भावना बनी और वह उन सातो को समाप्त करना चाहता था। किन्तु वह परवश था। क्योकि ललिताग गोष्ठी ने उसे अवकोटक बधन से बाध रखा था। इसलिये उस वक्त, उनका, वह कुछ भी नही कर पाया। किन्तु मन मे आक्रोश चल

चल रहा था, उस अनीति का प्रतिकार करने के लिये उसके मन मे इतनी एकाग्रता बन गई कि जिससे वह उस यक्ष के विषय मे भी कुछ विपरीत सोचने लगा। सयोगवश यक्ष भी अर्जुनमाली की इस स्थिति को समझ गया और वह उसकी भावना के अनुरूप मदद करने का तत्पर हो गया। यक्ष ने अपनी शक्ति का प्रयोग अर्जुनमाली की शक्ति के साथ सम्बन्धित किया। परिणामस्वरुप अर्जुनमाली की वह शक्ति कई गुणी अधिक बढ गई और उसने, उसी के परिणामस्वरुप, मुद्गर को उठा लिया और नाना प्राणियो का घात कर दिया। तद्नन्तर अन्य हिंसाओ का प्रसग भी लम्बे समय तक चालू रहा।

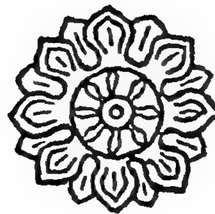
प्रकरण मुख्यत अर्जुनमाली का है, क्योकि अनीति के प्रतिकार करने का सकल्प उसी मे जगा और उसने अपने सकल्प की शक्ति को यक्ष की मदद से साकार कर दिया। पर यह जो हिंसा थी वह मनुष्यो को मारने की भावना से नही थी, किन्तु अनीति का प्रतिकार करने के लिये अन्य कोई उपाय, उसके ध्यान मे नही था।

जब कोई पुरुष अनीति का प्रतिकार करता है, तब वह सकल्पी हिंसा का सहारा न लेकर विरोधी हिंसा का अवलम्बन लेता है। इस प्रकार के परिणामो मे दीर्घकाल निकाचित बधन की स्थिति नही बनती। अत नरकायु का बधन नही होता। कदाचित् कुछ बनती भी है तो वह दीर्घकाल की नही अल्पकालीन होती है। यही कारण है कि दीक्षा लेने के पश्चात् लगभग छ मास मे ही अन्य कर्मो के साथ इस प्रकार से सम्बन्धित कर्मो को क्षय कर अर्जुनमाली की आत्मा ने मोक्ष (सिद्धि) को वर लिया। रहा प्रश्न मुद्गरपाणि यक्ष का। मुद्गरपाणि यक्ष ने अनीति के प्रतिकार मे सहायता दी, इससे विरोधी हिंसा का पाप तो यक्ष को भी लगा, परन्तु समग्र पाप यक्ष के भाग मे नही जाता है। जो मूल पाठ मे यक्ष का उल्लेख "तए ण जे मोग्गरपाणि जक्खे त पल सहस्स निप्फन्न अयोमय मोग्गर उल्लालेमाणे[2] जेणेव सुदसणे " आता है, वह यक्ष की शक्ति की प्रधानता का द्योतक है, और शक्ति प्रदर्शन भी अपने भक्त की मदद के लिये किया था। अतएव मुख्यकर्ता अर्जुनमाली एव सहायककर्ता यक्ष था। यह विषय यद्यपि इस रुप मे मूल पाठ मे स्पष्ट नही मिलता, फिर भी मूलपाठ मे अविरुद्ध फलित होता है। यदि ऐसा अर्थ नही लिया गया तो कई विसगतिया आयेगी तथा अर्जुनमाली के मोक्ष प्राप्ति की स्थिति भी युक्तिसगत नही बैठ पाऐगी। अगर यक्ष को प्राणियो को खत्म करना था, तो वह अर्जुनमाली के सकल्प के पहले ही खत्म कर देता। एव अपनी वैक्रिय लब्धि मे अन्य भी कार्य कर देता, पर यक्ष ने ऐसा नही किया। उसने तो अर्जुनमाली के सकल्प के अनुरूप सहायता की थी। यही कारण है कि अर्जुनमाली की सीमान्तर्गत ही यह कार्य चालू रहा।

जिज्ञासा हो सकती है कि पाप तो छ पुरुषो ने किया, बेचारी स्त्री ने क्या किया, जिससे कि उसे भी खत्म कर डाला गया वह तो बेचारी विवश थी और उन लोगो से कैसे बच पाती, उस पर तो बलात्कार किया गया था ? इसका समाधान यह है कि अर्जुनमाली के भीतर मे यह सकल्प भी जगा कि ये छ पुरुष तो दुष्ट है ही पर मेरी पत्नी भी निर्दोष नही रही। यदि इसमे पतिव्रत धर्म–सतित्व होता तो अपनी जिव्हा को खीच कर समाप्त हो सकती थी। पर जोतेजी इन दुष्टो के विषय का शिकार नही बनती। लेकिन इसने वैसा नही किया है। अत यह भी दोष की भागिनी है। रहा प्रश्न सात के अतिरिक्त नागरिक स्त्री पुरुषो का। अर्जुनमालो के मन मे उन नगर निवासियो के प्रति भी सकल्प चल रहा था। ऐसे पुरुषो का नगर निवासियो ने प्रतिकार नही किया और इन्हे पनपने दिया, यह इनकी प्रारभिक हरकत नही है, इसके पूर्व मे भी इन्होने अत्याचार किया है। इसलिये यह इतने अभ्यस्त है कि यक्ष मन्दिर मे भी अत्याचार करने मे नही चूके। इनको इतना अभ्यस्त बनने देना, तथा सशक्त प्रतिकार नही करना, यह जन एव जननायक का प्रकारान्तर से इस अत्याचार को पोषण देना है, इसलिए ये भी अपराधी है। उनको दण्ड देना भी उसने सकल्पित कर लिया था, अतएव उनको भी समाप्त करने का प्रयास चालू रहा।

जिज्ञासा —"पाण" से क्या लेना चाहिए ?

समाधान —"पाण" से केवल पानी लेना चाहिए। दुग्धादि पेय पदार्थ पानी मे नही लिए जा सकते। क्योकि वे अन्न की तरह पुष्टिकारक होते है, अत वे असण मे लिए जाते है।"



सत्तमो वग्गो . सप्तम वर्ग

उत्थानिका :

सातवे वर्ग मे तेरह अध्ययन बतलाए गये है ।

तेरह ही अध्ययन तेरह रानियो के नाम से है ।

उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था, गुणशील नामक बगीचा था। नगर का सम्राट श्रेणिक था। वे तेरह ही रानिया, राजा श्रेणिक की पत्निया थी। श्रमण भगवान महावीर का उपदेश श्रवण कर सभी को वैराग्य हो गया। सम्राट श्रेणिक से आज्ञा प्राप्त कर पद्मावती रानी की तरह सभी रानियो ने सयम जीवन अगीकार किया। सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया। अन्त मे सभी ने कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

सत्तमो वग्गो : सप्तम वर्ग

1-13 अध्ययन

नन्दा-नन्दवती आदि—साधना से सिद्धि तक

96- जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

'हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के छट्ठे वर्ग का जो अर्थ बताया, उसे मैने श्रवण किया । उन्ही मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर ने सातवे वर्ग का क्या अर्थ फरमाया है ?'

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

संगहणी गाहा—

1. नंदा तह, 2. नंदवई, 3. नंदुत्तर, 4. नंदिसेणिया चेव । 5. मरूत्ता, 6. सुमरूत्ता, 7. महामरूत्ता, 8. मरूदेवा य अट्ठमा ॥1॥
9. भद्दा य, 10. सुभद्दा य, 11. सुजाया, 12. सुमणाइया । 13. भूयदिण्णा य वोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइं ॥2॥

आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

'हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन फरमाये है—
उनके नाम इस प्रकार है—

१ नदा, २ नदवती, ३ नदोत्तरा, ४ नदश्रेणिका, ५ मरुता, ६ सुमरुता, ७ महामरुता, ८ मरुद्देवा, ९ भद्रा १० सुभद्रा, ११ सुजाता, १२ सुमनायिका १३ भूतदत्ता ।

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते !

'हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्ठम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन वतलाए है, तो हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन मे प्रभु ने

अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

क्या फरमाया है ?'

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेण समएण रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया, वण्णओ । तस्स णं सेणियस्स रण्णो नदा नामं देवी होत्था–वण्णओ । सामी समोसढे, परिसानिग्गया । तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए[51] लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ । जहा पउमावई जाव एकारस अंगाइ अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा ।

एवं तेरस वि देवीओ नंदा–गमेण नेयव्वाओ ।

हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नामक नगर था, गुणशील नामक बगीचा था, श्रेणिक राजा राज्य करता था । उस श्रेणिक राजा के सर्वगुण सपन्न नदा नाम की महारानी थी । एक बार नगर मे श्रमण भगवान महावीर पधारे । नगर निवासी दर्शनार्थ प्रभु की सेवामे पहुँचे । नदा महारानी भी इस वृत्तान्त को श्रवण कर बहुत प्रमुदित हुई । अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । उन्हे रथ सजाने का आदेश दिया । पचम वर्ग मे वर्णित पद्मावती रानी की भाति प्रभु की सेवा मे उपस्थित हुई । समवसरण की रचना हुई । प्रभु ने उपदेश दिया । उपदेश श्रवण कर प्रमुदित होती हुई जनता अपने स्थान को लौट गई । पद्मावती रानी की तरह ही प्रभु का उपदेश श्रवण कर इन्हे भी वैराग्य उत्पन्न हो गया । प्रभु के पास पद्मावती की तरह दीक्षा अगीकार कर ली । ग्यारह अगो का अध्ययन किया । बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया, अन्त मे सलेखना सथारा द्वारा सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की । नन्दावती आदि १२ राजरानियो का वर्णन भी नन्दा देवी की तरह ही जानना चाहिये ।

।। सत्तमो वग्गो सम्मत्तो ।।

।। सप्तम वर्ग समाप्त ।।

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा — सथारा करना क्या आत्म-हत्या नही है ?

समाधान —वीतराग देव की आज्ञानुसार विधिवत् सथारा करना आत्म-हत्या नही, बल्कि आत्मरक्षा है। विधिवत सथारे से तात्पर्य यह है कि जिसको निश्चय ज्ञानियो के माध्यम से यह ज्ञान हो जाय कि मेरी आयुष्य इतनी ही है। ऐसी अवस्था मे वह चिन्तन करता है कि आयुष्य के समाप्त होते ही यह आत्मा अवश्य शरीर से विलग होने वाली है। इस शरीर के सरक्षण का फल आत्मशुद्धि मे नियुक्त करना है। किन्तु शरीर आयुष्यबलप्राण पर निर्भर है। आयुष्यबलप्राण की अवधि आते ही, इस शरीर को तो अवश्य छोडना होगा। इसको आयु की अवधि तक बलवान रखे तब भी जायगा, और कृश बनाए तब भी जाएगा। बलवान रखने पर आत्मा की शुद्धि जितनी होनी चाहिए वह नही हो पाएगी। यदि इस शरीर को आत्मा की सुशुद्धि के लिए विधिवत नियोजित कर दिया जाय तो शरीर कृश अवश्य होगा, पर आत्मा की नशुद्धि हो जाने से आत्मा के आवृत गुण, अनावृत होने लगेगे। अतएव इस शरीर से आत्मा के अधिक गुण प्रकट कर लेना सर्वथा उपयुक्त है। इस हेतु, विधिवत् सलेखना स्वीकार करके चलने वाला साधक कषाय को कृश बनाने के साथ-साथ शरीर को भी कृश बनाता है। सिर्फ शरीर को ही कृश बनाने का उद्देश्य नही रहता। पर शरीर के माध्यम से कषाय को कृश करना, प्रमुख हेतु है। अतएव कषाय की कृशता का सम्बन्ध शरीर की स्थिति के साथ भी जुडा हुआ है। अत कषाय को कृश करने के लिये सलेखना की जाती है। इस प्रकार की साधना करते हुए, जब आयुष्य के क्षण सन्निकट आ गए हो, ऐसी निर्धारित जानकारी के आधार पर साधक सोचता है कि यथाशक्ति इस शरीर से जितना काम लेना शक्य था, लिया जा चुका है। अब यह अमुक समय के पश्चात् आयुष्य की समाप्ति के साथ समाप्त होने वाला है। अब इससे आत्मशुद्धि सम्बन्धी विशेष लाभ होने वाला नही है। अत जिस रत्नत्रय की अभिवृद्धि के लिये इसको धारण कर रखा था, उस अभिवृद्धि के हेतु जो शरीर धारण करने की भावना थी, वह भावना भी एक दृष्टि से उस शरीर के ग्रहण की थी। हालाकि उसमे आसक्ति के अश को भी निवृत करने का प्रयास था, पर जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र के हेतु, प्रसस्त राग के अन्तर्गत, शरीर राग का जो सम्बन्ध है, उसको जाग्रत अवस्था मे, पूर्ण सावधानी के साथ परित्याग कर लेने पर आत्मा के गुणो का इस शरीर के माध्यम से अधिक विकास का प्रसग बनता है।

उस गुण विकास को लक्ष्य मे रखते हुए सथारा ग्रहण किया जाता है। वह आत्म हत्या

नही किन्तु आत्म सरक्षण है। आत्महत्या तब मानी जाती, जबकि कलुषित भावना के साथ शरीर को छोडा जाता है। उस अवस्था मे शरीर छोडने मे तो कोई विशेष अन्तर नही रहता पर कलुषित भावो से जितने भी आत्मा के विकसीत गुण हे, वे पाप कर्म के बधन से आवृत हो जाते है। ऐसे प्रसग पर प्राय कलुषित भाव की तीव्रता होती है। उसमे कर्म बन्धन भी निकाचित होने का प्रसग रहता है, निकाचित-कर्म बधन के रूप मे आत्मा के गुणो को दबाने रूप घात होने से ऐसी मृत्यु, आत्महत्या की कोटि मे आती है, किन्तु सथारा इसमे सर्वथा भिन्न है।

सथारा के समय मे कलुषित भाव नही होते, बल्कि अकलुषित प्रशस्त भाव होते है, उसमे भी जो शरीर के साथ रत्नत्रय हेतु टिकाने का प्रशस्त रागाश है, वह भी उस समय निवृत होता है। उस निवृति मे आत्मिक गुणो के विकास का जो स्वरूप है, वह कर्मो के कटने से है। अतएव वह आत्महत्या नही, आत्म सरक्षण है। उस अवस्था मे पूर्व के राग-द्वेष युक्त वर्ताव का भी शमन होता है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव की साधना बढती है। इसलिये इस सथारे रूप आत्म सरक्षण को प्रकाश के तुल्य कहा जा सकता है, किन्तु इस विधि मे शून्य कलुषित भाव के साथ शरीर को छोडना परिपूर्ण अधकार के तुल्य है।

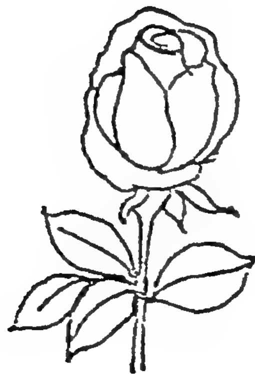
यह प्रसग निश्चय ज्ञानी के द्वारा निर्धारित आयुष्य का विवेक है। पर जिस समय वैसे निश्चय ज्ञानी न हो एव श्रुतज्ञान के बल पर सयम आराधना की जा रही हो, उस समय भी सथारा का प्रसग उपस्थित हो तो वैसी स्थिति मे उसको आयु की परिसमाप्ति का निश्चित ज्ञान नही होने से सथारा करना, क्या उपर्युक्त सथारे की कोटि मे गिना जाएगा? प्रश्न समीचीन है। इस विषयक उत्तर के परिप्रेक्ष्य मे साधको को चिन्तन का अवकाश लेना चाहिये।

साधक, सम्यक् श्रुतज्ञान के सहारे, साधनारत है तो उस साधना के क्षणो का एव शारीरिक अवस्थान का भी निरीक्षण-परिक्षण करते रहना चाहिये। साधना करते हुये जब साधक को लगे कि मेरे शरीर मे कोई व्याधि नही है और न इस शरीर को रत्नत्रय के हेतु प्राण सरक्षण के कारणभूत प्रासुक पदार्थो की ही कमी है। इतना सब कुछ होते हुए भी शरीर दिन-प्रतिदिन कमजोर होता हुआ चला जा रहा है और न रत्नत्रय की आराधना हेतु विशेष सत्पुरुषार्थ कर पा रहा हूँ, न ही अन्य साधको की सेवा मे योगदान दे पा रहा हूँ, बल्कि अन्य साभोगिक साधको मे सेवा ले रहा हूँ। यह मेरे लिये एक दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता।

सेवा करने की तो भावना रहती है, न कि सेवा लेने की। पर क्या किया जाय? ऐसी परिस्थिति मे वह स्वय श्रुतबल के आधार पर अनुमान लगाने मे सक्षम हो अथवा अपने अनुमानित विचारो की पुष्टि हेतु शरीर विज्ञानवेताओ से परामर्श कर ले। साथ ही उस समय

मे विराजमान अपेक्षाकृत कोई विशिष्ट श्रुतधर हो और वे इन समग्र विधियो के विज्ञाता लगे तो उनसे भी अपने विचारो की पुष्टि कर ले । इन समग्र परिस्थितियो मे उनका अनुमान एक ही रूप मे फलित एव पुष्ट हो तो सलेखना की विधि अपनावे । सलेखना मे आगे बढने पर सिहावलोकन की तरह अपनी साधनागत तारतम्यता को तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करे, तब उसको लगे कि पूर्व की अपेक्षा से इस सलेखना के माध्यम से कापायिक शरीर कृश होता हुआ चला जा रहा है और यह शरीर भी प्राय अशक्त एव मृत्यु के सन्निकट पहुँच गया है, तब पुन शरीरविज्ञानवेत्ताओ से मुनिराज श्रुतधर से परामर्श ले। ऐसी अवस्था मे उसे लगे कि यह शरीर अधिक समय तक रहने वाला नही है तब वह साधक समभाव से सबसे क्षमायाचना के साथ सथारा ग्रहण कर सकता है। अनुमान कभी गलत सिद्ध न हो जाय इस आशका से कदाचित् विशिष्ट व्यक्ति विशेष का आगार भी रखा जा सकता है । ऐसा सथारा भी आत्म सरक्षण का हेतु बनता है । आत्म हत्या का नही ।

व्याधि आदि परिस्थिति मे तो सागारिक सथारा ग्रहण करना ही विशेष लाभप्रद कहा जा सकता है किन्तु इस प्रकार के विवेक विज्ञान से विकल होकर भावावेश या कलुषित भावना से शरीर परित्याग का उपक्रम विधिवत सथारो की श्रेणी मे कैसे आ सकता है ? अर्थात नही आ सकता ।



अट्ठमो वग्गो : अष्टम वर्ग

उत्थानिका :

सातवे वर्ग की विवेचना के अनन्तर क्रम प्राप्त आठवे वर्ग का विवेचन आता है। आठवे वर्ग मे दस अध्ययन दस रानियो के नाम से बतलाए गये है।

ये दसो महारानिया श्रेणिक राजा की धर्म पत्निया थी। दसो महारानियो ने नन्दा देवी की तरह प्रभु महावीर के सान्निध्य मे सयम जीवन स्वीकार किया। दसो रानियो के सयम जीवन लेने का कारण इस प्रकार है—

एक बार चरम तीर्थकर सर्वज्ञ—सर्वद्रष्टा प्रभु महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक बगीचे मे पधारे। भगवान के चरणो मे काली आदि दसो रानिया उपस्थित हुई। विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार कर उन्होने प्रभु से निवेदन किया—

"भगवन् ! हमारे पुत्र जो युद्ध मे गए हुए है, उन्हे हम सकुशल लौटते हुए देख सकेगी ?"

अगम्य ज्ञानी प्रभु ने जिज्ञासा का समाधान दिया—'देवियो ! तुम्हारी यह कामना अब पूर्ण नही हो सकती। तुम्हारे दसो पुत्र युद्ध मे काम आ चुके है। महाराजा चेटक के द्वारा उनका प्राणान्त कर दिया गया है।"

इस दु खद घटना को सुनते ही महारानियो को अत्यन्त वेदना हुई। पुत्र वियोग जन्य दु ख से विलाप-रुदन करने लगी, किन्तु वीतराग महाप्रभु के ज्ञानोपदेश ने उनके मोहान्धकार को चीर कर ज्ञान का अभिनव आलोक प्रदान किया। परिणामस्वरूप सभी ने ससार से विरक्त होकर सयम जीवन स्वीकार कर लिया।

सभी ने विभिन्न प्रकार का तप कर्म किया। कई वर्षो तक सयम पर्याय का पालन किया, अन्त मे सभी कर्मो का क्षय करके सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

क्र म	नाम	सयम पर्याय वर्ष	विशेष तप
१	काली देवी	आठ	रत्नावली तप
२	सुकाली देवी	नव	कनकावली तप
३	महाकाली देवी	दस	लघुसिंह निष्क्रीडित तप
४	कृष्णा देवी	ग्यारह	महासिह निष्क्रीडित तप
५	सुकृष्णा देवी	बारह	सप्त-सप्त, अष्ट-अष्ट, नव-नव, दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमातप

क्र स	नाम	सयम पर्याय वर्ष	विशेष तप
६	महाकृष्णा देवी	तेरह	लघुसर्वतोभद्र तप
७	वीरकृष्णा देवी	चौदह	महासर्वतोभद्र तप
८	रामकृष्णा देवी	पन्द्रह	भद्रोतर नामक तप
९	पितृसेनकृष्णा देवी	सौलह	मुक्तावली तप
१०	महासेनकृष्णा देवी	सत्रह	आयबिल वर्धमान तप

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की उपवास, बेला आदि तपश्चर्याए की ।

—



अट्ठमो वग्गो : अष्टम वर्ग
प्रथम अध्ययन—काली

97. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाण सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

हे भगवन् ! मोक्ष प्राप्त भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाक सूत्र के सातवे वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादित किया, तो आठवे वर्ग का क्या अर्थ वतलाया है ? तव आर्य सुधर्मा ने फरमाया—

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । तंजहा—

हे जम्वू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाग सूत्र के आठवे वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादित किये है । जैसे—

संगहणी गाहा—

1. काली, 2. सुकाली, 3. महाकाली, 4. कण्हा, 5. सुकण्हा, 6. महाकण्हा। 7. वीरकण्हा य बोधव्वा, 8. रामकण्हा तहेव य । 9. पिउसेणकण्हा नवमी दसमी, 10. महासेणकण्हा य ।।1।।

१—काली, २—सुकाली, ३—महाकाली, ४—कृष्णा, ५—सुकृष्णा, ६—महाकृष्णा, ७—वीरकृष्णा, ८—रामकृष्णा, ९—पितृसेनकृष्णा १०—महासेनकृष्णा ।

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

हे भगवन् ! प्रभु ने आठवे वर्ग के दस अध्ययन वतलाए है, तो भगवन् ! प्रभु ने प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ वतलाया है ?

एव खलु जंवू ! तेणं कालेणं तेण समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए । तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया वण्णओ । तत्थ

हे जम्वू ! उस काल उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी । पूर्णभद्र नामक उद्यान था । चम्पा नगरी के कोणिक राजा राज्य करते थे । उस चम्पा नगरी मे श्रेणिक राजा

णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लकमाउया काली नाम देवी होत्था वण्णओ। जहा नदा जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहि चउत्थ जाव अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

की पत्नी, कोणिक राजा की छोटी माता काली नामक रानी थी।

नन्दा महारानी की तरह काली रानी ने भी श्रमण भगवान महावीर के चरणो मे दीक्षित होकर सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। अनेक उपवास, बेले आदि तपश्चर्या करती हुई विचरण करने लगी।

काली आर्या द्वारा रत्नावली तप की आराधना

98. तए ण सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी—

एक दिन काली आर्या, अन्य किसी समय मे जहा पर चन्दनवाला नामक आर्या थी, उधर आती है, आकर इस प्रकार कहने लगी—

"इच्छामि णं अज्जाओ। तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।"

हे आर्या प्रवर! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मै रत्नावली नामक तप स्वीकार कर विचरण करना चाहती हूँ।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।

चन्दनवाला आर्या ने कहा—हे भद्रे! जैसी तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो। शुभ कार्य मे किंचित् मात्र भी विलम्ब मत करो।

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तंजहा—
चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ 2 त्ता। छट्ठं करेइ, करेत्ता

तद्नन्तर काली आर्या, चन्दनवाला आर्या की आज्ञा को प्राप्त कर रत्नावली तप करती हुई, विचरण करने लगी। जैसे—एक उपवास करती है, करके सर्व प्रकार के दुग्धादि रसो से पारणा करती है। पारणा करती वेला करती है। सर्व प्रकार के रस से पारणा करके तेला करती है, सर्व प्रकार के

सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छव्वीसईमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं

रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके आठ बेले करती है, सर्व प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, फिर उपवास करती है उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन मे पारणा करती है, बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके तेला करती है, तेला करके सभो प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके चोला करती हे, चोला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके पचोला करती है, पचोला करके सभी प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है, पारणा करके छ उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सभी प्रकार के रस युक्त, भोजन से पारणा करती है, पारणा करके आठ उपवास करती है, आठ उपवास करके सर्व प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके नव उपवास करती है, नव उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके दस उपवास करती है, दस उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके ग्यारह उपवास करती है, ग्यारह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके बारह

पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता

उपवास करती है, बारह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके तेरह उपवास करती है, तेरह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके चौदह उपवास करती है, चौदह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके पन्द्रह उपवास करती है, पन्द्रह उपवास करके सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा करती है, पारणा करके सोलह उपवास करती है, सोलह उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ३४ बेले करती है, फिर सोलह उपवास करती है, सभी प्रकार के रस युक्त भोजन से पारणा किया, पारणा करके १५ उपवास करती है, पन्द्रह उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १४ उपवास करती है, १४ उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १३ उपवास करती है, १३ उपवास करके सब प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १२ उपवास करती है, १२ उपवास करके सव प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ११ उपवास करती है, ११ उपवास करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके १० उपवास करती है, १० उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ९ उपवास करती है, नव

सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता।

उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके ८ उपवास करती है, आठ उपवास करके सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके ७ उपवास करती है, ७ उपवास करके सभी रसो से पारणा करती ह, पारणा करके ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके सभी रसो से पारणा करती है, पारणा करके ५ उपवास करती है, ५ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है पारणा करके ४ उपवास करती है, पारणा करके ३ उपवास करती है, ३ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है। पारणा करके २ उपवास करती है, २ उपवास करके सब रसो से पारणा करती है, पारणा करके एक उपवास करती है, उपवास करके सब रसो से पारणा करती है, पारणा करके आठ वेले करती है। आठ वेले करके सर्व प्रकार के रसो से युक्त पारणा करती है करके तेला करती है। तेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके वेला करती है, वेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है।

एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी एगेण सवच्छरेण तिहिं मासेहि वावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव[A] आराहिया भवइ।

यह रत्नावली तप कर्म की पहली परिपाटी है। जो एक वर्ष, तीन मास, वावीस दिनो मे सूत्रानुसार आराधित होती है।

99– तयाणंतर च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ। छट्ठ करेइ,

एक परिपाटी करने के वाद दूसरी परिपाटी करती है। उस परिपाटी मे उपवास करती है, करके विकृति—वर्ज, दुग्ध, घी, तेल,

करेत्ता विगइवज्जं पारेइ। एवं जहा पढमाए परिवाडीए तहा बीयाए वि, नवरं—सव्वपारणए विगइवज्जं पारेइ जाव[A] आराहिया भवइ।

दही, मीठा छोडकर पारणा करती है। पारणा करके दो उपवास करती है, करके विकृति, वर्ज भोजन से पारणा करती है, पारणा करके बेला करती है, प्रथम परिपाटी की तरह तेले आदि करती है, पारणो मे सभी रसो से रहित भोजन करतो है, प्रथम परिपाटी की तरह ही दूसरी परिपाटी करती है। यह परिपाटी भो एक वर्ष, तीन मास, बाईस दिन मे आराधित होती हे।

तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करेत्ता अलेवाडं पारेइ। सेसं तहेव। नवरं—अलेवाडं पारेइ।

इसके बाद तोसरी परिपाटी मे उपवास करती है, करके अलेपकृत—जिस भोजन मे घी, तेल आदि का लेप न हो ऐसे भोजन से पारणा करती है। आगे के तप,प्रथम परिपाटी के अनुसार जानने चाहिये।

एवं चउत्था परिवाडी। नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ। सेसं तं चेव।

इसो प्रकार चौथी परिपाटी भी समझ लेनी चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि पारणे मे आयम्बिल तप करती है। शेष पहली परिपाटी के अनुसार जानना चाहिये।

संगहणी गाहा—

पढमंमि सव्वकामं पारणयं बिइयए विगइवज्जं।
तइयंमि अलेवाडं आयंबिलमो चउत्थम्मि ॥1॥

प्रथम परिपाटी मे दुग्ध, घी आदि सभी रसो से पारणा किया जाता है। दूसरी परिपाटी मे रसो रहित पारणा किया जाता है। तोसरो परिपाटी मे लेप रहित भोजन से पारणा किया जाता है। चौथी परिपाटी मे पारणे मे आयम्बिल किया जाता है।

तए णं सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठवीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं

वह काली आर्या रत्नावली तप कर्म को पाच वर्ष, दो मास, अट्ठाईस दिनो मे यथासूत्र विधि के अनुसार पूर्ण करती है, पूर्ण करके वह आर्या चन्दनवाला जी के पास आती है, आकर के आर्या प्रवर चन्दनवाला महामती को वन्दन—नमस्कार करती है, करके उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार, पांच उपवास आदि तपस्या मे अपनी

अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ–छट्ठट्ठम–दसम दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है ।

काली आर्या को मोक्ष प्राप्ति

100– तए णं सा काली अज्जा तेणं उरालेणं जाव[A] धमणिसंतया जाया यावि होत्था । से जहा इंगालसगडी वा जाव[B] सुहुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं, तेएणं तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोहेमाणी–उवसोहेमाणी चिट्ठइ ।

वह काली आर्या इस उदार तप की आराधना से जिसकी धमनिया प्रत्यक्ष दिखलाई देने लगती है, शरीर–अस्थियो का पिजर मात्र वन गया था । जिस प्रकार कोयलो की गाडी चलने पर कड-कड की आवाज करती है, उसी प्रकार उठते–वैठते महासती की हडिड्या कड-कड का शब्द करने लगी । महासती जी भस्माच्छादित अग्नि के समान तप–तेज की शोभा से अत्यन्त उपशोभित हो रही थी ।

तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता–वरत्तकाले अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि अट्ठाणे कम्मे[52] बले वीरिए[53] पुरिसक्कार–परक्कमे तावता[55] मे सेयं कल्लं जाव[C] जलंते अज्जचदण अज्ज आपुच्छित्ता अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा–झूसणा–झूसियाए भत्तपाण–पडियाइक्खाए कालं अणवकखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, सपेहेत्ता कल्ल जेणेव

किसी दिन उस काली आर्या को अर्ध–रात्रि के समय मे एक विचार उत्पन्न हुआ, भगवती सूत्र मे वर्णित स्कदक अनगार की तरह चिन्तन करने लगी कि मेरा शरीर तपश्चर्या के कारण कृश हो गया, तथापि मेरे मे उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुपकार–पराक्रम, श्रृद्धा, धृति, सवेग विद्यमान है । अत मुझे सूर्य–उदय होते ही आर्या चन्दनवाला जी से पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त कर सलेखना सेवन से सेवित हो, अन्न जल का परित्याग कर, मृत्यु की आकाक्षा नही करती हुई जीवन व्यतीत करु । इस प्रकार विचार करती है, विचार करके सूर्योदय होने पर जहा आर्या चन्दनवाला महासती जी थी, वहा पर आती है, आकर के वन्दन–नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार

अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्ज वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी- इच्छामि ण अज्जो ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणो संलेहणा जाव विहरित्तए । अहासुहं ।

करके इस प्रकार कहने लगी—

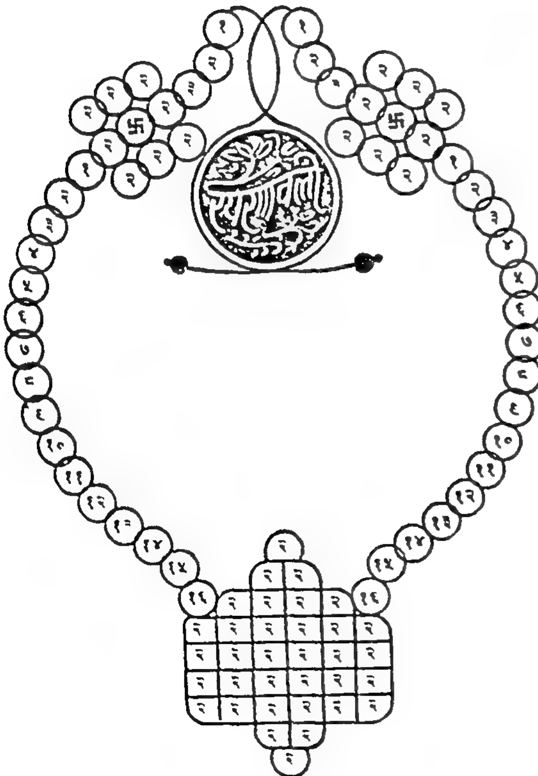
आर्या प्रवर ! आपकी आज्ञा होने पर मै सलेखना सथारा द्वारा अन्न–जल का परित्याग कर मृत्यु की अकाक्षा किये बिना जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ ।

आर्या चन्दनबाला जी ने कहा—

जैसा तुम्हे सुख हो, वैसा करो किन्तु शुभ कार्य मे किचित मात्र भी प्रमाद मत करो ।

आर्या चन्दनबाला जी की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर काली आर्या सलेखना–सथारा से युक्त होकर विचरण करने लगती है ।

सूत्रानुसार रत्नावली तप यन्त्र



तपस्या काल ·

एक परिपाटी का काल १ वर्ष, ३ मास, २२ दिन

चार परिपाटी का काल ५ वर्ष, २ मास, २८ दिन

तप के दिन

एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष,–२४ दिन

चार परिपाटी के तपोदिन ४ वर्ष, ३ मास, ६ दिन

पारणा ·

एक परिपाटी के पारणे ८८

चार परिपाटी के पारणे ३५२

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा[56]–झूसणा–झूसिया जाव विहरइ। तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ, नग्गभावे जाव चरिमुस्सासेहिं सिद्धा। निक्खेवओ।

उस काली आर्या ने चन्दनबाला जी के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। पूरे आठ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। एक मास की संलेखना में आत्मा का शोधनकर, साठ भक्त अनशन का छेदन करके जिस उद्देश्य के लिए साध्वी बनी थी, उस उद्देश्य को अर्थात् सिद्ध स्वरूप, चरम श्वासोच्छ्वास की समाप्ति के साथ प्राप्त कर लिया।

अंतकृद्दशांग सूत्र के अष्टम वर्ग का प्रथम अध्ययन श्रवण करा कर सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहने लगे—मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के अष्टम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह सार बतलाया है।



द्वितीय अध्ययन—सुकाली

सुकाली द्वारा कनकावली तप की आराधना

101— तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता जाव[A] बहूहिं जाव[B] तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

अष्टम वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ श्रवण करने के अनन्तर, जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन्! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है?

आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—

हे जम्बू! उस काल उस समय मे चपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक बगीचा था। कोणिक राजा राज्य करता था। उस नगर मे श्रेणिक राजा की पत्नी, कोणिक राजा की छोटी माता, सुकाली नाम की देवी भी निवास करती थी। जिस प्रकार काली देवी ने सयम जीवन अगीकार किया, उसी प्रकार सुकाली देवी ने भी किया। सयम जीवन अगीकार करके, बहुत से उपवास, बेले आदि तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।

एस णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव[C] इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए! एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं-तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए

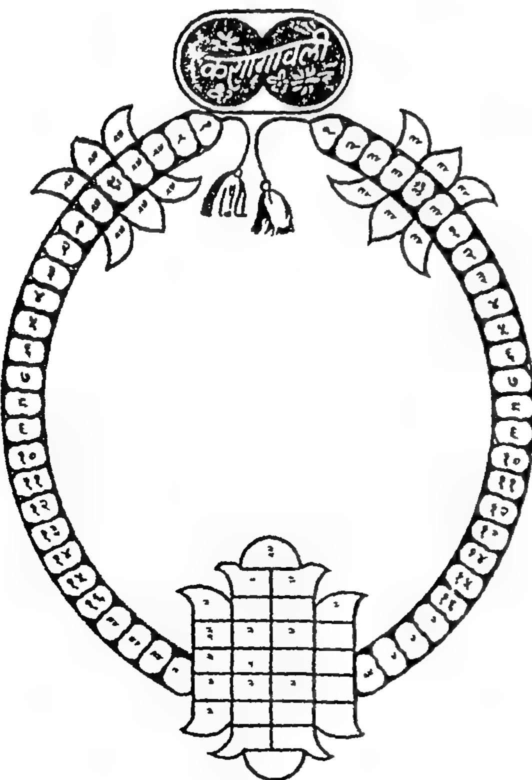
वह सुकाली आर्या अन्य किसी समय आर्या चन्दनबालाजी जहा स्वय विराजमान थी, उधर आती है, आकरके कहने लगी—आर्या प्रवर! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं कनकावली नामक तप कर्म स्वीकार करके विचरण करना चाहती हूँ। जिस प्रकार रत्नावली तप होता है, उसी प्रकार कनकावली तप भी होता है। विशेषता इतनी ही है कि रत्नावली तप मे काली देवी ने जिन तीन स्थानो पर बेले किये, कनकावली तप मे उन्ही तीन स्थानो पर सुकाली देवी ने आठ तेले किये। कनकावली तप मे भी

परिवाडीए संवच्छरो, पंच मासा बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा। सेसं तहेव। नववासा परियाओ जाव[D] सिद्धा।

चार परिपाटिया होती हे। प्रथम परिपाटी मे एक वर्ष, पॉच मास, बारह दिन लगते है। और चार परिपाटियो मे पाच वर्ष, नो मास, और अठारह दिन लगते हे, शेप वर्णन काली देवी की तरह जानना चाहिये।

आर्या मुकाली ने नौ वर्ष नक श्रामण्य पर्याय का पालन कर अत मे सर्व कर्मो से विनिर्मुक्त हो सिद्धत्व अवस्था प्राप्त की।

सूत्रानुसार कनकावली तप यन्त्र



तपस्या काल
एक परिपाटी का काल १ वर्ष, ५ मास, १२ दिन
चार परिपाटी का काल ५ वर्ष, ९ मास, १८ दिन

तप के दिन
एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, २ मास, १४ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ४ वर्ष, ९ मास, २६ दिन

पारणे
एक परिपाटी के पारणे ८८
चार परिपाटी के पारणे ३५२

तृतीय अध्ययन—महाकाली

महाकाली द्वारा क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीडित तप की आराधना

102– एवं महाकाली वि । नवरं– खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्म उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तंजहा–

काली देवी की तरह ही महाकाली देवी का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेषता इतनी है कि महाकाली ने सयम जीवन स्वीकार कर "क्षुल्लक (लघु) सिह निष्कीडित तप" की आराधना करती है। इस तप मे सिह की क्रीडा की तरह चढते–उतरते उपवासो की परिपाटी होती है। आराधना क्रम इस प्रकार है—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियंपारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसम करेइ, करेत्ता

महाकालो महासती सर्व प्रथम उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, चार उपवास करती है, चार उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, पचोला करती है, पचोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके चोला करती है, चोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ उपवास करके सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से

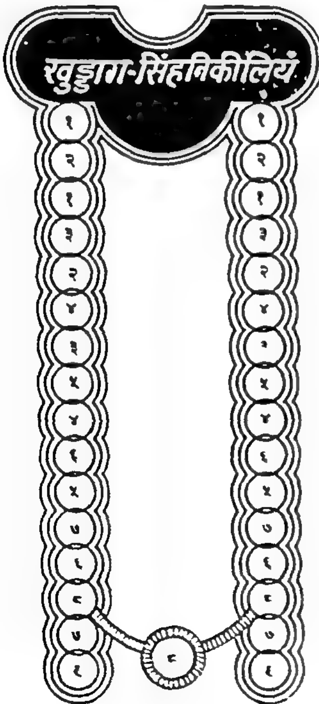
सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता, चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता, बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ,2 त्ता दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,2

पारणा करती है, पारणा करके, पाच उपवास करती है, पाच उपवास करके सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ८ उपवास करती है, ८ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, पारणा करती है। पारणा करके, ७ उपवास करती है, ७ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ८ उपवास करती है, ८ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ५ उपवास करती है, ५ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ६ उपवास करती है, ६ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। पारणा करके, चार उपवास करती है, चार उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट

त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, ५ उपवास करती है, ५ उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, चोला करती है, चोला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है। पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट

सूत्रानुसार खुड्डागसिंहनिकीलियं तप यन्त्र



तपस्या काल ·

एक परिपाटी का काल ६ मास, ७ दिन
चार परिपाटी काल २ वर्ष, २८ दिन

तप के दिन

एक परिपाटी के तपोदिन ५ मास, ४ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, ८ मास, १६ दिन

पारणे :

एक परिपाटी के पारणे ३३
चार परिपाटी के पारणे १३२

पदार्थो मे पारणा करती है, पारणा करके, वेला करती है, वेला करके, सव प्रकार के इष्ट पदार्थो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सब प्रकार के इष्ट पदार्थो मे पारणा करती है ।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ । एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा । चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव[A] सिद्धा ।

यह एक परिपाटी होती है । इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी परिपाटी भी समझ लेना चाहिए । प्रथम परिपाटी मे छ मास, सात दिवस लगते है । चारो परिपाटियो मे दो वर्ष अट्ठाईस दिवस लगते है ।

इस तप की आराधना करने के अनन्तर महाकाली ने अनेक फुटकर तपश्चर्याए की । अन्त मे काली महासती की तरह यह भी सलेखना सथारा पूर्वक सभी कर्मो का अन्त कर सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त करती है ।



चतुर्थ अध्ययन—कृष्णा

कृष्णा देवी द्वारा महासिहनिष्क्रीडित तप की आराधना

103— एवं कण्हा वि । नवरं-महालयं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं नवर—चोत्तीसइमं जाव नेयव्वं। 'तहेव ओसारेयव्वं' एक्काए वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा । चउण्हं छव्वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता । सेसं जहा कालीए जाव[A] सिद्धा ।

महाकाली देवी की तरह ही कृष्णा देवी का वर्णन भी जानना चाहिये । विशेषता इतनी है कि महाकाली ने लघुसिह-निष्क्रीडित तप किया था और कृष्णा देवी ने "महानिष्क्रीडित तप" किया । इन दोनो तपो मे अन्तर यह है कि लघुसिहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर नौ उपवास तक बढते है । और "महानिष्क्रीडित तप" मे एक उपवास से लेकर सोलह उपवास तक बढते है । फिर सोलह उपवास से पीछे पन्द्रह आदि क्रमश नीचे उतरना होता है ।

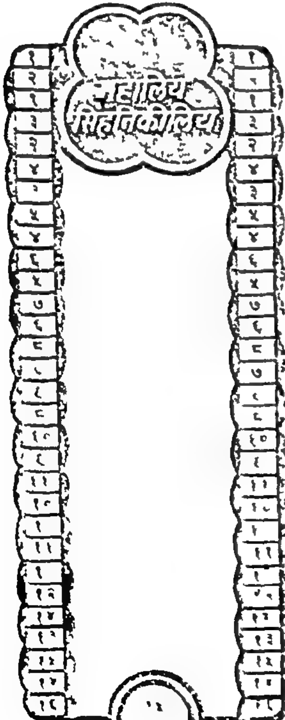
"महानिष्क्रीडित तप" की एक परिपाटी मे एक वर्ष, छ मास, १८ दिन लगते है ।

चारो परिपाटियो मे छ वर्ष, दो मास बारह अहोरात्र लगते है ।

शेष वर्णन काली महारानी की तरह जानना चाहिये ।

कृष्णा महासती अन्त मे सर्व कर्मों का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है ।

सूत्रानुसार तप यन्त्र



तपस्या काल

एक परिपाटी काल १ वर्ष, ६ मास, १८ दिन
चार परिपाटी का काल ६ वर्ष, २ मास, १२ दिन

तप के दिन

एक परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, ४ मास, १७ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ५ वर्ष, ६ मास, ८ दिन

पारणे

एक परिपाटी के पारणे ६१
चार परिपाटी के पारणे २४४

पंचम अध्ययन—सुकृष्णा

सुकृष्णा द्वारा भिक्षुप्रतिमा की आराधना

104– एवं सुकण्हा वि, नवरं–सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं[58-59] उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

कृष्णा देवी की तरह ही सुकृष्णा देवी का वर्णन भी जानना चाहिये ।

पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स ।

दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दो दो पाणयस्स पडिगाहेइ ।

तच्चे सत्तए तिण्णि तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स, तिण्णि तिण्णि दत्तीओ[60] पाणयस्स ।

चउत्थे सत्तए चत्तारि–चत्तारि दत्तीओ भोयणस्स, चत्तारि–चत्तारि दत्तीओ पाणयस्स ।

पंचमे सत्तए पंच पंच दत्तीओ भोयणस्स, पच पंच दत्तीओ पाणयस्स।

छट्ठे सत्तए छ-छ दत्तीओ भोयणस्स, छ-छ दत्तीओ पाणयस्स ।

सत्तमे सत्तए सत्त सत्त दत्तीओ भोयणस्स, सत्त सत्त दत्तीओ पाणयस्स पडिगाहेइ ।

विशेषता यह है कि–सुकृष्णा साध्वी जी ने सप्त–सप्तमिका नामक भिक्षु प्रतिमा अगीकार की थी । इस प्रतिमा का स्वरुप इस प्रकार है– प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति–पानी की ग्रहण करती है । द्वितीय सप्ताह मे दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण करती है। तीसरे सप्ताह मे तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण करती है । इसी प्रकार चतुर्थ सप्ताह मे चार-चार दत्ति, पाचवे सप्ताह मे पाच दत्ति, छट्ठे सप्ताह मे छ दत्ति, सातवे सप्ताह मे सात-सात दत्ति भोजन एव पानी की ग्रहण करती है ।

एवं खलु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिम एगूणपण्णाए राँतिदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खासएणं

सप्त–सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा के अन्तर्गत ४९ दिन-रात मे १९६ भिक्षाए ग्रहण कर सूत्रगत विधि के अनुसार इसका

अहासुत्तं जाव^A आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जातेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदण अज्जं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-

आराधन करके, जिधर चन्दनबाला आर्या थी, उधर आती है,आकर के, वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार कर, इस प्रकार कहने लगी—हे आर्या प्रवर ! आपकी आज्ञा होने पर मै अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने की इच्छा रखती हू ।

इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिए । मा पडिबंधं करेहि ।

आर्या प्रवर चन्दनबाला जी ने फरमाया-हे भद्रे ! जैसा तुम्हे सुख हो वैसे करो किन्तु शुभ कार्य मे किंचित भी विलम्ब मत करो ।

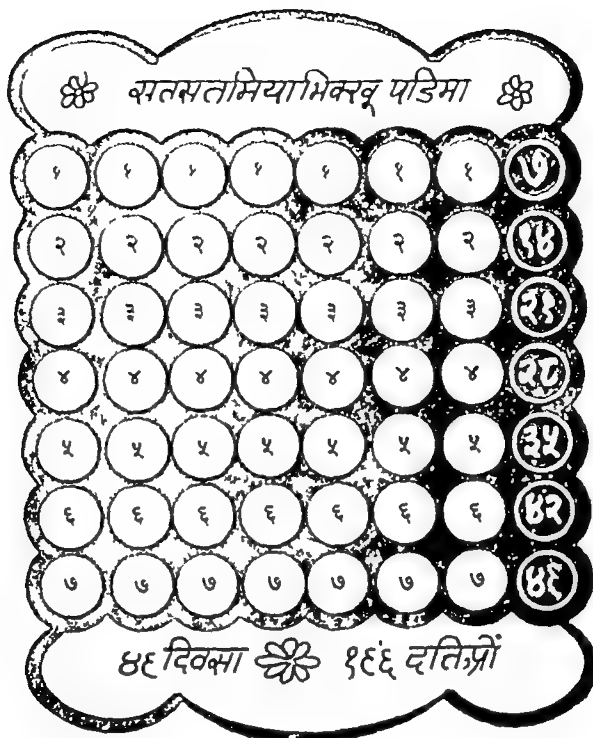
105— तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

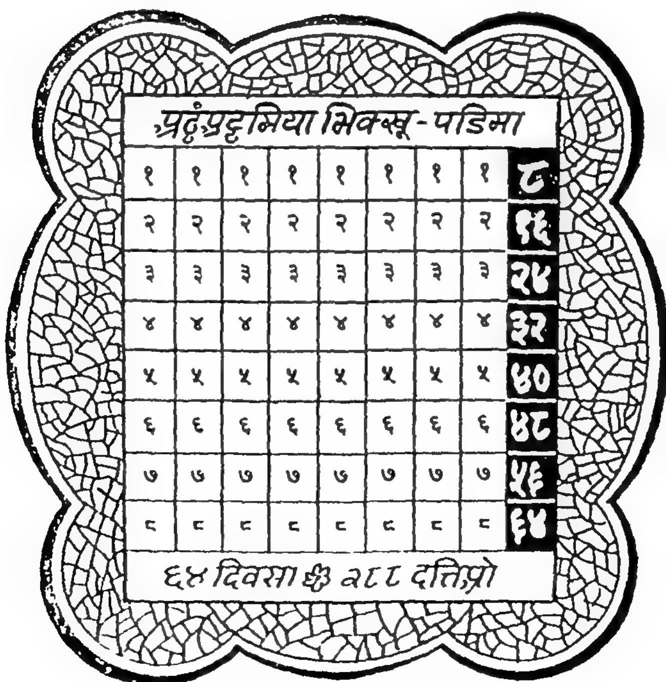
पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ । एक्केक्कं पाणयस्स जाव^A अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्ठट्ठ पाणयस्स ।

एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासोएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव^B आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिम उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

इस प्रकार आर्या प्रवर चन्दनबाला जी की आज्ञा प्राप्त होने पर सुकृष्णा आर्या अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है । प्रथम अष्टक-आठ दिनो मे एक भोजन की दत्ति और एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है । दूसरे अष्टक मे दो भोजन की दत्ति और दो पानी की दत्ति ग्रहण करती है । इसी प्रकार बढते हुये आठवे अष्टक मे आठ-भोजन की दत्ति और आठ ही पानी की दत्ति ग्रहण करती है । इस प्रकार यह अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा का चौसठ अहोरात्र मे दो सौ अट्ठासी भिक्षाओ को ग्रहण कर सूत्रानुसार आराधना करती है ।

इसी प्रकार नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करती है ।


सत्तसत्तमिया भिक्खू पडिमा
१ १ १ १ १ १ १ ७
२ २ २ २ २ २ २ १४
३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ २१
४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ २८
५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ३५
६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ४२
७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ४९
४९ दिवसा १९६ दत्तिओं


अट्ठअट्ठमिया भिक्खू-पडिमा
१ १ १ १ १ १ १ १ ८
२ २ २ २ २ २ २ २ १६
३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ २४
४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ३२
५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ४०
६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ४८
७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ५६
८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ६४
६४ दिवसा २८८ दत्तिओ

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव[C] नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव नव पाणयस्स ।

प्रथम नवक-नौ दिनो मे एक-एक भोजन की दत्ति और एक-एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है। दूसरे नवक मे दो-दो भोजन की दत्ति और दो-दो पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इसी प्रकार बढते-बढते नौवे नवक मे नौ दत्ति भोजन की और नौ दत्ति पानी की ग्रहण करती है।

नवनवमिया भिक्खू-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१
८१ दिवस ❊ ४०५ दत्तिओ									

एवं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहिं चउहि य पंचुतरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[D] आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव[E]। दसमे दसए दस-दस दत्तीओ

इस नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा को इक्यासी अहोरात्र के चार सौ पाच भिक्षाओ द्वारा यथा सूत्र विधि के अनुसार पूर्ण करती है।

इस प्रकार नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा आर्या दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है प्रथम दशक दस दिनो मे एक-एक भोजन की दत्ति और

दसदसमिया भिक्खू पडिमा										
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००
१०० दिवसा ✱ ५५० दत्तिओ										

भोयणस्स पडिगाहेइ, दस दस पाणयस्स। एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहि अहासुत्तं जाव आराहेइ, आराहेत्ता बहूहि चउत्थ – छट्ठट्ठम– दसम – दुवालसेहि मासद्धमासखमणेहि विविहेहि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणी विहरइ।

तए ण सा सुकण्हा अज्जा तेण ओरालेणं तवोकम्मेणं जाव सिद्धा। निक्खेवओ।

एक-एक पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इस प्रकार बढते-बढते दसवे दशक मे दस भोजन की दत्ति और दस पानी की दत्ति ग्रहण करती है। इस प्रकार दस दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा को सौ अहोरात्र मे साढे पाच सौ भिक्षाओ द्वारा सूत्रानुसार विधि से आराधित करती है। आराधन करने के अनन्तर अनेक उपवास बेला आदि से लेकर १५ दिन, मासखमण आदि तपानुष्ठान द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है।

वह सुकृष्णा आर्या इस उदार एव श्रेष्ठ तप से अत्यन्त दुर्बल हो जाती है। अन्तिम समय मे सलेखना सथारा द्वारा सभी कर्मो का क्षय करके मुक्ति प्राप्त करती है।

हे जम्बू! इस प्रकार प्रभु ने अष्टम वर्ग के पाचवे अध्ययन का सार बतलाया है।

षष्ठ अध्ययन—महाकृष्णा

महाकृष्णा द्वारा लघुसर्वतोभद्र तप की आराधना

106—एवं महाकण्हा वि नवरं-खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ता ण विहरइ—

सुकृष्णा आर्या की तरह महाकृष्णा आर्या का वर्णन भी समझना चाहिये।

विशेषता यह है—महाकृष्णा आर्या क्षुल्लकसर्वतोभद्र प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है। उसकी विधि इस प्रकार है —

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता

सर्व प्रथम उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के पदार्थों से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, वेला करती है, वेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं। पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।

करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके तेला करती है, तेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

एवं खलु एयं खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहि मासेहिं दसहिं दिवसेहिं य अहासुत्तं चउत्थं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ

इस प्रकार क्षुल्लकसर्वतोभद्र तप की पहली परिपाटी तीन मास, दस दिनो मे सूत्रोक्त विधि के अनुसार पूर्ण करती है। पूर्ण करके, दूसरी परिपाटी करती है, उसमे सबसे पहले उपवास करती है, पारणे मे विगय को छोडती है। पारणा करके फिर आगे जिस

जाव^ आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए वि चत्तारि परिवाडीओ। पारणा तहेव जाव सिद्धा।

निक्खेवओ।



प्रकार रत्नावली तप का वर्णन किया गया, उसी प्रकार यहा क्षुल्लकसर्वतोभद्र मे भी चारो परिपाटियो मे पारणे आदि समझने चाहिये।

चारो परिपाटियो मे एक वर्ष, एक मास, दस दिन लगते है। महाकृष्णा आर्या का शेष वर्णन काली—महाकाली आर्या की तरह जान लेना चाहिये।

महाकृष्णा आर्या भी सभी कर्मो का क्षय कर अन्त मे सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है।

हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अष्टम वर्ग के छठे अध्ययन मे महाकृष्णा आर्या का सजीवनसार इस प्रकार बतलाया है।

सप्तम अध्ययन—वीरकृष्णा

वीरकृष्णा का महासर्वतोभद्र तप की आराधना

107—एवं वीरकण्हा वि नवरं—महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तंजहा—पढमालया—

महाकृष्णा देवी के वर्णन की तरह ही वीरकृष्णा देवी का वर्णन भी समझ लेना चाहिये।

विशेषता यह है कि वीरकृष्णा देवी आर्या महासर्वतोभद्र नामक तप विशेष को

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

बीया लया–

दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता, चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

स्वीकार करके विचरण करने लगती हे ।

तपानुष्ठान विधि इस प्रकार है—

सर्व प्रथम उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके, वेला करती हे, वेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है । तेला करके, सर्व प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चोला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पचौला करती है, पचौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके,सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है । इस प्रकार, इस तप की पहली लता समाप्त होती है ।

दूसरी लता सर्व प्रथम चोला करती है, चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, वेला करती है, वेला करके, सर्व प्रकार के रसो मे पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

इस प्रकार दूसरी लता समाप्त होती हे ।

तइया लयो—

सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ. करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता।

तीसरी लता सर्व प्रथम सात उपवास करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके बेला करती है बेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके चौला करती है, चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ करती है, छ करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है।

इस प्रकार तीसरी लता समाप्त होती है।

चउत्थी लया—

अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता।

चौथी लता सर्व प्रथम तेला करती है, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसोसे पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके बेला करती है, बेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है।

इस प्रकार चौथी लता समाप्त होती है।

पंचमो लया—

चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं

पांचवी लता —सर्व प्रथम छ उपवास करती है, छ उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास

पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, वेला करती है, वेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती हे, पारणा करके, तेला करती हे, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पचौला करती है, पचौला करके सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

इस प्रकार पाचवी लता समाप्त होती है ।

छट्ठी लया—

छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

छठी लता सर्व प्रथम वेला करती है, वेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पचौला करती है, पचौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ करती है, छ करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

इस प्रकार छट्ठी लता समाप्त होती है ।

सत्तमी लया—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता

सातवी लता सर्व प्रथम पचौला करती है, पचौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है । पारणा करके, छ उपवास करती है, छ करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा

सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ. करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता।

एवकाए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।



करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौला करती है। चौला करके, सर्व प्रकार के रसो से पारणा करती है।

इस प्रकार सातवी लता समाप्त होती है।

इन सबको मिलाकर एक परिपाटी होती है। इस एक परिपाटी का समय आठ मास. पाच दिवस है। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, परिपाटी भी होती है। चारो परिपाटियो का कुल समय दो वर्ष, आठ मास, वीस दिवस होते है।

शेष वर्णन महाकृष्णा देवी की तरह ही समझना चाहिये।

वीरकृष्णा महासती जी भी अन्त मे सभी कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम अध्ययन—रामकृष्णा

रामकृष्ण द्वारा भद्रोत्तरप्रतिमा तप की आराधना

108– एवं[A] रामकण्हा वि, नवर–भद्दोत्तरपडिम उवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तंजहा–

वीरकृष्णा आर्या की तरह ही रामकृष्णा आर्या का वर्णन भी समझना चाहिये ।

विशेषता यह है कि —

रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा स्वीकार करके विचरण करने लगती है । उसकी विधि इस प्रकार है —

पढमा लया–

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

प्रथम लता सर्व प्रथम पचौला करती है, पचौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, छ उपवास करती है, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, सात उपवास करती है, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, नौ उपवास करती है, नौ उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है ।

भद्रोत्तर प्रतिमा की इस प्रकार प्रथम लता समाप्त होती है ।

बीया लया–

सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियंपारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोद्दसम

द्वितीय लता सर्व प्रथम सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, आठ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, छ उपवास किये, छ करके,

करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इस प्रकार दूसरी लता समाप्त होती है ।

तइया लया–
वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

तृतीय लता सर्व प्रथम नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, छ. उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, आठ करके सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इसी प्रकार तीसरी लता समाप्त होती है ।

चउत्थी लया–
चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता

चतुर्थ लता सर्व प्रथम छ उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, आठ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इस प्रकार चतुर्थ लता समाप्त होती है ।

पंचमी लया–
अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता

पचम लता सर्व प्रथम आठ उपवास किये, आठ उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, पाच उपवास किये, पाच करके, सभी प्रकार के रसो से

सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता ।

एक्काए कालो छम्मासा वीसं य दिवसा । चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा । सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा ।



पारणा किया, पारणा करके, छ उपवास किये, छ करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, सात करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा किया ।

इन पाच लताओ के पूर्ण होने पर एक परिपाटी पूर्ण होती है । इसी प्रकार अवशेष तीन परिपाटिया भी होती है, परन्तु पारणे क्रमश विगय रहित अलेपकृत और आयम्बिल युक्त होते है ।

प्रथम परिपाटी मे छ मास, वीस दिन लगते है । चारो परिपाटियो मे दो वर्ष, दो महिने, बीस दिन लगते है ।

महासती रामकृष्णा का अवशेष वर्णन काली आर्या की तरह जानना चाहिये ।

रामकृष्णा आर्या भी अन्त मे सभी कर्मो का क्षय कर सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है ।

नवम अध्ययन—पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा द्वारा मुक्तावली तप की आराधना

109- एव[A] पिउसेणकण्हा वि, नवरं मुत्तावलि तवोकम्म उवसंपज्जित्ता ण विहरइ, तंजहा—

रामकृष्णा महासती की तरह पितृसेन कृष्णा महासती के विषय मे भी जानना चाहिये ।

विशेषता यह है कि पितृसेन कृष्णा आर्या मुक्तावली नामक तप स्वीकार करके विचरण करने लगती है । उसकी विधि इस प्रकार है —

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता । छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं

सर्व प्रथम उपवास करती है । उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, बेला करती है, बेला करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, तेला करती है, तेला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है । पारणा करके, चौला करती है, चौला करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी रसो से पारणा करती है । पारणा करके, पाच उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है । पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है । पारणा करके, छ उपवास करती है, छ करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है । उपवास करके, सभी प्रकार के रसो ने पारणा करती है । पारणा

करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउवीसइमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता, सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, 2 त्ता चोत्तीसइम करेइ, करेत्ता, सव्वकामगुणियं पारेइ, 2 त्ता चउत्थ

करके, सात उपवास करती है, सात उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है। पारणा करके, आठ उपवास करती है, आठ करके सभी प्रकार के रसो मे पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, नव उपवास करती है, नव करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, दस करती है, दस करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, ग्यारह उपवास करती है, ग्यारह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, बारह उपवास करती है, बारह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है। उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, तेरह उपवास करती है, तेरह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, चौदह उपवास करती है, चौदह करके सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पन्द्रह उपवास करती है,

रेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,
ता बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता
व्वकामगुणियं पारेइ, ।



पन्द्रह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, उपवास करती है, पारणा करके, सोलह उपवास करती है, सोलह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है, पारणा करके, पुन उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, पन्द्रह उपवास करती है, पन्द्रह करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है।

तपस्या काल—

एक परिपाटी का काल ११ मास, १५ दिन
चार परिपाटी का काल ३ वर्ष, १० मास

तप के दिन—

एक परिपाटी के तपोदिन २८५ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ३ वर्ष २ मास

पारणे

एक परिपाटी के पारणे ६०
चार परिपाटी के पारणे २४०

एवं तहेव ओसारइ जाव चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

पारणा करके उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। पारणा करके, इस प्रकार घटते घटते अन्त मे एक उपवास करती है, उपवास करके, सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है। इस प्रकार प्रथम परिपाटी मे सभी प्रकार के रसो से पारणा करती है।

एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा सेस जाव सिद्धा।

इस एक परिपाटी मे ११ महिने, १५ दिवस का समय लगता है। चारो परिपाटियो का काल तीन वर्ष, दस मास होता है। शेष वर्णन काली आर्या की तरह जानना चाहिये।

अन्त मे महासती पितृसेन कृष्णा सलेखना सथारा पूर्वक सभी कर्मों का क्षय करके सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करती है।

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥



दशम अध्ययन—महासेनकृष्णा

महासेनकृष्णा द्वारा आयबिल वर्धमान तप की आराधना

110– एवं[A]–महासेणकण्हा वि, नवर–आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तंजहा–

महासती काली देवी की तरह ही महासती महासेनकृष्णा का वर्णन भी जानना चाहिये।

विशेष—महासती महासेनकृष्णा ग्रायम्बिल वर्धमान तप को स्वीकार करके विचरण करने लगती है। जिसकी विधि इस प्रकार है—

ग्रायंबिल करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता बे ग्रायंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता तिण्णि ग्रायंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता चत्तारि ग्रायंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता पंच ग्रायंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता छ ग्रायबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ, 2 त्ता।

एक्कुत्तरियाए वड्ढीए ग्रायंबिलाइं वड्ढंति चउत्थ-तरियाइं जाव ग्रायबिलसयं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ।

सर्व प्रथम ग्रायम्बिल करती है, करके, उपवास करती है, उपवास करके, दो ग्रायम्बिल करती है, दो करके, फिर एक उपवास करती है। एक उपवास करके, तीन ग्रायम्बिल करती है। तीन ग्रायम्बिल करके, एक उपवास करती है, उपवास करके, चार ग्रायम्बिल करती है। चार ग्रायम्विल करके, उपवास करती है। उपवास करके, पाच ग्रायम्बिल करती है। पाच करके, उपवास करती है। उपवास करके, छ ग्रायम्विल करती है। छ करके, उपवास करती है, उपवास करके, सात ग्रायम्विल, फिर उपवास, फिर ग्राठ ग्रायम्विल, इस प्रकार एकान्तरित उपवास से ग्रायम्विल को वढाते-वढाते सौ ग्रायम्विल तप करती है, सौ ग्रायम्विल करके, उपवास करती है।

तए ण सा महासेणकण्हा ग्रज्जा ग्रायबिलवड्ढमाण तवोकम्मं चोद्दसहिं वासेहि तिहि य मासेहि वीसहि य ग्रहोरत्तेहि ग्रहासुत्तं जाव ग्राराहेत्ता जेणेव ग्रज्जचंदणा ग्रज्जा तेणेव

इस प्रकार महासेनकृष्णा ग्रार्या ग्रायम्विल वर्धमान तप १४ वर्ष, ३ मास, २० ग्रहोरात्र तक सूत्र की विधि के ग्रनुसार सम्यक्तया काया से स्पर्श करती है। स्पर्श करके, जिधर, चन्दनवाला ग्रार्या विराजमान थी, उधर ग्राती है, ग्राकर के, ग्रार्या प्रवर

उवागया, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थं जाव[B] भावेमाणी विहरइ।

चन्दनवाला को वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके बहुत उपवास-वेला आदि तपश्चर्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगती है।

111—तए णं सा महासेणकण्णा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

तव महासेनकृष्णा आर्या, उस उदार तप से कृश होकर भी तप तेजश्री से उपशोभित प्रतीत होती है। उस महासेन कृष्णा आर्या को किसी समय पिछली रात्रि मे स्कदक अनगार की तरह विचार उत्पन्न होता है। और प्रात वह आर्या प्रवर चन्दनवालाजी मे पूछती है, पूछ करके सलेखना सथारा लेकर जीवन-मरण की आकाक्षा नही करती हुई, विचरण करने लगती है।

तए णं तीसे महासेणकण्हा अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंत्ता जहा खंदयस्स जाव अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ। जाव[A] संलेहणा कालं अणवकंखमाणी विहरइ।

तएणं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जित्ता वहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियाय पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ आराहित्ता चरिमउस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा।

महासेनकृष्णा आर्या, आर्या प्रवर चन्दनवालाजी के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन करती है। अध्ययन करके पूर्ण सत्रह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर, एक मास के सलेखना-सथारा से अपनी आत्मा को शोधित करती हुई, अनशन द्वारा ६० भक्तो को छेदन कर, जिस अर्थ के लिये सयम जीवन स्वीकार किया था, यावत् उस अर्थ को सिद्ध कर लेती है, अर्थात् चरम उच्छ्वास-नि श्वास की समाप्ति के साथ सिद्धत्व अवस्था प्राप्त कर लेती है।

अट्ठ य वासा आई एक्कोत्तरियाए जाव सत्तरस एसो खलु परियाओ सेणियभज्जाण नायव्वो ।।1।।

श्रेणिक राजा की दसो रानियो की दीक्षा पर्याय प्रारम्भ से पहली रानी के आठ वर्ष से लेकर, एक वर्ष बढाते हुए, दसवी रानी की दीक्षा पर्याय सत्रह वर्ष समझना चाहिये ।

। दशम अध्ययन समाप्त ।

आयम्बिल वर्धमान तप

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८०	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

निक्षेप : उपसंहार

112— एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते !

इस प्रकार हे जम्बू ! धर्म तीर्थ के प्रवर्तक मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के अष्टम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादित किया है । उन्होने जिस प्रकार फरमाया है, वैसा ही मै कहता हू ।

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयखंधो । अट्ठ वग्गा । अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति । तत्थ पढमविइयवग्गे दस दस उद्देसगा । तइयवग्गे तेरस उद्देसगा । चउत्थ-पंचमवग्गे दस दस उद्देसगा । छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा । सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा । अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा ।

अन्तकृद्दशागसूत्र का एक श्रुतस्कध है । आठ वर्ग है । इसका आठ दिवसो मे ही उपदेश देते है । उनमे प्रथम-द्वितीय वर्ग मे दस-दस अध्ययन होते हैं । तृतीय वर्ग मे १३ उद्देशक, चतुर्थ-पचम वर्ग मे दस-दस उद्देशक, छट्टे वर्ग मे सोलह उद्देशक, सप्तम वर्ग मे तेरह उद्देशक, अष्टम वर्ग मे दस उद्देशक होते है ।

सेसं जहा नायाधम्मकहाणं ।

जिस विपय का वर्णन प्रस्तुत सूत्र मे नही किया गया है, उसे ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिये ।

—o—

जिज्ञासा और समाधान

जिज्ञासा तप करके अपने शरीर को सुखाना, क्या अपने आपकी हिसा नही है ? तप से शारीरिक-मानसिक शुद्धि के साथ आत्म शान्ति कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान विधिवत् सम्यक्ज्ञान के साथ तप करना अपने आपकी हिसा नही, बल्कि अहिसा है, क्योकि मानव कितनी भी सावधानी रखे, फिर भी कुछ न कुछ अधिक खाने मे आ ही जाता है, अधिक खाना प्राणियो के लिये अहितकर है, क्योकि खाद्य पदार्थो के अभाव मे अन्य कई प्राणियो की मृत्यु तक हो जाती है । इस मरण की हिसा का पाप मरने वाले को तो लगता ही है किन्तु खाद्य पदार्थो का दुरुपयोग करने वाले मानव को भी परम्परा से लगता है । नित्य भोजन करने वाला, रसना पर नियत्रण नही कर पाता । इसीलिये नित्य भोजन शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक होता है एव इस प्रकार की वृत्ति से प्रतिदिन अधिक कर्म बन्धन भी करता है, जिससे की आत्मा के गुणो के दबने का प्रसग आता है । यह एक प्रकार से स्व हिसा का प्रसग भी बन जाता है । यदि मानव कम से कम महिने के चार उपवास भी करता है एव रसनेन्द्रिय को सम्यक्ज्ञान-पूर्वक नियन्त्रित करता है, तो उपर्युक्त हिसा से छूट सकता है । रसनेन्द्रिय पर सयम करने से अन्य इन्द्रिया भी सयमित होती है और उपवास से आत्माशुद्धि, शारीरिक स्वास्थ्य, बुद्धि निर्मलता आदि उपलब्धिया भी सहज रूप से होने लगती है । अतएव प्रति माह मे चार उपवास भी मानव के लिये स्व पर सरक्षण के हेतु बनते है । कदाचित् स्वय की प्रसन्नता के साथ सुदीर्घ समय तक तपश्चरण भी वह करता है, तो वह भी अनशन तप के साथ-साथ शरीर के उपर रहे हुए ममत्व भाव को कम करता है, एव समत्व भाव की प्राप्ति मे सहायक बनता है । सुदीर्घ-तपश्चरण के पश्चात् यदि विधिवत् अर्थात् खाद्य पदार्थो का नियमित एव सयमित सेवन हो तो उसके शरीर की अभिवृद्धि व्यवस्थित रूप से अधिक होती है ।

तपश्चर्या से पूर्व जैसा शरीर था, उससे अधिक पारणे से शरीर मजबूत हो जाता है, साथ ही उसका आत्मबल एव मनोबल आदि मे भी वृद्धि होती है ।

आयुर्वेदिक, प्राकृतिक उपचार की दृष्टि से भी शारीरिक स्वस्थता के लिये बहुत दिनो तक व्यक्ति को भूखा रख कर कायाकल्प किया जाता है । अत सुदीर्घ तपश्चरण भी स्व-पर रक्षण है एव हिसा नही, अहिसा का प्रमुख परिचायक है ।

शात क्रान्ति के जन्मदाता आचार्य गुरुदेव स्व श्री गणेशीलालजी म सा. फरमाया करते थे कि जिसको अधिक जीना है, वह अधिक तपश्चर्या करे ।

जिज्ञासा रत्नावली तप की विधि क्या है ?

समाधान रत्नावली तप मे सबसे पहले उपवास किया जाता है । उपवास के बाद एक बेला फिर एक तेला, फिर आठ बेले किये जाते है । इसके बाद एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, चार उपवास, पाच उपवास, छ , सात, आठ, नव, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सौलह उपवास किये जाते है । फिर ३४ बेले करके १६ उपवास से १५, १४, १३ आदि उतरते-उतरते एक उपवास करना होता है । तद्नन्तर आठ बेले, एक तेला, एक बेला और अन्त मे एक उपवास करना होता है । इस प्रकार पहली परीपाटी पूर्ण होती है । इसके पारणे मे घृत, दुग्ध आदि सभी रस लिये जाते है । दूसरी, तीसरी, चौथी परिपाटी भी इसी प्रकार होती है, किन्तु पारणे, दूसरी परिपाटी मे विगय रहित, तीसरी मे लेप रहित एव चौथी मे आयम्बिल करने होते है । एक परिपाटी को पूर्ण करने मे एक वर्ष, तीन मास, बाईस दिवस लगते हे ।

जिज्ञासा कनकावली तप की विधि क्या है ?

समाधान कनकावली तप की विधि रत्नावली तप की तरह ही होती है । अन्तर केवल इतना ही है कि रत्नावली तप के तीनो स्थानो पर जहा बेले किये जाते है, कनकावली मे वहा तेले करने होते है । इसकी प्रथम परिपाटी मे एक वर्ष, पाच मास, बारह दिवस लगते है । चारो परिपाटियो मे ५ वर्ष, ९ मास, १८ दिवस लगते है ।

जिज्ञासा · क्षुल्लक (लघु) सिह निष्क्रीडित तप की विधि क्या है ?

समाधान क्षुल्लक सिह निष्क्रीडित तप मे सर्व प्रथम उपवास तद्नन्तर क्रमश बेला, उपवास, तेला, बेला, चौला, तेला, पचौला, चौला, छ , पाच, सात, छ , आठ, सात, नौ, आठ, नौ, सात, आठ, छ , सात, पाच, छ चौला, पचौला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला, उपवास करना होता है । यह प्रथम परिपाटी की विधि है । पारणे मे दूध, घी आदि सभी प्रकार के रस लिये जा सकते है । दूसरी परिपाटी मे विगय रहित पारणे होते है । तीसरी परिपाटी मे लेप रहित पारणे होते है, चौथी परिपाटी के पारणे मे आयम्बिल करने होते है । प्रथम परिपाटी मे छ मास, सात दिवस लगते है । चारो परिपाटियो मे २ वर्ष, २८ दिवस लगते है ।

जिज्ञासा महासिहनिष्क्रीडित तप की विधि क्या है ?

समाधान लघुसिहनिष्क्रीडित तप की तरह ही महासिहनिष्क्रीडित तप होता है । अन्तर केवल इतना ही है कि लघु मे एक उपवास से लेकर नौ तक आगे बढते है किन्तु महासिहनिष्क्रीडित तप मे एक उपवास से लेकर सौलह तक किये जाते है । सौलह से पीछे क्रमश एक तक उतरना होता है । इसकी एक परिपाटी मे एक वर्ष, छ मास, अठ्ठारह दिवस लगते है । चारो परिपाटियो का समय छ वर्ष, दो मास, अठ्ठारह दिवस होते है ।

जिज्ञासा : सप्त–सप्तमिका, अष्ट–अष्टमिका, नव-नवमिका, दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा की विधि क्या है ?

समाधान सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा की स्वरूप विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति भोजन और एक दत्ति पानी ग्रहण किया जाता है । दूसरे सप्ताह मे दो दत्ति भोजन औरदो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है । इस प्रकार तीसरे सप्ताह मे तीन-तीन, चौथे सप्ताह मे चार-चार वढते-बढते सातवे सप्ताह मे सात-सात दत्ति भोजन पानी की ग्रहण की जाती है । इस प्रकार सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा मे ४९ दिन लगते है और १९६ दत्तिए भिक्षा मे ग्रहण की जाती है ।

साधु या साध्वी के पात्र मे दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी, जब तक धारा अखण्डित बनी रहे तब तक, जो आहार पानी पात्र मे आ जाता है, उसे एक दत्ति कहते है । धारा टूट जाने के बाद जो आहार-पानी आता है, उसे उस दत्ति के अन्दर नही माना जा सकता । अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम आठ दिनो मे एक-एक दत्ति भोजन-पानी, इस प्रकार वढते वढते आठवे आठ दिनो मे आठ-आठ दत्ति भोजन-पानी की ली जाती है । इस प्रतिमा मे ६४ दिन लगते है । दो सौ अट्ठासी भिक्षाए ग्रहण की जाती है । नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम के नौ दिवस मे एक दत्ति भोजन, एक दत्ति पानी, इस प्रकार वढते-बढते नौवे नवदिवसो मे नवदत्ति भोजन और नवदत्ति पानी लिया जाता है । इसमे ८१ दिवस लगते है । ४०५ दत्तिया ग्रहण की जाती है ।

दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा मे प्रथम के दस दिवसो मे एक दत्ति भोजन, एक दत्ति पानी ग्रहण किया जाता है । वढते-बढते दसवे दस दिवसो मे दस दत्ति भोजन और दस दत्ति पानी ग्रहण किया जाता है । इसमे १०० दिन लगते है । ५५० दत्तिए ग्रहण की जाती हैं ।

जिज्ञासा लघुसर्वतोभद्र तप की विधि क्या है ?

समाधान लघुसर्वतोभद्र तप की विधि इस प्रकार है—

उपवास, वेला, तेला, चौला, पचौला, तेला, चौला, पचौला, वेला, तेला, चोला, वेला, उपवास, वेला, तेला, चौला, वेला, तेला, चौला, पचौला, उपवास, चौला पचौला, उपवास, वेला, तेला ।

इस प्रकार प्रथम परिपाटी सम्पूर्ण होती है । पारणो मे सभी प्रकार के दुग्ध, घृत आदि रस लिये जाते है । इसी प्रकार की दूसरी परिपाटी के पारणो मे सभी रसो का त्याग तथा तीसरी परिपाटी के पारणे मे लेप रहित आहार, चौथी परिपाटी के पारणो मे आयम्बिल करने होते हैं ।

इस परिपाटी मे १०० दिन लगते है, जिसमे २५ दिन पारणे के आते है। चारो परिपाटियो मे ४०० दिन लगते है। जिसमे १०० दिन पारणे के आते है।

जिज्ञासा महासर्वतोभद्र तप की विधि क्या है ?

समाधान महासर्वतोभद्र तप की विधि इस प्रकार है —

प्रथम लता उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, छः, सात

द्वितीय लता चौला, पचौला, छ, सात, एक, बेला, तेला

तृतीय लता सात, एक, बेला, तेला, चौला, पचौला, छ

चतुर्थ लता तेला, चौला, पचौला, छ, सात, एक, बेला

पचम लता छ, सात, एक, बेला, तेला, चौला, पचौला

षष्ठ लता तेला, तेला, चौला, पचौला, छ, सात, एक

सप्तम लता पचौला, छ, सात, एक, बेला, तेला, चौला।

इस प्रथम परिपाटी के पारणे मे दुग्ध-घृत आदि रसो को लिये जाते है। दूसरी परिपाटी के पारणे विगय रहित, तीसरी परिपाटी के पारणे लेप रहित और चोथी परिपाटी के पारणे आयम्बिल से किये जाते है। चारो परिपाटियो मे दो वर्ष, आठ मास, दस दिवस लगते हैं।

जिज्ञासा भद्रोत्तर प्रतिमा तप की विधि क्या है ?

समाधान : "भद्रोत्तर प्रतिमा" तप मे चार परिपाटियाँ होती हे। प्रत्येक परिपाटी मे पाच लताए होती है, जिनकी तप विधि इस प्रकार है —

प्रथम लता पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास।

द्वितीय लता सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास।

तृतीय लता नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास।

चतुर्थ लता छ उपवास, सात उपवास, आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास।

पचम लता आठ उपवास, नव उपवास, पाच उपवास, छ उपवास, सात उपवास।

प्रथम परिपाटी मे सभी रसो को, दूसरी मे विगय रहित, तीसरी मे लेप रहित आहार पारणो मे लिया जाता है। चौथी परिपाटी मे पारणे मे आयम्बिल किया जाता है। एक परिपाटी का समय ६ मास, १० दिवस है। चारो परिपाटियो का समय दो वर्ष, दो मास, बीस दिवस है।

जिज्ञासा : मुक्तावली तप की विधि क्या है ?

समाधान . मुक्तावली तप की भी चार परिपाटिया होती है। प्रथम परिपाटी के अनुसार ही सभी परिपाटिया होती है। अन्तर इतना ही होता है कि प्रथम परिपाटी के पारणो मे घृतादि

रसो का, दूसरी परिपाटी के पारणे मे विगय रहित आहार, तीसरी परिपाटी के पारणे मे लेप रहित आहार ग्रहण किया जाता है। चतुर्थ परिपाटी के पारणे मे आयम्बिल करने होते है।

एक परिपाटी की विधि इस प्रकार है —

एक, दो, एक, तीन, एक, चार, एक, पाच, उपवास, के क्रम से बढते है, बढते-बढते १६ उपवास करने होते है। तद्नन्तर क्रमश नीचे उतरना होता है। जैसे सोलह उपवास, एक उपवास, पन्द्रह उपवास, एक उपवास, उतरते उतरते अन्त मे एक उपवास आता है।

एक परिपाटी का काल ११ मास १५ दिवस है। चारो परिपाटियो का काल ३ वर्ष, दस मास होते है।

जिज्ञासा आयम्बिल वर्धमान तप की विधि क्या है ?

समाधान आयम्बिल वर्धमान तप मे सर्व प्रथम एक आयम्बिल, फिर एक उपवास तद्नन्तर दो आयम्बिल फिर एक उपवास, इस प्रकार बढते-बढते सौ आयम्बिल और एक उपवास तक करना होता है।

यह तप चौदह वर्ष तीन मास, बीस दिन मे पूर्ण होता है।



जावपूर्ति परिशिष्ट 'A'

1–A— औपपातिक सूत्र= श्री घासीलाल जी मा. सा. पृ. 4 से 26 ॥

B— धम्मो कहिओ । परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं ॥

C— नामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणयपुलयनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महात्तवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से अज्जजंबू नामं अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जाय कोउहल्ले, संजायसड्ढे संजाय संसए, संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नसंसए, उप्पन्नकोउहल्ले समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नसंसए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति । उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ । करेत्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं ॥

2–D— तित्थयरेणं, सयंसंबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुंडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगुत्तमेणं, लोगनाहेणं, लोगहिएण, लोगपइवेणं, लोगपज्जोयगरेणं अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मनायगेणं, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेणं, वियट्टछउमेणं, जिणेणं, जावएणं तिन्नेणं, तारएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं, सिवमयलमरूअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं ॥

E-F— जाव पूर्ति D ॥

3-4–A,B,C,D,E— सूत्र सं. 2 जाव पूर्ति D ॥

5–A— तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणाविहगुच्छगुम्म–लया–वल्लि–परिगए,

हंस-मिग-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेए अणेगतड-कडग-वियर-उज्झर-पवायपब्भारसिहरपउरे अच्छरगण-देवसंघ चारण-विज्जाहरमिहुण-संविचिण्णे निच्चच्छणए दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्कबलवगाणं, सोमे सुभगे, पियदंसणे सुरूवे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।।

B – सव्वोउय, पुप्फ-फल-समिद्धे, रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाइए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।।

C— औपपातिक सूत्र सं. 5 (अवशेष पाठ देखे) ।।

6-A— तलवर-माडबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि सेणावइ ।।

B— पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महयरत्तं आणाईसर सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाऽऽहय-णट्ट-गीय वाइयतंतो-तल-तालतुडिय-घण-मुयंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे ।।

8-A— तहा गोयमा वि समयेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ करित्ता जेणामेव समणे भगवं अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ 2 समणं भगवं अरिट्ठनेमी तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते। लोए जराए मरणेण य। से जहा नामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरूए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मस वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खिय।

तए णं समणे भगवं अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ सयमेव आयार जाव धम्ममाइक्खइ-एवं-देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं

भुंजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं सजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं ।

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सोच्चा णिसम्म सम्मं पडिवज्जइ । तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए, उट्ठाय, पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ, तए णं से गोयमे अणगारे इणमेव णिग्गथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ ।।

9–A— छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं-मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं ।।

10–B— अप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे–केसलोए, बंभचेरवासे अण्हाणगं अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिंसणाओ तालणाओ, गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा–गामकंटगा अहियासिज्जंति तमट्ठं आराहेइ चरिमुस्सासेहिं ।।

11–A— सूत्र सं. 2 जावपूर्ति D ।।

13–A— जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ।।

14–A— रिद्धत्थिमिय समिद्धा पमुइयजणजाणवया आइण्णजणमणुस्सा हलसयसहस्स–संकिट्ठ–विकिट्ठ–लट्ठ पण्णत्त सेउसीमा कुक्कुड–संडेय–गाम पउरा उच्छु–जव–सालि–कलिया, गोमहिस–गवेलग–प्पभूया आयारवंतचेइय जुवइ–विविह सण्णिविट्ठ–बहुला–उक्कोडिय–गायगंठि भेयग भड–तक्कर–खंडरक्ख–रहिया खेमा णिरूवद्दवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकुडुंबियाइण्ण–णिव्वुय सुहाणउ–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिय–वेलंबग–कहग– पवग– लासग– आइक्खगलंख– मंख–तूणइल्ल– तुबंवीणिय–अणेगता–

लायराणुचरिया – श्रारामुज्जाण – श्रगड – तलाग–दीहिय–वप्पिणगणोववेया नंदणवण सन्निभप्पगासा उव्विद्ध–विउल–गंभीर–खायफलिहा–चक्क–गय–मुसुंढि–श्रोरोह–सयग्घि जमलकवाडधणदुप्पवेसा धणुकुडिल–वंकपागार–परिक्खित्ता कविसीसगवट्टरइयसंठियविरायमाणा श्रट्टालयचरिय–दार–गोपुर–तोरणसमुण्णयसुविभत्तरायमग्गा छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला विवणि-वणिछेत्तसिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा सिंघाडग–तिग–चउक्क–चच्चर–पणियावण विविहवत्थुपरिमंडिया सुरम्मा नरवइपविइण्णमहिवइपहा श्रणेगवर तुरग–मत्तकुंजर–रहपहकर–सीय–संदमाणीश्राइण्णजाणजुग्गा विमउलणवणलिणिसो-भियजला पंडुरवरभवणसण्णिमहिया उत्ताणणयण पेच्छणिज्जा पासाईया दरिसणिज्जा श्रभिरूवा पडिरूवा ।। श्रौपपातिक सूत्र ।।

B— सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे-रम्मे-नंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणीए श्रभिरूवे पडिरूवे ।। नायाधम्मकहाश्रो ।।

C— दित्ते वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणा-इण्णे, बहुधण-बहुजायरूव-रयए, श्राश्रोगप्पश्रोगसंपउत्ते विच्छड्डिय-विउल भत्तपाणे बहुदासी-दास-गो-महिस गवेलगप्पभूए बहुजणस्स ।।

D— पाणि-पाया श्रहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा लक्खण वंजण-गुणोववेश्रा माणुम्माण-प्पमाण पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग सुदरंगी ससि सोमाकार-कंत-पिय दंसणा ।।

15-E–श्रहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे लक्खण-वंजण गुणोववेए माणुम्माणप्पमाण पडिपुण्ण सुजायसव्वंग सुंदरंगे ससिसोमागारे कंते पियदसणे ।।

F– खीरधाईए, मंडणधाईए, मज्जणधाईए, श्रंकधाईए, कीलावणधाईए, बहूहिं, खुज्जाहिं चिलाइयाहिं, वामणियाहिं, वडभियाहिं बब्बराहिं लासियाहिं, लाउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं मुरंडीहिं सवरीहिं पारसीहिं णाणादेसीविदेसपरिमंडियाहिं इंगियचिंतिय पत्थियवियाणियाहिं सदेसणेवत्थ-गहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरूणि वंदणपरियालपरिवुडे वरिसधरकंचुइमहयरवंदपरिक्खित्ते हत्थाश्रो हत्थं साहरिज्जमाणे श्रंकाश्रो श्रंकं परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे

उवलालिज्जमाणे रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायंसि ।।

16–A— तए णं से कलायरिए अणीयसं कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणिरूतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ ।

तंजहा—लेहं, गणियं, रूवं, नट्टं, गीयं, वाइयं, सरगयं, पोक्खरगयं, समतालं, जूयं, जणवायं, पासयं, अट्ठावयं, पोरेकच्चं, दगमट्टियं, अन्नविहिं, पाणविहिं, वत्थविहिं, विलेवणविहिं, सयणविहिं, अज्जं, पहेलियं, मागहियं, गाहं, गीइयं, सिलोयं, हिरण्णजुत्तिं, सुवण्णजुत्तिं, चुन्नजुत्तिं, आभरणविहि, तरूणीपडिकम्मं, हत्थिलक्खणं, पुरिसलक्खण, हयलक्खणं, गयलक्खणं, गोणलक्खणं, कुक्कुडलक्खणं, छत्तलक्खणं, डंडलक्खणं, असिलक्खणं, मणिलक्खणं, कागणिलक्खणं, वत्थुविज्जं, खंधारमाणं, नगरमाणं वूहं, पडिवूहं, चारं, पडिचारं, चक्कवूहं, गरूलवूहं, सगडवूहं, जुद्धं, निजुद्धं, जुद्धातिजुद्धं, अट्ठिजुद्धं, मुट्ठिजुद्धं, बाहुजुद्धं, लयाजुद्धं, ईसत्थं, छरूप्पवायं, धणुव्वेयं, हिरण्णपागं, सुवण्णपागं, सुत्तखेडं, वट्टखेडं, नालियाखेडं, पत्तच्छेज्जं, कटगच्छेज्जं, सजीवं, निज्जीवं, सउणिरूअमिति ।

तए णं से कलायरिए अणीयसं कुमारं, लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरूअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेइ सिक्खावेइ सिहावेत्ता, सिक्खावेत्ता अम्मापिउणं उवणेइ ।

तए णं अणीयसकुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं मधुरेहिं वयणेहिं विपुलेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति । दलइत्ता पडिविसज्जेंति ।

तए णं से अणीयसे कुमारे बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीइरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही, गयजोही, रहजोही, बाहुजोही, बाहुप्पमद्दी ।।

B— सरिव्वयाणं, सरित्तयाणं, सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेयाण-सरिसएहिंतो इब्भकुलेहिंतो आणिल्लियाणं ।।

C— बत्तीसं सुवण्णकोडीओ, मउडे, मउडप्पवरे बत्तीसं कुंडलजुए, कुंडलजुयप्पवरे, बत्तीसे हारे हारप्पवरे, बत्तीसं अद्धहारे, अद्धहारप्पवरे, बत्तीसं एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ एवं रयणावलीओ, बत्तीसं कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए, बत्तीसं खोमजुयलाइ, खोमजुयप्पवराइं एवं वडगजुयलाइं एवं पट्टजुयलाइं एवं दुगुल्लजुयलाइं बत्तीसं सिरीओ, बत्तीसं हिरीओ, बत्तीसं धिईओ कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, बत्तीसं णंदाइं, बत्तीसं भद्दाइं बत्तीसं तले तलप्पवरे, सव्वरयणामए, णियगवरभवणकेऊ बत्तीसं झए झयप्पवरे, बत्तीसं वये वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएणं वएणं, बत्तीसं णाडगाइं णाडगप्पवराइं बत्तीसबद्धेणं णाडएणं, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए, सिरिघरपडिरूवए, बत्तीसं हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए बत्तीसं जाणाइं जाणप्पवराइं, बत्तीसं जुगाइं जुगप्पवराइं, एवं सिबियाओ, एवं संदमाणीओ, एवं गिल्लीओ थिल्लीओ, बत्तीसं वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइं, बत्तीसं रहे पारिजाणिए बत्तीसं रहे संगामिए, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, बत्तीसं हत्थी हत्थीप्पवरे, बत्तीसं गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं, बत्तीसं दासे दासप्पवरे, एवं चेव दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, बत्तीसं सोवण्णिए, ओलंबणदीवे, बत्तीसं रूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सुवण्णारूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सोवण्णिए उक्कंचणदीवे, बत्तीसं पंचरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि, बत्तीसं सोवण्णिए थाले, बत्तीसं रूप्पमए थाले, बत्तीसं सुवण्णरूप्पमए थाले, बत्तीसं सोव्वण्णियाओ पत्तीओ 3, बत्तीसं सोवण्णियाइं थासयाइं 3, बत्तीसं सोवण्णियाइं मल्लगाइं 3, बत्तीसं सोवण्णियाओ तालियाओ 3, बत्तीसं सोवण्णियाओ कावइआओ, बत्तीसं सोवण्णिए अवएडए 3, बत्तीस सोवण्णियाओ अवयक्काओ 3, बत्तीसं सोवण्णिए पायपीढए 3, बत्तीसं सोवण्णियाओ भिसियाओ 3, बत्तीस सोवण्णियाओ करोडियाओ 3, बत्तीसं सोवण्णिए पल्लंके 3, बत्तीसं सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ, बत्तीस हसासणाइ, बत्तीसं कोंचासणाइं, एवं गरूलासणाइं, उण्णयासणाइं, पणयासणाइं दोहासणाइं, भद्दासणाइं

पक्खासणाइं, मगरासणाइं, बत्तीसं पउमासणाइं बत्तीसं दिसासोवत्थियासणाइं बत्तीसं तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव बत्तीसं सरिसवसमुग्गे, बत्तीसं खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव बत्तीसं पारिसीओ, बत्तीसं छत्ते, बत्तीसं छत्तधारीओ, चेडीओ, बत्तीसं चामराओ, बत्तीसं चामरधारीओ चेडीओ, बत्तीसं तालियंटधारीओ चेडीओ, बत्तीसं करोडियाओ, बत्तीसं करोडियाधारीओ चेडीओ, बत्तीसं खीरधाईओ, जाव बत्तीसं अंकधाईओ, बत्तीसं अंगमद्दियाओ, बत्तीसं उम्मद्दियाओ, बत्तीसं ण्हावियाओ, बत्तीसं पसाहियाओ, बत्तीसं वण्णगपेसीओ, बत्तीसं चुण्णगपेसीओ, बत्तीसं कोट्ठागारीओ, बत्तीसं दवकारीओ, बत्तीसं उवत्थाणियाओ, बत्तीसं णाडइज्जाओ, बत्तीसं केडुंबिणीओ, बत्तीसं महाणसिणीओ, बत्तीसं भंडागारिणीओ, बत्तीसं अज्झाधारिणीओ, बत्तीसं पुप्फधारिणीओ, बत्तीसं पाणीधारिणीओ, बत्तीसं बलीकारिओ, बत्तीसं सेज्जाकारीओ, बत्तीसं अब्भिंतरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं बाहिरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं मालाकारीओ, बत्तीसं पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग० जाव संतसारसावएज्जं, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकामं परिभाएउं ।

तए णं से अणीयसे कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउडप्पवरं दलयइ. एवं तं चेव सव्वं जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहु हिरण्ण वा जाव परिभाएउं तए णं से अणीयसकुमारे उप्पिं पासायवरगए ।।

17-D— जेणेव भद्दिलपुर नयरे जेणेव सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे ।।

E— जणसद्दं च जणकलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था ।। जहा ०गोयमा जहा अणगारे जाए ।।

F— सूत्र सं. 9–10 तक ।।

G— अत्ताणं भूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा ॥

18-A— अणिहय, विऊ, देवजसे ॥

19-B— सूत्र स. 9–10 ॥

20-C—णं भंते । समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ? ॥

D— सूत्र सं. 17 प्रारभ से परिसा निग्गया तक ॥

21-A— अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणा ॥

22-B— बीयाए पोरिसीए झाण झियायंति तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणवत्थाइं पडिलेहंति पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जंति भायणाइं उग्गाहेति उग्गाहेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमि वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी ॥

C— उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ॥

D— चवलमसभंता जुगतंरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं ॥

23-A— तुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण ॥

B— नीय मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे ।

तए ण सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइ अणुगच्छइ तिक्खुत्तो आयाहिणं-पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराणं मोयगाण थाल भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमसइ, वदिता नमसित्ता ॥

24-A— सूत्र सं. 22 जाव पूर्ति C ।।

B— सूत्र सं. 5 वित्थिण्णा से पमुदिय पक्कीलिया ।।

C— मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

D— सूत्र सं. 5 दुवालस······देवलोगभूयाए ।।

E— सूत्र 24 जाव पूर्ति C की तरह ।।

25-A— सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पलगवल-गुलिय-अयसि कुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकिय-वच्छा कुसुम-कुण्डल भद्दलया ।।

B— भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

C— जावज्जीवाए छट्ठछट्ठेणं अणिक्खत्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरित्ताए ।।

D— सूत्र 21 मा पडिबंध करेह तक ।।

E— सज्झायं करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

26-A— सूत्र सं. 20 तेणं कालेणं······समाणा तक ।।

B— सरीसए सरित्ताए सरिव्वए नीलुप्पल-गवल-गुलिय अयसिकुसुमप्पगासे सिरिवच्छंकियवच्छे, कुसुम-कुंडल भद्दालए नलकुब्बरसमाणे ।।

C— जुत्त-जोइय-सम-खुर-वालिहाण-समालिहियसिंगेहिं, जंबूणयामयकलावजुत्त-परिविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुयपवरकंचणणत्थपग्गहोग्गहियएहिं, णीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं णाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुगजोत्तररज्जुयजुग–पसत्थसुविरचियणिम्मियं, पवरलक्खणो-ववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा ·····एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल एवं·····तहत्तिआणाए विणएणं वयणं जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव ।।

D— तए णं सा देवई देवी अंतो अंतेउरसिण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-

मंगलपायच्छित्ता, किच वरपायपत्तणेउर-मणिमेहला हार-रचिय उचियकडग-खुड्डागएगावली- कंठसुत्त–उरत्थगेवेज्ज–सोणिसुत्तग–णाणामणि–रयण - भूसण विराइयगी, चीणंसुयवत्थपवरपरिहिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरिया, वरचदणवंदिया, वराभरणभूसीयंगी, कालागरूधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, बहूहि खूज्जाहिं, चिलाइयाहिं, णाणादेस–विदेसपरिमंडियाहि, सदेसणेवत्थगहियवेसाहि, इंगिय–चितिय–पत्थियवियाणियाहि–कुसलाहिं, विणीयाहि, चेडियाचक्कवालवरिसधर–थेरकंचुइज्ज–महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा ।

तए णं सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरूहइ, पच्चोरूहित्ता बहूहि खुज्जाहि जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता भगवं अरिट्ठनेमि पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तंजहा–सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेण, मणस्स एगत्तीभावकरणेणं, जेणेव भगवं अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं गरेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता........सुस्सूसमाणी, णमंसमाणी, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा जाव ।।

27–A— सूत्र 26 ।

28–B— कयबलिकम्मा कयकोउयमंगल ।।

30–चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस–विसप्पमाण ।।

31–A— मणसकप्पा करयलपलहत्थमुही अट्टज्भाणोवगया ।।

32–A–– कयबलिकम्मे कयकोउय–मगल–पायच्छित्ते सव्वालकार ।।

B— चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण हियया।।

C— करयल पल्हत्थमुही अट्टज्जाणोवगया ।।

34–D— पगेण्हइत्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता हरिणेगमेसिं देवं मणसि करेमाणे-करेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे हरिणेगमेसिस्स देवस्स आसणं चलइ । तए णं हरिणेगमेसी देवे आसणं चलियं पासइ, पासित्ता, ओहिं पउंजति । तए णं तस्स हरिणेगमेसिस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जितथा–एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे बारवई नयरीए पोसहसालाए कण्हे नामं वासुदेवे अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता णं मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ । तं सेयं खलु मम कण्हस्स वासुदेवस्स अंतिए पाउब्भवित्तए । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उत्तर-पुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता, विउव्वियसमुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ । तंजहा—
(1) रयणाणं, (2) वयराणं, (3) वेरूलियाणं, (4) लोहियक्खाणं, (5) मसारगल्लाणं, (6) हंसगब्भाणं, (7) पूलगाणं, (8) सोगंधियाणं, (9) जोइरसाणं, (10) अंकाणं, (11) अंजणाणं, (12) रयणाणं, (13) जायरूवाणं, (14) अंजणपुलयाणं, (15) फलिहाणं, (16) रिट्ठाण अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हत्ति, परिगिण्हइत्ता कण्हमणुकंपमाणे देवे तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरिय–संजणितगयणपयारो वाघुण्णितविमलकणगपयर–गवडिंसगमउडुक्कडाडोवदंसिणिज्जो, अणेगमणि–कणग–रयण–पहकरपरि-मंडितभत्तिचित्तविणिउत्तमगुणजणियहरिसे, पेंखोलमाणवरललितकुण्ड--लुज्जलियवयणगुणजणितसोमरूवे, उदित्तो विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरंगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणंदो, सरयचंदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठगं-धुद्धुयाभिरामो मेरूरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाण असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेण वीइवयमाणो, उज्जोयतो पभाए

विमलाए जीवलोगं बारावइं पुरवर च कण्हस्स य तस्स पासं उवयइ दिव्वरूवधारी ।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइ परिहिए (एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो–) ताओ उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सोहाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवण्णे दसद्धवन्नाइं सखिंखिणियाइं पवरवत्थाइं परिहिए–कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–

"अहं ण देवाणुप्पिया ! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं मम मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस ण देवाणुप्पिया ! अहं इहं हव्वमागए । संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? कि दलामि ? किं पयच्छामि ? कि वा ते हिय–इच्छितं ।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसि देवं अंतलिक्खपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहियं ।।

35–A— बालभावे विण्णय परिणयमेत्ते जोव्वणग ।।

B— भवित्ता आगाराओ अणगारियं ।। ।।

C— कंताहि पियाहि मणुण्णाहि वग्गूहि ।।

36– A— वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे, बाहिरओ दूमिय–घट्ठमट्ठे, विचित्तउल्लोय–चिल्लियतले, मणि–रयण–पणासियधयारे, बहुसम–सुविभत्तदेसभाए, पंचवण्ण–सरस–सुरभिमुक्क–पुप्फपुंजोवयारकलिए, कालागुरूपवर–कुंदुरूक्कतुरूक्क–धूवमघमघंतगंधुद्धयाभिरामे, सुगंधि–वर–गंधिए, गंधवट्टिभूए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए, उभओविब्बोयणे, दुहओ उण्णए, मज्झे णय–गंभीरे, गगा–पुलिण–वालुय–उद्दालसालिसए, उवचिय–खोमिय–दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे, सुविरइयरयत्ताणे, रत्तंसुय–संवुए, सुरम्मे, आइणगरूय–बूर–णवणीय–तूलफासे, सुगंध–वरकुसुम-चुण्ण–सयणोवयारकलिए, अद्धरत्तकालसमयसि सुत्त–जागरा ओहीरमाणी

ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं, कल्लाणं, सिवं, धण्णं, मंगल्लं सस्सिरियं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा ।

हार–रयय–खीरसागर–ससंककिरण-दगरय–रययमहसिल–पंडुरतरोरू-रमणिज्ज–पेच्छणिज्जं, थिर–लट्ठ–पउट्ठ–वट्ट–पीवर–सुसिलिट्ठ–विसिट्ठ–तिक्खदाढाविडंबियमुहं, परिकम्मियजच्चकमलकोमलमाइअसोभंतलट्ठउट्ठं, रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजीहं, मूसगयपवर–कणगताविय आवत्तायंत–वट्टतडिविमलसरिसणयणं, विसालपीवरोरू, पडिपुण्णविपुलखंधं, मिउसिविसयसुहुमलक्खण–पसत्थविच्छिण्ण–केसरसडोवसोभियं, ऊसिय–सुणिम्मिय–सुजाय–अप्फोडिय–लंगूलं, सोमं, सोमाकारं, लीयायंतं, जंभायंत, णहयलाओ ओवयमाणं णिययवयणमइवयंतं ।।

B— तए णं सा देवई देवी अयमेयारूवं ओरालं जाव–सस्सिरियं महासुविण पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूसियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव वसुदेवस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वसुदेव–रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं मिय–महुर–मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता वसुदेवेण अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिरयण–भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि णिसीयइ णिसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया वसुदेवं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव–संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगण0 तं चेव जाव–वियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ता ण पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? तए णं से कण्हे राया देवईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 जाव हयहियए धाराहय-णीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयतणुयऊसवियरोमकूवे तं सुविण ओगिण्हइ,

ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ. ईहं पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ तस्स0 देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कताहि जाव मंगल्लाहि मिय-महुर-सस्सिरि0 संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—

ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे जाव सस्सिरोए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! णवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाण विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउ, कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडेसय, कुलतिलगं, कुलकित्तिकरं, कुलणंदिकरं, कुलजसकरं, कुलाधारं, कुलापायवं, कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणि-पाय, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं, जाव ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुरूवं, देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि ।

से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । तं उराले णं तुमे जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्गतुट्ठि, जाव मंगलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवहेइ ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 करयल0 जाव एवं वयासी-"एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुज्झे वयह" त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता वसुदेवेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता छतुरियमचवल जाव गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी-"मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहि पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ" त्ति कट्टु देव-गुरूजणसंबद्धाहिं

पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरयं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहाणिमित्त–सुत्तत्थधारए, विविहसत्थकुसले, सुविणलक्खणपाठए सद्दावेह ।" तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता वसुदेवस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं वेइयं जेणेव सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपाठगा वसुदेवस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ0 ण्हाया कय0 जाव सरीरा सिद्धत्थग–हरियालियकयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल वसुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति । तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवेणं रण्णा वंदिय–पूइअ–सक्कारिअ–सम्माणिआ समाणा पत्तेयं पत्तेय पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति । तए णं से वसुदेवे राया देवइं देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाठए एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया । एयस्स ओरालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेंति, तस्स0 अण्णमण्णेणं सद्धिं संचालेंति, संचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा । तत्थ णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थयरंसि वा

चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । तंजहा–

"गय–वसह–सीह–अभिसेय–दाम–ससि दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर–सागर–विमाण–भवण–रयणुच्चय–सिहिं च ।।"

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे सत्त महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाण अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति । मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे एगं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति । इमे य णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग–तुट्ठि0 जाव मंगल्लकारए णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया । रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव वीइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं जाव पयाहिइ । से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा । तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग–तुट्ठि–दीहाउअ–कल्लाण0 जाव दिट्ठे ।

तए णं से वसुदेवराया सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एवं वयासी– "एवमेयं देवाणुप्पिया ! जाव से जहेयं तुब्भे वयह" ति कट्टु सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविणलक्खण ।।

C— विउलेणं असण–पाण–खाइम–साइम–पुप्फ–वत्थ–गंध–मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता पडिविसज्जेइ ।।

D— पाणिपायं अहीण–पडिपुण्ण–पंचिंदिय–सरीरं लक्खण–वंजण–गुणोववेयं

माणुम्माण–प्पमाण–पडिपुण्ण–सुजाय–सव्वंग–सुंदरंगं ससिसोमाकार–कंत –पिय–दंसण ।।

E— तए णं ताओ अंगपडियारिओ देवइं देविं नवण्हं मासाणं जाव दारयं पयायं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं, जेणेव वसुदेवे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वसुदेवं राय जएणं विजएणं वद्धावेंति । वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–

एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी नवण्हं मासाणं जाव दारगं पयाया । तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो, पियं मे भवउ ।

तए णं से वसुदेवे राया तासि अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ0 ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विपुलेण य पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेइ, कप्पित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से वसुदेवे राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी– खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बारवइं नयरिं आसित्त जाव परिगीयं करेह, करित्ता चारपरिसोहणं करेह, करित्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । जाव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वसुदेवे राया अट्ठारससेणीप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी–"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए अब्भितरबाहिरिए उस्सुक्कं उक्करं अभडप्पवेसं अंदडिमकुडंडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धुयमुइंगं आमिलायमल्लदामं गणियावरणाडइज्जकलियं अणेग तालायराणुचरितं पमुइय पक्कीलियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदिवसियं करेह, करित्ता एयगाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वसुदेवे राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य जाएहिं दाएहिं भोगेहिं दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एवं च णं विहरइ ।

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता ततिय दिवसे चंदसूरदंसणियं करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असूइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त–णाइ–णियग–सयण–संबंधि–परिजणं बलं च बहवे गणणायग–दंडनायग जाव आमतेइ ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय–मंगल–पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तणाइ0 गणणायग जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसूइभूया तं मित्तणाइनियगसयणसंबंधिपरिजण0 गणणायग0 विपुलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति, संमाणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी–।। (नाया १/१/७४-८१)

37–A— जजुव्वेद–सामवेद–अहव्वणवेद–इतिहास पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं सारए, वारए, धारए, पारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे सिक्खाकप्पे, वागरणे, छंदे निरूत्ते जोइसामयणे अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिवायएसु नयेसु ।।

C— कयबलिकम्मे कयकोउय–मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकार ।।

B— औपपातिक सूत्र 15 ।।

D— औपपातिक सूत्र 70 ।।

38–A— पुरिसा सोमं दारियं गेण्हित्ता कण्णंतेउरंसि ।।

39–B— जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं ।।

40-A— निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि ण भंते ! निग्गंथं पावयण, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि ण भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भट्ठेमि णं भंत्ते ! निग्गंथं पावयण । एवमेयं भंत्ते । तहमेयं भंते । अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्चियमेयं भंते । से जहेयं तुब्भे वयह ! नवरि देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । तओ पुच्छा मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेहि ।

तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिट्ठनेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसिता जेणामेव हत्थिरयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिरखंधवरगए महयाभड-चडगर-पहकरेणं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेण जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरूहइ, पच्चोरूहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ । मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी—धन्नोसि तुम जाया ! संपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्थोसि तुमं जाया ! कयलक्खणोसि तुमं जाया । जण्णं तुमे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी— एवं खलु अम्मयाओ ? मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ । तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता ण अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं सा देवई देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं अस्सुयपुव्वं फरूसं गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागय–रोमकूवपगलंत–विलिणगाया सोयभर–पवेवियंगि नित्तेया दीण–विमण–वयणा करयलमालिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर-लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण – पडंतखुम्मिय – संचुण्णिधवलवलय – पब्मट्ठ – उत्तरिज्जा सूमालविकिण्ण-केसहत्था मुच्छावसनट्ठचेय-गरूई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्कसंधि–बंधणा कोट्टिमलंसि सव्वंगेहि धसत्ति पडिया।

तए णं सा देवई देवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिगारमुहविणिग्गय–सीयल–जलविमलधाराए परिसिंचमाणनिव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय–तालविंट–वीयणग–जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि–सन्निगास–पवडंत–अंसुधाराहि सिंचमाणी पओहरे, कलुण–विमण–दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी–

"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय–ऊसासिए हियय-णंदि–जणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? णो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय–कुलवंसतंतु–कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी– तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह– "तुमं सि णं जाया। अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय–उस्सासिए

हियय-णंदि करे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? णो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। त भुंजाहि ताव जाया। विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतुकज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।" एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ। के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ। तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहुं हिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणसंतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मयाओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह- "इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव पव्वइस्ससि।' एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडव—पडण—विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ ! कि पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता

अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति गयसुकुमालं कुमारं बहूहि विसयाणुलोमाहि आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजमभउव्वेयकारियाहिं पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एवं वयासी–

एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खपहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधारए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरूअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं ।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा बद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

तुमं च णं जाया । सुहसमुचिए नो चेव दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय–पित्तिय–सिंभिय–सन्निवाइय विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी– तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह–"एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे पुणरवि तं चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं

पव्वइस्ससि ।" एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव णं धीरस्स । निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ? त इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।।

41–B— भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

42–A— भोगा असुई वंतासवा पित्तासवा ।।

B— सुक्कासवा सोणियासवा दुरूय–उस्सास नीसासा दुरूय–मुत्त–पुरीस–पूय–बहुपडिपुण्णा उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाणग–वंत–पित्त–सुक्क–सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया सडण–पडण–विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्स ।।

C— मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

43–A— विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहिं य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि ।।

B— तए णं से गजसुकुमालस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गजसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं, महग्घं, महरिहं विपुलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति । तए णं तं गजसुकुमालं कुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं णिसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाण कलसाणं सव्विड्ढीए जाव महया रवेण महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति ।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल-जाव जएण विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एव वयासी–भण जाया ! किं देमो, कि पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो ?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी–इच्छामि ण अम्मयाओ कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउ कासवगं च सद्दाविउं । णिक्खमणं जहा महब्बलस्स ।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडंबियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहि सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेण कासवगं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं, तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति। तए णं से कासवए गयसुकुमालस्य कुमारस्स पिउणा कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल0 गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एव वयासो–संदिसंतु णं देवाणुप्पिया। जं मए करणिज्जं ? तए णं से गय–सुकुमालस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी–तुमं देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। तए णं से कासवे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, मुहं बंधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए णं सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालित्ता अग्गेहि वरेहि, गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहि वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहि अच्चित्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, सुद्धे वत्थे बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार–वारिधार–सिदुवार–छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोग–दूसहाइं अंसूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एवं वयासी–एस णं अम्हं गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहुसु तिहिसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ।

तए ण तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्च पि

सीहासणं रयावेंति, दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहि ण्हावेति सेया() ण्हावित्ता पम्हल-सुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति, लूहित्ता सरसेणं गोसीसचदणेणं गायाइं अणुलिपंति अणुलिपित्ता णासाणिस्सासवायवोज्झं, चक्खुहरं, वण्ण-फरिसजुत्तं, हयलालापेलवाऽइरेगं, धवलं, कणगखचितंतकम्मं, महरिहं, हंसलक्खणपडसाडगं परिहिति, परिहित्ता हार पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता एवं जहा सूरियाभस्स अलंकारो तहेव जाव चित्तं रयणसकदुक्कड मउडं पिणिद्ध ति; किं वहुणा ? गंथिम-वेढिम-पुरिम संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्पखक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेति ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिया कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्पसेणइज्जे विमाणवण्णओ, जाव मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं पुरिससहस्सवाहिणि सीयं उवट्ठवेह उवट्ठवेत्ता मम एयमाणतियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति । तए णं से गयसुकुमाले कुमारे केसालंकारेणं, वत्थालंकारेणं, मल्लालंकारेणं, आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सोहासणवरंसि पुरत्थाऽभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए णं तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा, रयहरण पडिग्गहं च गहाय सीहं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरूहइ, सीयं दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स पिट्ठओ एगा वरतरूणी सिंगारागारचारूवेसा संगयगय

जाव रूप–जोव्वण-विलासकलिया सुंदर–थण0 हिम–रयय–कुमुदकुंदेदुप्पगासं सकोरंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं उवरि धारेमाणी धारेमाणी चिट्ठइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उभओ पासिं दुवे वरतरूणीओ सिंगारागारचारू जाव कलियाओ, णाणामणि–कणग–रयण–विमल–महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त–दडाओ, चिल्लियाओ, संखंक–कुन्देन्दुदगरय–अमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलीलं वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठंति। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा वरतरूणी सिंगारगार जाव कलिया सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकिइसमाणंभिंगारं गहाय चिट्ठइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एगा वरतरूणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तकणगदंडं तालवेटं गहाय चिट्ठइ।

तए ण तस्स गयसुकुमाल कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयं, सरित्तयं, सरिव्वयं, सरिसलावण्ण–रूप–जोव्वण–गुणोववेयं, एगाभरण–वसणगहियणिज्जोयं कोडुंबियवरतरूणसहस्सं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तायं जाव सद्दावेंति। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठ–ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय–मंगल–पायच्छित्ता एगाभरण–वसण–गहिय–णिज्जोया जेणेव गयकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावित्ता एवं वयासी–संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं अम्हेहिं करणिज्जं। तए णं से गयसुकुमालस्य कुमारस्स पिया तं कोडुंबियवरतरूणसहस्सं पि एवं वयासी–तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स सीयं परिवहेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स जाव पडिसुणेत्ता ण्हाया जाव गहिय–णिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं परिवहंति।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया;

तंजहा—सोत्थिय—सिरिवच्छ जाव दप्पणा; तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; एवं जहा उववाइए तहेव भाणियव्वं जाव आलोयं च करेमाणा जयजयसद्दं च पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तए णं से गयसुकुमाल—कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहिं हय—गय—रह—पवरजोह—कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स—कुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासिं णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसंगेल्ली। तए णं से गयसुकुमाल—कुमारे अब्भुग्गयभिंगारे, परिगहियतालियंटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरबालवीयणाए, सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं, तयणंतरं च बहवे लट्ठिग्गाहा, कुंतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा, तयाणंतर च णं अट्ठसयं गयाणं, अट्ठसयं तुरयाणं अट्ठसयं रहाणं, तयाणंतरं च ण लउड—असि—कोतहत्थाणं बहूणं पायत्ताणीणं पुरओ संपट्ठियं; तयाणंतरं च णं बहवे राईसर—तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ संपट्ठिया बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहओ अरिट्ठनेमि तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तस्स गयसुकुमाल—कुमारस्स बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेण णिग्गच्छमाणस्स सिंघाडग—तिय—चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उवावइए, जाव अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी—जय जय णंदा! धम्मेणं जय जय णंदा! तवेणं, जय जय णंदा! भद्दं ते अभग्गेहि णाण-दसणं-चरित्तमुत्तेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समण-धम्मं; जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग—दोसमल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं

सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमुं; अभिभविय गामकंटकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थु, त्ति कट्टु अभिणदंति, य अभिथुणंति य ।

तए ण से गयसुकुमाले कुमारे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसेए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरूहइ । तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अरह अरिट्ठनेमि तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते ! गयसुकुमाले कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमंग ! पुण पासणयाए, से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव गयसुकुमाले कुमारे कामेहि जाए, भोगेहि संवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएणं णोवलिप्पइ भोगरएणं णोवलिप्पए मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधिपरिजणेणं । एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गे भीए जम्मण-मरणेणं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वतेइ; तं एयं णं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया । सीसभिक्ख ।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ! तए णं से गयसुकुमाले—कुमारे अरहया अरिट्ठणेमिणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्ला-लंकारं-ओमुयइ । तए णं सा गयसुकुमाल-कुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएण आभरणमल्ला—लंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—घडियव्वं जाया ! जइयव्वं जाया ! परिक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च ण अट्ठे, णो

पमाएयव्वं ति कट्टु गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मा-पियरो अरिट्ठणेमि वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता जाव नमंसित्ता एवं वयासी–

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य । से जहाणामए केई गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि, जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए, तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि एगे आया भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए संमए अणुमए बहुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मां णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा ण वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खेमाए नीसेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुण्डावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणयवेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्म–माइक्खियं ।

तए ण अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमाल कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव धम्ममाइखइ–एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्व, एवं निसीयव्वं, एव तुयट्ठियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहि जीवेहिं सत्तेहिं, संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि पि पमाइयव्वं । तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स इम एयारुवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ ।

C— भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार–पासवण–खेल-जल्ल–सिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिंदिए ।।

44–A—वग्घारियपाणी अणिमिसनयणे सुक्कपोग्गल–निरुद्धदिट्ठी ।।

45–A—पत्थिए दुरंत पंत-लक्खणे हीण पुण्णचाउद्दसिए सिरि-हिरि-धिइ कित्ती ।।

B—भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

46–A—विउला कक्खडा पगाढा चंडा रूद्दा दुक्खा ।।

B—पिउलं कक्खडं पगाढं चंडं रूद्दं दुक्खं ।।

C—निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे ।।

D—बुद्धे मुत्ते अंतयडे परिनिव्वुए सव्वदुक्ख ।।

47–A—फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि अहपंडुरे पभाए, रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह–गुंजद्धराग बंधुजीवग पारावयचलण नयण परहुयसुरत्तलोयण जासुमिणकुसुम जलियजलण तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर रुवाइरेगरेहन्त सस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए, तस्स दिणकर–परंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे बालातवकुंकुमेणं खइएव्व जीवलोए, लोयणविसआणुआसविगंसतवि-सदर्दसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ।

B—कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल–पायच्छिते सव्वालंकार ।।

C—आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं ।।

48–A—अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणंपयाहिणं करेइ, करेत्ता ।।

49–B—भंते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणांसि एगराइयं महापडियं उवसंप्पज्जित्ता णं विहरित्तए जाव ऐगराइयं महापडिमं ।।

C—गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पिक्खवइ, पिक्खवित्ता भीए तत्थे

तसिए उव्विग्गे संजाय मए तम्रो खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूआ–उज्जला विउला कक्खडा पगाढ़ा चंडा दुक्खा दुरहियासा ।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे तस्स पुरिसस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव दूरहियासं वेयणं अहियासेइ ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । तम्रो पच्छा ।।

50–A— दुरंत–पंत–लक्खणे होणपुण्णचाउद्दसिए सिरि–हिरि–धिइ–कित्ति ।।

B— सूत्र 47 पुरिसं जुण्णं से अंतोघरंसि तक ।।

51–A— पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा ।।

52–A— सूत्र सं. 45 ।।

53–B—सूत्र सं. 2 जावपूर्ति D ।।

54–A— जइ णं भंत्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते । अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ।।

B— सूत्र सं. 6 ।।

C— औपपातिक सूत्र 14 ।।

D— औपपातिक सूत्र 15 ।।

5L–A, B, C, D,— सूत्र सं, 2 जावपूर्ति D ।।

57–A— सूत्र सं. 5 तीसे णं बारवईए से सूत्र सं. 6 तक ।।

B— सूत्र 6 ।।

C— सूत्र 7 एवं सूत्र 9–10 ।।

58–A, B, C, D— सूत्र 2 जावपूर्ति D ।।

E— सूत्र 5–6 ।।

F— सूत्र 6 ।।

G— अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा ।।

H— सूत्र 39 जावपूर्ति B ।।

I— सूत्र 32 ।।

J— देवीए तीसे महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ । तंजहा- सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिण्णादाणाओ वेरमणं सव्वाओ परिग्गहातो वेरमणं ।।

59–A-B— सूत्र 5 ।।

60–C— चइत्ता सुवण्णं एवं धण्णं धणं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं पुरं अंतेउरं चइत्ता विउलं धण कणग रयण मणि–मोत्तिय–संख–सिल–प्पवाल–संतसार सावएज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइयाणं ।।

D— भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

E— रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य ।।

F— अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

61–A,B,C,D—सूत्र 60 । मे अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

62–A— मणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टझाणोवगए ।।

63–A— सूत्र 62 जावपूर्ति A ।।

64–A— तिग चउक्क–चच्चर–चउम्मुह–महापहपहेसु हत्थिखंध वरगया महया महया सद्देणं ।।

B— सूत्र 5 वित्थिण्णा से······देवलोयभूया तक ।।

C— भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

65–A— परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अजंलि ।।

B-- भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

66-A— एवं रूप्पकलसाणं, सुवण्णरूप्पकलसाणं, मणिकलसाणं, सुवण्णमणिकलसाणं, रूप्पमणिकलसाणं, सुवण्णरूपमणिकलसाणं, भोमेज्जकलसाणं सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहि सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेण सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुभिघोसरवेणं महया महया ।।

B— जीविय ऊसासा हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए ।।

67-A— भासासमिया एसणासमिया आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेव-णासमिया उच्चारपासवणं-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिया, मणसमिया वइसमिया कायसमिया मणगुत्ता वइगुत्ता कायगुत्ता, गुत्ता गुत्तिंदिया ।।

B— मुण्डेभावे केसलोए बंभचेरवासे अण्हाणगं अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ फलगसेज्जाओ परघरप्पवेसे लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिंसणाओ तालणाओ गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति ।।

68-A— वर्ग 5 सूत्र 64-65 ।

71-A— दित्ते, वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहुधन-बहुजायरूव-रयए, आओगप्पओगसंपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिसगवेलगप्पभूए बहुजणस्स ।।

B— चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे ।।

C— इसी सूत्र में एवं खलु जंबू से तहेव विउले सिद्धे तक ।।

72-A— किण्होभासे नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे

णिद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीयच्छाए णिद्धे णिद्धच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए, धण–कडिय–कडिच्छाए रम्मे महामेह ।।

76–A— पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पुप्फच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं ।।

77–A— तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह ।।

B— उपरोक्त सूत्र में तएण से घाएमाणे विहरइ तक ।।

78–A— उवलद्धपुण्णपावे, आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरणबंधमोक्खकुसले, असहेज्जदेवा-सुर-नाग - सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरूल-गंधव्व-महोरगाइएहि देवगणेहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिजपेमाणुरागरत्ते । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरपरघरदारप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोपवासेहिं चाउद्दस्सट्ठमुद्दिट्ठ पुण्णामासिणिसु पडिपुण्णं–पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण–खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे अहापरिग्गहिएहि तवोकम्मेहि अप्पाणं भावेमाणे।।

79–B–पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे ।।

C— तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह ।।

D— एव भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—"एव खलु देवाणुप्पिया !

समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थयरे सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहामागए, इह संपत्ते, इह समोसढ़े इहेव रायगिहे णयरे बाहिं गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए; किमंग पुण अभिगमण—वंदण-णमंसण—पडिपुच्छण—पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आयरिस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए ।।

80—A—दसणह सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु ।।

B—सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं ।।

C—मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे ।।

81—A—पण्णवणाहिं सण्णवणाहिं विण्णवणाहिं परूवणाहि आघवेत्तए पण्णवेत्तए सण्णवेत्तए विण्णवेत्तए ।।

84—A—नमंसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं ।।

B—आयाहिणं पयाहिणं करेता वंदइ नमंसइ वंदिता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ। तंजहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए काइयाए ताव संकुइयग्गहत्थपाए णच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ। वाइयाए जं जं भगवं वागरेइ 'एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय पडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वदह' अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ माणसियाए महया संवेगं जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तो ।।

85—A—पतियामि णं भंते! निग्गंथ पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गथ पावयणं ।।

B—से णं वासीचंदणकप्पे समतिणमणि—लेट्ठुकंचणे समसुहदुक्खे इहलोग

परलोग अप्पडिबद्धे जीविय-मरण निरवकंखे संसार-पारगामी कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं ।।

C—भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

D—छट्ठछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे ।।

E—बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ तइयाए पोरिसीए जहा गोयमसामी जाव रायगिहे नयरे उच्च–नीय–मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं ।।

86–A—नीय मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

B—हीलेमाणे निंदेमाणे खिसेमाणे गरिहेमाणे तेज्जेज्जमाणे ।।

87–A—तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते गमणागमणाए पडिक्कमेइ पडिक्कमेत्ता एसण–मणेसणं आलोएइ आलोएत्ता भत्तपाणं ।।

88–A,B,C,D,E,F,G,H,I,J—सूत्र 71 ।।

89–A—पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव पोलासपुरे नयरे सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे ।।

B—भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभन्ते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ पमज्जित्ता भायणाइं उग्गहेइ उग्गहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी ।

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि ।।

C—नीय–मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया । मा पडिबंधं ।

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरिय सोहेमाणे सोहेमाणे जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं ।।

90–A—नीय मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए ।।

92–A—नमंसइ–सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं ।।

B—उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ आलोएत्ता भत्तपाणं ।।

93–A—नायाधम्मकहा 1/1/101 ।।

B—मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं ।।

C—उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ करेत्ता एवं वयासी–एवं खलु अम्मयाओ । मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए "तए णं तस्स अइमुत्तस्स अम्मापियरो, एवं वयासी-" धण्णो सि तुमं जाया । संपुन्नो सि तुमं जाया । कयत्थो सि तुम जाया । जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते । से वि य णं मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरूइए तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिये मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं ।।

94–A—तं चेव ण जाणसि ? जं चेव ण जाणसि ।।

B—तिरिक्ख–जोणिय मणुस्स देवेसु ।।

C—य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा

पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामकाइं चेव अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी ।।

97–A—छट्ठट्ठम–दसम–दुवालसेहि मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं ।।

98–A—अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया ।।

99–A—एवं खलु एसा रयणावलीए तवोक्कम्मस्स बिइया परिवाडी एगेणं सवच्छरेणं तिहि मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं जाव ।।

100–A—विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धण्णेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठिचम्मावणद्धा किडिकिडियाभूया किसा ।।

B—उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव कालीए वि अज्जा ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं अवचिए मंस सोणिएणं ।।

C—पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा ।।

101–A-B—सूत्र नं. 7 मे एवं खलु जंबू से भावेमाणे विहरइ तक+जाव पूर्ति A ।।

C—तेणेव उवागया उवागच्छित्ता एवं वयासी ।।

D- पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव चरिमुस्सासेहिं ।।

102–A—सूत्र नं. 98 ।।

103–A—सूत्र नं. 98 ।।

104–A—सूत्र नं. 98 ।।

105–A-C—दत्ति पडिगाहेइ ।।

B-D-E—सूत्र नं. 98 ।।

F—सूत्र नं. 100 ।।

106–A—सूत्र न. 98 ।।

108–A—सूत्र नं. 98 ।।

109–A—सूत्र नं. 98 ।।

110–A—सूत्र नं. 98 ।।

B—छट्ठट्ठम–दसम–दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं ।।

111–A—तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुणाया समाणी संलेहणा झूसणा–झूसिया भत्तपाण–पडियाइक्खिया ।।

परिशिष्ट 'B'

1 समय (काल विशेष)

(i) कालो परमनिरूद्धो अविभज्जो त तु जाण समय तु । (जोतिष्क 8)

(ii) काल पुनर्योगविभागमेति निगद्यतेऽसौ समयो विधिज्ञै । (वराच 27–3)

(iii) अणोरण्वतरव्यतिक्रमकाल समय । चोद्दसरज्जुआगासपदेसकमणमेत्तकालेण जो चोद्दसरज्जुकमणक्खमो परमाणु तस्स एगपरमाणुक्कमणकालो समओ णाम ।
(धव पु 4, 318)

2 काल (काल)

(i) कालो परमनिरूद्धो अविभागी त विजाण समओ त्ति । सुहमो अमुत्तिअगुरुगलहुवत्तण-लक्खणो कालो । (ज दी प 13–4)

(ii) वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमय कालो भव्यते । (प्रव सा ज वृ 23)

3 चेइय (चैत्य)

(i) चीयत इति चेइय । चितति वा । तत चेतनाभावो वा जायते चेतिय ।
(उ चू पृ 181)

जो / चिति वेदिका से युक्त होता है, वह चैत्य है । जो चेतन प्राणियो से आकीर्ण होता है, वह चैत्य है ।

4 अज्ज (आर्य)

(i) गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्या ।
(स सि 3-36, त वा 3 36, 2, रत्न क टी 3, 21, त वृति श्रुत 3-36)

जो गुणो से युक्त हो, अथवा गुणी जन जिनकी सेवा सुश्रुषा करते है, उन्हे आर्य कहते है ।

(ii) आराद हेयधर्मेभ्यो याता प्राप्ता उपादेयधर्मैरित्यार्या ।
(प्रज्ञाप मण्डल वृ 1-37, पृ 55)

5 थेर (स्थविर)

(i) सीदत साधून् स्थिरीकरोतीति स्थविर । (प्रसाटी पृ 2

जो सयम मे अस्थिर व्यक्ति को स्थिर करता है, वह स्थविर है ।

(ii) स्थविरो वृद्ध । (योगशा स्वो विव 4-?,

(iii) धर्म विषीदता प्रोत्साहक स्थविर । (व्यव भा मलय वृ. 34, पृ 13

धर्म मे खेद, खिन्न होने वालो को जो प्रोत्साहित किया करता है, उसे स्थविर कहते है ।

6 **समण** (श्रमण)

(1) श्राम्यतीति श्रमण । (आटी प 402)

जो श्रम / तपस्या करते है, वे श्रमण है ।

7 **उवासग** (उपासक)

(1) उपासति तत्त्वज्ञानार्थमित्युपासका । (सू चू 2 पृ 367)

जो तत्त्वज्ञान की सप्राप्ति के लिए मुनियो की उपासना करते है, वे उपासक । श्रमणोपासक है ।

उवासगदसा (उपासकदशा)

जिस अग मे श्रमणो के उपासक श्रावको के नगर व उद्यान आदि के साथ शीलव्रत गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के ग्रहण की विधि का विवेचन हो तथा प्रतिमा, उपसर्ग, सलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमन और देवलोकगमन आदि की भी चर्चा की गई हो, उसे उपासकदशा कहते है ।

8 **अतगडदसा** (अन्तकृद्दशाङ्ग)

अन्तो विनाश, स च कर्मणस्तत्फल भूतस्य वा ससारस्य, कृतो यैस्तेऽन्तकृतस्ते च तीर्थकरादयस्तेषा दशा दशाध्ययनानीति तत्सख्यया अन्तकृद्दशा इति ।

जिस अग मे प्रत्येक तीर्थकर के तीर्थ मे होने वाले दश दश अन्तकृत् केवलियो का वर्णन किया गया हो उसे अन्तकृद्दशाग कहते है । जैसे वर्धमान जिनेन्द्र के तीर्थ मे 1 नमि 2 मतग 3 सोमिल 4 रामपुत्र 5 सुदर्शन 6 यमलीक 7 वलीक 8 किष्कम्बल 9 पालम्ब और 10 अष्टपुत्र, इनका वर्णन इस अग मे किया गया है ।

(नन्दी हरि वृत्ति पृ 104)

9 **महावीर**

(i) महाणो वीरो महावीरो । (दअचू पृ 73)

(ii) महन्त वीरिय यस्स स भवति महावीरो । (आवचू 1 पृ 86)

जिसका वीर्य / पराक्रम महान् है, वह महावीर है ।

10 **जोयण** (योजन)

(1) चउकोसेहि जोयण × × × × । (ति प 1—116)

चार कोसो का एक योजन होता है ।

11 देवलोग (देव + लोग)

(i) देव—देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूतिविशेषै द्वीपाद्रि–समुद्रादिषु यथेष्ट दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवा । (स सि. 4—1)

अभ्यन्तर हेतुभूत देवगति नामकर्म का उदय होने पर जो बाह्य वैभव के साथ द्वीप, पर्वत एव समुद्र आदि प्रदेशो मे इच्छानुसार क्रिडा किया करते है, वे देव कहलाते है ।

(ii) लोग (लोक) –

अत्थि अणन्ताणन्त आगास तस्या मज्झयारम्मि ।
लोओ अणाइनिहणो तिभेयभिण्णो हवइ णिच्चो । (पउमच 3—18)

जो अनन्तानन्त आकाश के ठीक मध्यभाग मे स्थित होता हुआ अनादि–अनन्त है तथा –अध , मध्य और ऊर्ध्व लोक के भेद से तीन प्रकार का है, उसे लोक कहा जाता है ।

12 नदणवण (नदनवन)

णदति जेण वणयर-जोतिस-भवण-वेमाणिया विज्जाहरमणुया य तेण णदण । (नचू पृ 5)

जहा व्यतर, ज्योतिष्क, भवनपति, वैमानिक, विद्याधर और मनुष्य आनन्द मनाते है, वह नदन (वन) है ।

13 जक्खायतण (जक्ख + आयतण) (यक्षायतन)

(i) जक्ख (यक्ष)—यक्षा श्यामावदाता गम्भीरास्तुन्विला वृन्दारका प्रियदर्शना मानोन्मानप्रमाणयुक्ता रक्तपाणि–पादतल–नख–तालु–जिह्वोष्ठा भास्करमुकुट-धरा नानारत्नविभूषणा वटवृक्षध्वजा । (त भा 4, 13)

जो वर्ण से श्याम, गम्भीर, तुन्दिल (विशाल उदर वाले) और वृन्दारक (मनोहर) होते है, जिनका दर्शन रुचिकर होता है, जो मान व उन्मान प्रमाण से युक्त होते है, जिनके हस्ततल, पादतल, नख, तालु, जीभ एव ओप्ठ लाल होते है, जो चमकते हुए मुकुट के धारक होते है, अनेक रत्नो से विभूषित होते है तथा वटवृक्ष की ध्वजा से सहित होते है, वे यक्ष कहलाते है ।

(ii) आयतण (आयतन)—एत्य तस्मिन् यतति आयतण । (दअचू पृ 101)

जहां आकर प्रवृत्ति की जाती है, वह आयतन/स्थान है ।

अर्थात् जहां यक्ष आकर प्रवृत्ति करते है, वह यक्षायतन है ।

जो आरम्भ व परिग्रह से अतिशय दूर जा चूका है, सर्वथा उन्हे छोड चुका है, उसे प्रव्रजित कहा जाता है ।

(IV) विरतिपरिणाम सकलसावद्ययोगवि निवृति रूप प्रव्रज्या ।

(पञ्चव स्वो वृ 164)

23 नियाण (निदान)

(I) भोगाकाडक्षातुरस्यानागत विपय प्राप्ति प्रति मन प्रणिधान सकल्पश्चिन्ताप्रवन्व स्तुरीयमार्त निदानम् । (स सि. 9/33)

विषयसुख की अभिलापा रूप भोगाकाक्षा से जिसमे या जिसके द्वारा नियमित चित्त दिया जाता है वह निदान कहलाता है ।

(II) देविद–चक्कवट्टित्तणाइगुणरिद्धिपत्थणामइय । अहम णिआणचित्तण–मन्नाणाणुगयमच्चत । (ध्यान श 9)

(III) निदानम्—अवखण्डनं तपसश्चारित्रस्य वा, यदि अस्य तपसो ममास्ति फल ततो जन्मान्तरे चक्रवर्ती स्यामर्घ भरताधिपति महामण्डलिक सुभगो रूपवानित्यादि ।

(त भा सिद्ध वृ 7/32)

यदि इस तप या चारित्र का कुछ फल मुझे प्राप्त होने वाला है तो उसके प्रभाव से मैं भवान्तर मे चकवर्ती, अर्धचक्री, महामाण्डलिक सुभग, और सुन्दर होऊ, इस प्रकार के विचार से जो अनुष्ठित तप व चारित्र का खण्डन करना हे उसका नाम निदान है ।

24 वालुयप्पभा (वालुकाप्रभा)

(I) सात नारकियो मे से तीसरी नारकी । (ठा 7 पत्र 388)

25 नरए (नरक)

(i) पापकृत प्राणिन आत्यन्तिक दु ख नृणन्ति नयन्तीति नरकाणि ।

(त वा. 2, 50, 2, 3)

(II) नरान् प्राणिन कायति पातयति खली करोति इति नरक कर्म । (धव पु. 1, पृ 201)

(III) को नरक ? परवशता । (रत्नमा 13)

असातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त हुई शीत व उष्ण आदि की वेदना से जो नरो को शव्द कराते है, रूलाते है वे नरक कहलाते है ।

26 जम्बूदीवे (जवू द्वीप)

(I) भूमण्डल के मध्य मे जो द्वीप है, वह जम्बूद्वीप है । (लोक प्रकाश सर्ग 15 श्लो 6)

(ii) तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप । (त सू 3–9)

(iii) प्रतिविशिष्टजम्बूवृक्षासाधारणाधिकरणत्वाज्जम्बूद्वीप । (त वा. 3, 7, 1/त श्लो. 3—7)

उत्तरकुरूक्षेत्रों के मध्य मे पृथिवी स्वरूप अनादिनिधन जबूवृक्ष स्थित है। उससे उपलक्षित होने से उसका जम्बूद्वीप नाम पडा ।

27 केवलि (केवली)

(i) निरावरणज्ञाना केवलिन । (स सि 6—13)

(ii) तव नियम–नाणरूक्ख आरूढो केवली अभियनाणी । (आ नि 89)

(iii) शेप कर्मफलापेक्ष शुद्धो दुद्धो निरामय । सर्वज्ञ सर्वदर्शी च जिनो भवति केवली । (त भा 10 श्लो 6 पृ 319)

(iv) केवलि त्ति भणिदे केवलणाणिणो तित्थयरकम्मुदयविरहिदा घेतव्वा । (ध पु 6 पृ 246)

(v) केवलानि सम्पूर्णानि शुद्धानि अनन्तानि वा ज्ञानादीनि यस्स सन्ति स केवली । (औपपा अभय. वृ. 10 पृ 15)

(vi) केवल ज्ञान दर्शनम् चास्यास्तीति केवली । (प्रज्ञाप मलय वृ 314 पृ 531)
जो केवल सदृप्य समस्त लोक को जानते व देखते है तथा केवलज्ञान व चारित्र से सम्पन्न हे, वे केवली कहलाते है ।

28 पर्याय (पर्याय)

(i) पर्याय गुणा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (प्रज्ञाटी पृ 179)

(ii) पर्याया पर्यवा पर्यया धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । (विभामहेटी 1 पृ 47)

(iii) क्रमवर्तिन पर्याया । (आव नि हरि व मलय वृ 978)

(iv) परिभेदमेति गच्छतीति पर्याय । (धव पु 1 पृ 84)
इन्दन व शकनादि क्रियारूप भावान्तरो तथा इन्द्र व शक्र आदि सज्ञान्तरो को पर्याय कहा जाता हे ।

29 उवट्ठाणसाला (वाहर का स्थान)

(i) आस्थान-मण्डप या वह स्थान जहा विभिन्न विषयो पर चर्चा की जाती है वह सभा स्थान । (णाया 1,1,)
(निर 1,1)

30 जक्खिणी (यक्षिणी)

यक्ष योनिक स्त्री या देवियो की एक जाति विशेष । (आव म)

1 **गुत्त** (गुप्त)

(i) गुत्ती णाम मणसा असोभण सकप्प वज्जयतो वाया य कज्जमेत भासतो ।
(दशवै चू 8/280)

मन मे उत्पन्न होने वाले दुष्ट सकल्प को छोडकर वचन मे केवल आवश्यक कार्य के लिए भाषण करने वाले पुरुष को गुप्त कहते है ।

2 **बंभ** (ब्रह्म)

(i) मेहुणसण्णाविजएण पचपरियारणापरिच्चाओ । बभे मणवत्तीए जो सो बभ सुपरिसुद्ध । (यतिष वि 14 पृ 13)

(ii) नव ब्रह्म गुप्तिसनाथमुपस्थसयमो ब्रह्म । 'भीमो भीमसेन' इति न्यायाद् ब्रह्मचर्यम वृहत्वाद ब्रह्मात्मा, तम चरण ब्रह्मचर्यमात्मारामतेत्यर्थ ।
(योग शा स्वो विव 4-93 पृ 316)

वैक्रियिक और औदारिक शरीर से सम्बधित जो विषयभोगो की अभिलाषा होती है उसका मन वचन काय व कृत कारित अनुमति से त्याग करना ब्रह्म है ।

3 **मासखमण** (मासखमण)

(i) लगातार एक मास के उपवास करना । (नाया 1,1 वि पा 2/1)

4 **अंगाइ** (अग)

(i) अङ्कति गच्छति व्याप्नोति त्रिकालगोचराशेपद्रव्य पर्यायानित्यङ्गशब्दनिष्पते ।
(धव पु 9 पृ 194)

जो त्रिकाल विषयक समस्त द्रव्य पर्यायो को व्याप्त करता है, वह अग कहा जाता है । यह अग शब्द का निरूक्त्यर्थ है ।

5. **पुप्फा** (पुष्प)

(i) पुप्फाणि अ कुसुमाणि अ फुल्लाणि तहेव होति पसवाणि सुमणाणि अ सुहुमाणि अ पुप्फाण होति एगट्ठा ।
(दशहाटी प 17)

6. **पलसहस्स** (पल परिमाण)

(i) एक भार विशेष वर्तमान तोल के अनुसार लगभग 62½ सेर यानि करिब 57 किलो ।
(मधु मु पृ 112 अन्तगडसूत्र)

6. **पच्छिपिडगाइ** (वास की छवडी)

(i) पच्छी देशी शब्द है जो छोटी टोकरी के लिए प्रयुक्त होता है । व पिटक शब्द पिटारी का बोधक है । (मधु मु पृ 113 अन्तगढ सूत्र)

37 भोग [भोग]

[।] शुभविविषयसुखानुभवो भोग अथवा भक्ष्य-पेय लेह्यादिसकृदुपयोगाद् भोग । (त भा सिद्ध वृ 2-4)

अभीष्ट विषयजनीत सुख के अनुभव का नाम भोग है ।

38 समणोवासग [श्रमणोपासक]

[।] विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपासते-सेवन्त इति श्रमणोपासका । (सूटी 2 प 79)

39 मार [मार]

[।] खणे खणे मारयतीति मारो । (आचू पृ 108)

[॥] मारण प्राणवियोजनमसि-शक्ति-कुन्तादि-भि । (ध्यानश हरि वृ 19)

40 हीलेति [अनादर]

[।] हीलण् निन्दायाम् । (धातु पृ 364)

[॥] हिलेति निदेति खिसति गरिहति परिभवति अवमण्णति । (सू 2/2/11)

41 निदति [निन्दा करना]

[।] निन्दा का अर्थ है किसी के दोषो का वर्णन करना । (अन्त पृ 127)

42 खिसइ [निदा करता है]

[।] खिसइ निदति परिभवती । (सूटी 1 पृ 243)

43 गरिहति [गर्हित]

[।] गरहिततिवा अकथ्य ति वा अविवित्त ति वा परिहरणीय ति वा एगट्ठा । (आवचू 1 पृ 609)

44 पाण [पान]

[।] पीयते इति पानम् । (आटी प 264)

45 जोगी [योगी]

[।] विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइविरहियो णाणी । धम्मुदेसणकुसलो अणुपेहाभावणाजुदो जोई ।

अवियप्पो ठिद्दो णिम्मोहो णिक्कलकओ णियदो णिम्मलसहावजुत्तो जोई सो होई मुणिराओ । (र सा 100–101)

[॥] कदप्पदप्पदलणो डभविहीणो विमुक्कवावारो उग्गतवदित्तगतो जोई विण्णाय परमत्थो । (ज्ञानसार 4)

46 इंदठाणे (इन्द्र का स्थान)

A (I) इंद इन्दतीति इन्द्र । (अनुद्वामटी प 236)

(II) ठाण तिट्ठति तहि तेण ठाण । (आचू पृ 44)

B (I) इद सक्क सहस्सक्ख-वज्जपाणि-पुरदरा दीणि इदस्स एगट्ठियाणि । (दशजिचू पृ 10)

(II) ठाण ठाण त्ति वा भेदो त्ति वा एगट्ठा । (दशजिचू पृ 325)

47 असण (अशन)

(I) आसु खुह समेई असण । (आवनि 1588)

जो भूख का शीघ्र शमन करता है वह अशन है ।

(II) असिज्जइ खुहितेहि ज तमसण । (दजिचू पृ 152)

जो भूखे व्यक्तियो द्वारा खाया जाता है वह अशन है ।

48 पाण (पानी)

(I) पाणाणुवग्गहे पाण ।

जो प्राणो का पोषण करता है वह पान है । (आवनि 1588)

(II) पीयते इति पानम् ।

जो पीया जाता है वह पान है । (आटी प 264)

49 खाइम (खादिम)

(I) खे माइ खाइमति ।

जो मुखाकाश मे समाता है वह खादिम है । (आवनि 1588)

(II) खाज्जत इति खातिम ।

जो खाया जाता है वह खादिम है । (आवचू 2 पृ 313)

50 साइम (स्वाद्य)

(I) साएइ गुणे तओ साई । (आवनि 1588)

(II) सादयति—विनाशयति स्वकीयगुणान् माधुर्यादीन स्वाद्यमानमिति स्वादिमम् । (प्रमाटी प 51)

स्वाद लेते लेते जिसके माधुर्य आदि गुण विनष्ट हो जाते है वे स्वादिम है ।

(III) स्वाद्यत इति स्वादिमम् ।

जिसका आस्वाद लिया जाता है वह स्वादिम है । (आटी पृ 264)

51 कहा [कथा]

[I] कथ्यत इति कहा ।

जो कही जाती है, वह कथा है । [सूत्र. 1 पृ. 188]

52 कम्म (कर्म)

(I) क्रियतीति कम ।

(ii) क्रियन्ते मिथ्यात्वादिहेतुभिर्जीवेनेति कर्माणी । (उषा टीप 641)

जो किया जाय वह कर्म/बन्धन है ।

(III) कम्म जमणायरि ओवएसिअ सिप्पमन्न हाऽभिहिय । किसि-वाणिज्जाइय घडलोहाराइभेअ च । (आ. नि 928)

जो कृषि व वाणिज्य आदि कार्य आचार्य से भिन्न व्यक्ति के द्वारा उपदिष्ट हो वह कर्म कहलाता है ।

वोर्य (वीर्य)

(I) विराजयत्यनेनेव इति वीरिय

जिससे जीव दीप्त होता है, वह वीर्य है ।

(II) वीर्य वीर्यान्तरायक्षयोपशम-क्षयज खल्वात्मपरिणाम । (आव नि. हरि वृ 1513 पृ 783)

वीर्यान्तराय के क्षयोपशम अथवा क्षय से जो आत्मा का परिणाम उत्पन्न होता है, वह वीर्य है ।

सवेग (सवेग)

(I) सवेगो मोक्षाभिलाष ।

मोक्ष की अभिलाषा का नाम सवेग है । (दशवै नि हरि वृ. 57)
(श्रा. प्र टी 53)

(II) सवेग परमा प्रीतिधर्म धर्मफलेषु च । (म. पु 10-157)

55 ताव (ताप)

(I) तापयतीति ताप ।

जो तप्त करता है, वह ताप है । (आटी प 14)

56 सलेहणा (सलेखना)

(I) सलिख्यतेऽनया शरीर कषायादीनि सलेखना । आवहाटी 2 पृ 233)

(II) सलिख्यते-कृशीक्रियतेऽनयेति सलेखना । (भ टी प 127)

शरीर और कषाय जिसके द्वारा कुरेदे जाते है, कृश किये जाते है–

वह सलेखना है ।

(iii) सलिख्यते शरीरकपायादि यया तप क्रियया सा सलेखना । (पचव स्वो वृ 2)

जिस तपश्चरण के द्वारा शरीर व कपाय आदि को कृश किया जाता है, उसे सलेखना कहते है ।

57 **आराहणा** (आराधना)

(i) उज्जोवणमुज्जवण णिव्वहण साहण च णिच्छ (त्थ) रण । दसण-णाम-चरित्त तवाणमाराहणा भणिदा । (भ आ 2)

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप के उद्योतन, उद्यापन, निर्वहन, साधन एव निस्तरण-भावान्तर प्रापण को आराधना कहते है ।

(ii) आराधना परिशुद्धप्रव्रज्यालाभलक्षणा । (उप प वृ 466)

58. **भिक्खुपडिमा** (भिक्षुप्रतिमा)

(i) **भिक्खु**—भेत्ताऽऽगमोवउत्तो दुविह तवो भेअण च भेत्तव्व । अट्ठविह कम्मखुह तेण निरूत्त स भिक्खुत्ति । (दनि 342)

जो तपस्या से कर्मों का भेदन करता है, वह भिक्षु है ।

(ii) ज भिक्खमत्तवित्ती तेण व भिक्खू (दनि 344)

(iii) भिक्खणसीलो भिक्खू ·· (निभा 6275)

जो शुद्ध भिक्षा से जीवन यापन करता है, वह भिक्षु है ।

59 (i) **पडिमा**

प्रतिमा यावज्जीव नियमस्स स्थिरीकरण प्रतिज्ञा । (श्रा दि पृ. 51)

ग्रहण किये गये नियम को जीवन पर्यन्त स्थिर रखने की प्रतिज्ञा को प्रतिमा कहते है ।

60 **दत** (दान्त)

(ii) दान्त य पापेभ्य उपरतोऽथवा दान्तोनाम इन्द्रियदमेन नो इन्द्रिय दमेन च । (व्य भा 10 टी प 90)

जो पाप मे उपरत है, वह दान्त है ।

या जिसने इन्द्रिय व मन का उपशमन किया है, वह दान है ।

प्रयुक्त ग्रन्थ संकेत सूची

अंत –अन्तकृतदशा–अंगसुत्ताणि भाग 3, जैन विश्व भारती–लाडनू , सन् 1974

अन ध.—अनगार धर्मामृत–प आशाधर, मा दि जैन ग्रन्थमाला समिति–बम्वई, सन् 1919

अनुद्वामटी—अनुयोगद्वार मलयधारीय टीका–श्री केसरबाई ज्ञान मन्दिर–पाटन, सन् 1939

आचू—आचाराग चूर्णि–श्री ऋषभदेव केशरीमल, श्वे सस्था–रतलाम, सन् 1941

आटो—आचाराग टीका–मोतोलाल बनारसी दास , दिल्ली, सन् 1978,

आनि—आचाराग निर्युक्ति, दिल्ली, सन् 1978

आवचू 1—आवश्यक चूर्णि 1 श्री ऋषभदेवजी केशरीमल श्वे सस्था. रतलाम, सन् 1928

आवनि—आवश्यक निर्युक्ति, भेरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, बम्बई, स 2038

आवम– आवश्यक सूत्र मलयगिरी टीका–हस्तलिखित

आप्तस्व– आप्त स्वरूप– मा दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि स. 1979

आव–हरि. वृ मल हेम टी —आवश्यक सूत्र–हरिभद्र विरचित वृत्ति पर टीप्पण–ले मल धार गच्छिय हेमचन्द्र सूरी, दे ला जैन पुस्तको फण्ड, सूरत ई., 1920

आवहाटी 2—आवश्यक हरिभद्रीया टीका 2, भेरूलाल कन्हैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, बम्बई, स 2038

उचू –उत्तराध्ययन चूर्णि–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1933

उसाटी—उत्तराध्ययन–शान्ताचार्य टीका–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1973

औपपा अभय वृ —औपपातिक सूत्र वृत्ति लेखक अभयदेव आगमोदय समिति, बम्बई सन् 1916

गद्य चि —गद्य चिन्तामणि–ले वादिभसिह सूरी टी एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री–तजोर सन् 1916

जम दी. प —जम्बूद्वीप–पण्णत्ति–सगहो, श्रा पद्मनन्दी जैन सस्कृति रक्षक सघ, शोलापुर वि स 2016

जोतिप्क—जोतिष्करण्डक–ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था रतलाम, सन् 1928

ठा.—ठाणाग सूत्र–आगमोदय समिति, बम्वई सन् 1918–20

णाया—णायाधम्मकहा सुत्त–आगमोदय समिति, बम्वई सन् 1919

त भा.—तत्वार्थ भाष्य भाग 1, 2, स्वोपज्ञ (उमा स्वाति) देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार बम्वई–वि स 1982-86

त. वा.—तत्वार्थ वार्तिक भाग 1, 2, अकलकदेव भारतीय ज्ञानपीठ—काशी सन् 1953-57

त. वृत्ति—तत्वार्थ वृत्ति श्रुतसागर सूरि—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी सन् 1949

त. सू.—तत्त्वार्थ सूत्र—उमास्वामी—निर्णयसागर प्रेस, सन् 1905

ति प.—तिलोयपण्णत्ती (प्रथम भाग) यतिवृपभाचार्य जैन सस्कृति रक्षक सघ-शोलापुर 1943 द्वितीय भाग सन् 1951

त भा. सिद्ध वृ.—तत्त्वार्थ भाष्य वृत्ति-सिद्धसेन गणि देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, वम्बई, वि स 1982

त. वृति श्रुत —तत्त्वार्थ वृत्ति—श्रुतसागर सूरि, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1949

त. श्लो —तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक—विद्यानन्द आचार्य, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् 1918

ज्ञा. सा —ज्ञानसार-पद्मसिह मुनि—मा दि जैन ग्रन्थमाला, वि स 1975

दअचू.—दशवैकालिक अगस्त्यसिह स्थविर चूर्णि-प्राकृत ग्रन्थ परिपद्, वाराणसी, सन् 1973

दजिचू —दशवैकालिक जिनदासचूर्णि—श्री ऋपभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम, सन् 1933

दटी—दशवैकालिक टीका—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, वम्बई, ग्रन्थाग 47

दनि—दशवैकालिक निर्युक्ति—प्राकृत ग्रन्थ परिपद्, वाराणसी, सन् 1973

दसजिचू.—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि—श्री ऋपभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम सन् 1933

दशवै. नि. हरि वृ —दशवैकालिक वृत्ति—हरिभद्र—जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, वम्बई सन् 1918

दशवं चू —दशवैकालिक चूर्णि—जिनदास गणिमहत्तर—ऋपभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम सन् 1933

धातु.—धातुपारायणम्—श्री शाहीवाग, गिरधर नगर जैन श्वे भू सघ, अहमदावाद सन् 1971

ध्यान श.—ध्यान शतक (आव हरि वृत्ति पृ 582, 611) प मेधावी आगमोदय समिति मेहसाना, सन् 1966

नचू—नन्दी चूर्णि—प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वनारस, सन् 1966

नन्दी. सू, नन्दी गा —नन्दी सूत्र-देववाचक गणी आगमोदय समिति, वम्वई सन् 1917

नन्दी. हरि. वृ —नन्दी सूत्र वृत्ति—हरिभद्र सूरि—ऋपभदेव केशरीमल जैन श्वे सस्था रतलाम सन् 1928

निर —निरयावलिका (अप्रकाशित)

नीतिवा.—नीतिवाक्यामृत—सोमदेव सूरि—मा दि जैन ग्रन्थमाला—वम्वई—वि स 1979

निभा —निशिथ भाष्य—सन्मति ज्ञानपीठ 1982

पउमच.—पउमचरिउ–विमल सूरि–जैन ग्रन्थ प्रकाशन सभा–राजनगर–सन् 1914

प्रज्ञाप. मलय वृ —प्रज्ञापना वृत्ति–मलयगिरी–आगमोदय समिति–मेहसाना सन् 1918

प्रज्ञाटो.—प्रज्ञापना टीका–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1918

प्रसाटो —प्रवचनसारोद्धार टीका–देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड-बम्बई-द्वितीय सस्करण, सन् 1981

पच स स्वो वृ —पच सग्रह स्वोपज्ञ वृत्ति–चन्द्रर्षि महत्तर आगमोदय समिति–बम्बई, सन् 1927

प्रव सा ज वृ.—प्रवचनसार वृत्ति–जयसेन परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, वि स 1969

भ आ —भगवती आराधना–शिवकोटी आचार्य, बलात्कार जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारजा सन् 1935

भटी—भगवती टीका 1–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1918

भगवती टीका 2– ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम, द्वितीय सस्करण, सन् 1940

म पु —महापुराण भाग 1, 2, जिनसेनाचार्य–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1951

मूला —मूलाचार–वट्टकेराचार्य–मा दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि स 1977

यतिधर्मवि —यतिधर्मविशिका–हरिभद्र सूरि मा दि जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

योगशा स्वो विव —योगशास्त्र विवरण–हेमचन्द्राचार्य जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर सन् 1926

रत्नक टी —रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका–प्रभाचन्द्राचार्य मा दि जैन ग्रन्थमाला–बम्बई–वि स 1982

लोक प्र —लोक प्रकाश (भाग 1,2,3,) विनयविजय गणी देवचन्द लालभाई जैन ग्रन्थ पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई–सन् 1926,28,32

वराग च —वरागचरित्त–जटासिह नन्दी–मा दि जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई–वी नि 2465

विपा.—विपाकश्रुत–सेठ हरगोविन्द दास, कलकत्ता सव 1976

विपाटी —विपाक टीका–आगमोदय समिति, बम्बई सन् 1920

विभामहेटी— विशेषावश्यक भाष्य मलधारीय टीका—दिव्यदर्शन कार्यालय–अहमदावाद वि स 2489

व्य भा —व्यवहार भाष्य–वकील केशवलाल प्रेमचन्द–अहमदावाद, सन् 1926

स सि —सर्वार्थसिद्धि–पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी–सन् 1955

सू —सूत्रकृताग अग सुत्ताणि भाग 1, जैन विश्व भारती लाडनू सन् 1974

सूचू 1—सूत्रकृताग चूर्णि प्रथम श्रुतस्कन्ध–प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, सन् 1975

सूचू 2—सूत्रकृताग चूर्णि-द्वितीय श्रुतस्कन्ध-ऋषभदेव केशरीमल श्वे सस्था, रतलाम, सन् 1941

सूटी 1—सूत्रकृताग टीका-प्रथम श्रुतस्कन्ध-आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919

सूटी 2—सूत्रकृताग टीका-द्वितीय श्रुतस्कन्ध-श्री गोडी पार्श्वनाथ जैन ग्रन्थालय, सन् 1953

स्था —स्थानाग-अग सुत्ताणि भाग 1, जैन विश्व भारती-लाडनू, सन् 1974

स्थाटी —स्थानाग टीका-सेठ माणेकलाल चून्नीलाल, अहमदावाद, सन् 1937

[नोट—परिभाषाओ के सकलन मे विशेषत जैन लक्षणावली तथा निरुक्त कोश ग्रन्थो का आधार लिया गया है ।]

समता विभूति आचार्य श्री नानेश द्वारा व्याख्यापित आगम साहित्य

आचारांग सूत्र	–	प्रकाश्यमान
भगवती सूत्र	–	प्रेस मे
कल्प सूत्र	–	प्रकाश्यमान
अन्तकृद्दशांग सूत्र	–	प्रकाशित
अनुत्तरोपपातिक सूत्र	–	प्रकाश्यमान
दशवैकालिक सूत्र	–	"

आदि आदि

समता सूत्र

कि जीवनम् ?
सम्यग् निर्णायक समता मयञ्च
यत् तज्जीवनम् ।

जीवन क्या है ?
सम्यक् प्रकार से निर्णायक शक्ति रखने वाला जो समतामय है वह जीवन है ।